टिये !!!

की कुछ फाइलें
ाइल ५) रु० में
हितके ख्यालसे
या है कि, सर्व
यह याद रहे कि,
है कई विशेषाङ्क

) इसमें "गङ्गाङ्क"

... १९३३ का पूरा फाइल, मूल्य ३) रु० । इसमें "पुरातत्त्वाङ्क" भी शामिल है, जिसका अकेले ही मूल्य ३) रु० है।

३—सन १९३४ की पूरी फाइल, मूल्य ३॥) रु० । इसमें "विज्ञानाङ्क" भी शामिल है, जिसका अकेले ही मूल्य २॥) रु० है।

४—सन १९३५ की पूरी फाइल, मूल्य १॥=) । इसमें "चरिताङ्क" भी शामिल है, जिसका अकेले ही मूल्य २॥) रु० है।

५—"वेदाङ्क"—यह अद्भुत विशेषाङ्क २॥) रु० में मिलता है। डाकखर्च खरीदारोंको देना होगा। शीघ्रता कीजिये।

मैनेजर, "गङ्गा"-कार्यालय, सुलतानगंज
(ई० आई० आर०)

वैदिकपुस्तकमाला—नवम पुष्प

ईश्वरसिद्धि

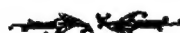


लेखक

ऋग्वेदके हिन्दीभाषान्तरकार

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी

पण्डित गौरीनाथ झा



प्रकाशक

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरण-तीर्थ

संचालक, वैदिकपुस्तकमाला, सुलतानगंज (ई० आई० आर०)



मूल्य २) } श्रावण, १९९४ विक्रमीय { प्रथम संस्करण

जिल्दके साथ २॥) } { २०००

"वैदिक–पुस्तकमाला"की नियमावली

(१) इस "माला"में हिन्दी-अनुवाद-सहित चारों वेद और विशेषतः वैदिक-ग्रन्थ-पुष्प ही गूँथे जायेंगे।

(२) १) भेजकर "माला"के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको किसी भी पुस्तकपर डाक खर्च नहीं देना पड़ेगा।

(३) स्थायी ग्राहकोंको "माला"में प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना होगा।

(४) "माला"में प्रकाशित पुस्तकें वी० पी०से भेजी जायंगी।

संचालक, "वैदिक-पुस्तकमाला," सुलतानगंज
(ई० आई० आर०)

मिथिला प्रेस
खलीफाबाग, भागलपुरमें मुद्रित

दो शब्द

कृष्णगढ़ (सुलतानगंज, भागलपुर) में "राधे श्याम क्लब" नामकी एक मित्र-गोष्ठी है। इसमे राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि अनेक विषयोंपर वाद-विवाद हुआ करते हैं। गोष्ठीमें, कभी-कभी, बाहरके सुप्रसिद्ध विद्वान् भी आ जाया करते हैं। तब जरा जोरोंसे बहस छिड़ जाया करती है। सात वर्षोंके भीतर हमारी गोष्ठीमे ऐसे बहुत मौके आये, जब कि, विविध भाषाओंके अतीव प्रतिष्ठित विद्वानोंसे कई दिनोंतक ईश्वर-सम्बन्धी वाद-विवादका सिलसिला जारी रहा। कुछ दिन हुए, हम लोगोंने विचार किया कि, यदि इन वाद-विवादोंके आधारपर, अपनी सूझों और तर्क-युक्तियोंके साथ, ईश्वर-विषयक एक ऐसा ग्रन्थ तैयार किया जाय, जिसमें शास्त्रीय प्रमाणों, वैज्ञानिक अन्वेषणों, विभिन्न भाषाओंके विद्वानोंकी युक्तियों, उच्च कोटिके तर्कों और महापुरुषोंके अनुभवोंसे ईश्वरकी सत्ताकी सिद्धि की जाय, तो क्या हर्ज ? कुछ दिनोंमें इस विचारने उग्रताका रूप धारण कर लिया, जिसका परिणाम यह ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थके दो लेखक हैं और कहीं-कहीं दोनोंके विचारोंमें मतभेद भी है। तो भी "लेन-देन" वाले हिसाबके अनुसार भेद-समन्वय करनेकी चेष्टा की गयी है। परन्तु दोनों लेखकोंकी रुचि जाननेवाले पाठकोंको यह चेष्टा स्पष्ट दिखाई देगी।

इस ग्रन्थमें इतनी भाषाओंके ग्रन्थों और विद्वानोंके सिद्धान्तोंका उल्लेख किया गया है कि, इस थोड़ेसे स्थानमें उन सबका नामोल्लेख करना भी असम्भवसी कथा है। परन्तु बाबू हनुमानप्रसादजी पोद्दारके सम्पादकत्वमें निकलनेवाले "कल्याण" के विशेषाङ्क "ईश्वराङ्क" और प्रो० रामदासजी गौड़की सम्पादकतामें प्रकाशित "विज्ञान"का उल्लेख करना आवश्यक है, जिनके कई लेखोंसे हमें बहुत-बहुत सहायता मिली है। हम उन सभी ग्रन्थ-प्रणेताओं और विद्वानोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनसे इस ग्रन्थ-रचनामें हमें साहाय्य प्राप्त हुआ है।

अपने सिद्धान्तके प्रतिपादनमें अपने प्रतिपक्षीके लिये एकाध स्थलपर किसी कटु शब्दका प्रयोग हो जाना सम्भव है। यद्यपि हमने बहुत ही विनम्र शब्दोंमें प्रतिस्पर्द्धीके सिद्धान्तको भी लिखनेकी चेष्टा की है; परन्तु यदि कहीं किसीके प्रति किसी कटु शब्दका प्रयोग हो गया हो, तो उसके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

प्रेसके भूतोंकी दयासे कई स्थानोंपर अक्षराशुद्धियाँ रह गयी हैं और विराम आदि चिह्न भी छूट गये हैं। हमारी अल्पज्ञता और अज्ञताके कारण भी अशुद्धियोंका रहना सम्भव है। इन सारी बातोंके लिये हम पाठकोंसे बार-बार क्षमा-याचना करते हैं।

श्रावण, १९९४ विक्रमीय
कृष्णगढ़, सुलतानगंज
जि० भागलपुर

रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ झा

ईश्वर-सिद्धि

वैदिकपुस्तकमाला—६म पुष्प

श्रीगणेशाय नमः

ईश्वर-सिद्धि

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥"—गीता । १८।६१

—०—

विषय-प्रवेश

नास्तिकवाद अत्यन्त प्राचीन है। वेदोंमें भी ईश्वर-विरोधियों, इन्द्र-द्रोहियों और देव-निन्दकोंका उल्लेख है। वेदोंसे मालूम होता है कि, उन दिनों असुर-पूजकोंका एक जबर्दस्त दल था। यही दल फारस चला गया, जिसके वंशधर आजतक अहुरमज्दके पूजक हैं। उपनिषदोंमें तो नास्तिकोंके मतवादका विशद विवरण है ही। उत्तर उपनिषत्काल और पूर्व दर्शनकालमें उसका और भी प्राबल्य हो उठा। इसी

समय नास्तिकोंके प्रसिद्ध "बार्हस्पत्य-सूत्र"की रचना हुई। दर्शनोंमें लौकायतिक, चार्वाक, बार्हस्पत्य, बौद्ध आदि नास्तिकोंके नाम अतीव प्रसिद्ध हैं। प्रायः सभी आस्तिक दर्शनोंमें इनका खूब-खूब खण्डन है। दार्शनिकों—विशेषतः नैयायिकों और वेदान्तिकों तथा दर्शन-भाष्यकारोंने इन नास्तिकोंको इतना लथेड़ा कि, ये बहुत दिनोंतक सिर नहीं उठा सके।

कुछ दिनों बाद संस्कृतके पठन-पाठन और दार्शनिक प्रतिभाके अभावके कारण देशमें कुछ नास्तिक नामधारी साँस लेने लगे—देव-समाज आदि नामोंसे वे फिर ताक-झाँक करने लगे। अंग्रेजी शिक्षाके कारण इधर कुछ वर्षोंसे देशमें कुछ ऐसे "नास्तिकों"का अस्तित्व देखनेमें आ रहा है, जो अपनेको "विज्ञानवादी" कहा करते हैं। हमारा विश्वास हैं कि, यदि ये नास्तिक संस्कृतके दर्शन-शास्त्रका अध्ययन करके अपने पूर्वज नास्तिकोंके थोथे तर्कोंकी मिट्टी पलीद होते देख लें—यदि ये आस्तिकोंकी अखण्डनीय युक्तियोंको समझ लें, तो इनमेंसे अधिकांश तुरत आस्तिक बन जायं। यदि ये समझना चाहें, तो सरलतासे समझ सकते हैं कि, एक ही परिपक्व-बुद्धि नैयायिक सौमें निन्यानवे नास्तिकोंको आस्तिक बनानेमें समर्थ है।

ईश्वर और विज्ञान

ईश्वर-सिद्धिके सम्बन्धमें विज्ञानका नाम घसीटनेवाले यह बात भूल जाते हैं कि, आधुनिक विज्ञान वस्तुतः पदार्थ-विज्ञान है। वह पदार्थों वा वस्तुओंपर ही प्रयोग और निरीक्षण करनेकी विद्या है—सदाचार, धर्म और अध्यात्म-वाद जैसे विषय उसके दायरेके बाहर हैं। विज्ञानके मतसे स्त्री केवल स्त्री है और पुरुष निरा पुरुष। विज्ञानके मतसे नर या मादाका यौन सम्बन्ध होना प्राकृतिक है! तब भाई बहनसे शादी क्यों नहीं करे वा पिता पुत्रीका पाणि-ग्रहण क्यों नहीं करे? ऐसे प्रश्नोंका उत्तर विज्ञानकी पहुँचके बाहर है! यही नहीं, विज्ञानके मतसे तो माता और पुत्रका दुष्ट सम्बन्ध भी प्राकृतिक है! पुत्रीके प्रति पिताकी पवित्र भावना विज्ञानकी समझमें नहीं आ सकती! यह सदाचारशास्त्रका विषय है। पिताके प्रति पुत्रका आन्तरिक निःस्वार्थ नीतिशास्त्र है; यहां विज्ञानका प्रयोग और निरीक्षण व्यर्थ है। विनाशक विष आदिको पी-खाकर जीवित रह जाना, दो-दो महीने जमीनके भीतर बन्द रहना, वर्षों उपवास करना, सबके सामने लड्डू, लौंग आदि मँगा देना और मीराबाईका विषका प्याला पीकर आनन्द-निमग्न हो जाना योगका विषय है, धर्मकी बात है—विज्ञानकी नहीं। इसीलिये म० म० स्व० प० रामावतार शर्म्मा तथा प० जवाहरलाल नेहरू जैसे

विज्ञानप्रेमी भी इन विषयोंके रहस्य नहीं बता सके। "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि"के विमल निनादके साथ कन्हाईलाल दत्तका फाँसीके तख्तके पास जाना और वजनमें अठारह पौंड बढ़ जाना वा सूलीपर लटककर क्राइस्टका भगवान्के ध्यानमें विलीन हो जाना अध्यात्मशास्त्रकी करामात है—विज्ञानकी नहीं; विज्ञानवादीकी नहीं। सौर मण्डलके पदार्थोंपर निरीक्षण और उनपर प्रयोग करके वायरलेस टेलीग्राफी, एरोप्लेन वा टेलीवीजन आदिका आविष्कार करना, नरसहारक उपायोंको सामने रखना तथा परस्परकी स्पर्द्धा, मत्सर, युद्ध, छलछद्म आदिसे भरी राजनीति चलाना विज्ञानका काम है—सदाचार, धर्म और अध्यात्मविद्याके "सत्यं शिवं सुन्दरम्"से विज्ञानका क्या वास्ता? "सत्यके निकटतम (वा सन्दिग्ध!) प्रदेश"में पहुँचनेका दावा करनेवाले विज्ञानीकी खोपड़ीमें समाजकी पवित्रता, सेवा, त्याग, निःस्वार्थता आदि अवैज्ञानिक हैं! गांधीजीकी ईश्वरीय प्रेरणा, शिवाजीका गोरक्षाके लिये हथेलीपर प्राण रखना और "एकलिङ्गेश्वर महादेवकी जय"के ब्रह्माण्डभेदी निनादके साथ महाराणा प्रतापका अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंमें वर्चस्व भरना विज्ञानवादीकी बुद्धिमें अवैज्ञानिक हैं!! वाह रे विज्ञानवादी और वाह रे विज्ञान!!!

सौर मण्डलके ही कई पदार्थोंतक जिस विज्ञानकी गति नहीं—शरीरके कितने ही अवयवोंका भी जिस

विज्ञानको रहस्यतक मालूम नहीं, वह इन्द्रियातीत ईश्वरकी बात क्यों बताने गया ?

हां, विज्ञानकी पहुँच जहांतक हो सकती है, वहांतक उसने भी अवश्य ही दौड़ लगायी है और इस दौड़में वह निखिल विश्वकी सत्ताके एकत्वतक पहुँच सका है। जीवविज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायनविज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान और जीवाणुविज्ञान नामकी विज्ञानकी पाँच शाखाएँ जीव, शक्ति और सत्ताको एकताको यों सिद्ध करती हैं—

जीववैज्ञानिक आचार्य जगदीशचन्द्र वसुने सिद्ध किया है कि, निखिल सत्तामें एक ही जीवनकी अभिव्यक्ति है। भौतिक विज्ञानके आचार्य टामसनने भी इसी सिद्धान्तको प्रमाणित किया है। रासायनिक खोजोंने प्रमाणित किया है कि, निखिल सत्तामें एक ही सत्ताकी अभिव्यक्ति है। ज्योतिर्विज्ञानका मत है कि, निखिल सत्ता अनादि, अनन्त, निरन्तर परिवर्त्तनशील एवम् अनन्त देश और अनन्त कालवाली तथा "महतो महीयान" है। जीवाणुविज्ञानने प्रमाणित किया है कि, अखिल सत्तामें सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवन और सत्ता है। वह अणुवीक्षणसे भी अगोचर तथा "अणोरणीयान्" है। बस। अपनी अपूर्णताके कारण विज्ञान केवल सत्ताकी एकतातक ही पहुँचता है। वह यह अभीतक नहीं बता सका कि, वही एकता सच्चिदानन्दमय ईश्वर क्योंकर है!

विकासवादका मत है कि, अणुवीक्षणके द्वारा देखे जाने

वाले सेलों (जीविताणुओं) से जीवनका विकास आरम्भ होता है। इनमें जैसे सूक्ष्म रूपसे अन्य अवयव हैं, वैसे ही चेतनाका भी सूक्ष्म रूप है। सारे सेल चेतना-समूह हैं, जिनका अत्यधिक विकसित रूप वह चेतना है, जिससे शरीराभिमानी आत्माका रूप व्यक्त होता है। इस प्रकार चेतनाके विकासकी पराकाष्ठा मानव-चेतनाको माना जाता है। परन्तु संसारके अनेक वैज्ञानिकों तथा लंडनकी परान्वेषण-समितिने सिद्ध कर दिखाया है कि, यह चेतना शरीरके छूट जानेपर भी रहती है, मानव, अतिमानव आदि ही चेतनाके विकासकी अन्तिम सीमा नहीं हैं और चेतनाके विकासकी "इति" भी हो सकती है। यही "इति" पूर्ण आत्मा और परब्रह्म है। इसीलिये दार्शनिकोंका मत है—"अहमस्मि ब्रह्म", 'अयमात्मा ब्रह्म" आदि। यहाँ यह भी ध्यान रखनेकी बात है कि, "इति", सर्वशक्तिमत्ता या सम्पूर्ण सत्ताका मूल एक ही व्यक्तिमें सम्भव है। इसीको अध्यात्मवादियोंने सर्वशक्तिमान् ब्रह्म वा ईश्वर कहा है।

ईश्वरवादी सत्ता मात्रको ब्रह्म कहते हैं और अनेक विज्ञानवादी उसे प्रकृति कहते हैं। परन्तु प्रकृति परिवर्त्तनशील है और जो भी परिवर्त्तनशील है, उसका कारण होता है। वह कारण परिवर्त्तन-हीन होना चाहिये; क्योंकि परिवर्त्तनशील होनेसे उसका भी कोई कारण मानना पड़ेगा। इसीलिये ब्रह्मको ऐसा आदिकारण माना गया है, जो कूटस्थ वा मूल रथ

है। एक बात और भी है। जिस पदार्थकी सीमा किसी दूसरे पदार्थसे बँधी है अर्थात् जो ससीम है, वह विनाशशील होता है। चूँकि प्रकृतिके आकाश, वायु, सूर्य, पृथिवी आदि सभी ससीम हैं; इसलिये सभी विनाशी वा अनित्य हैं। इसीलिये दार्शनिकोंने ईश्वर नामका एक ऐसा नित्य और शाश्वत पदार्थ माना है, जिसके आधारसे प्रकृतिका आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है। यदि ईश्वर नामका सनातन पदार्थ नहीं रहता, तो प्रकृति न मालूम कबकी लुप्त हो गयी होती।

यूरोपमें विज्ञानकी कसौटीपर हो हर एक वस्तुको रगड़नेकी चाल है और इधर विज्ञान अधूरा है; इसलिये इस कसौटीके पक्षपाती अनेक यूरोपीय दार्शनिक भी ईश्वरका ठीक-ठीक विवरण नहीं दे सके हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक हर्बर्ट स्पेंसरने ईश्वरको 'ज्ञानातीत" वा "अज्ञेय" माना है। जान स्टुअर्ट मिलने लिखा है—"सृष्टिरचनाको देखकर ईश्वरकी सत्ता स्वीकार की जा सकती है; परन्तु इससे उसकी सर्वज्ञता या सर्वशक्तिमत्ता नहीं मानी जा सकती।" यदि इन दार्शनिकोंने विज्ञानका पर्दा अपनी आंखोंसे हटा दिया होता, तो ये कभी भी ईश्वरकी ऐसी अपूर्ण व्याख्या नहीं कर सकते थे। भला अधूरे ज्ञान और अधूरी शक्तिवाले ईश्वर और मनुष्यमें क्या भेद हो सकता है? और, असम्पूर्ण ज्ञान तथा सामर्थ्यवाला ईश्वर विराट् सृष्टिकी रचना ही कैसे कर सकता है? इसके सिवा परिमित ज्ञान और शक्तिका ईश्वर अविनाशी वा

नित्य कैसे हो सकता है? जिस-किसीमें अपूर्णता देखी गयी है, वह विनाशी भी अवश्य ही देखा गया है; इसलिये मिलका ईश्वर-विषयक निष्कर्ष कुछ अर्थ नहीं रखता। स्पेंसरकी सूझ भी किसी कामकी नहीं है। ज्ञानातीत ईश्वर हो सकता है; परन्तु सबके लिये नहीं। चींटीके लिये हाथीके सर्वाङ्गका ज्ञान असम्भव हो सकता है; परन्तु मनुष्यके लिये नहीं। रेडियमपर परीक्षा करना कुछ वैज्ञानिकोंके लिये असम्भव हो सकता है; परन्तु सभीके लिये नहीं। जो ईश्वर विशुद्धात्माओंके लिये बुद्धिगम्य है, गांधीजी आदिके कार्योंके लिये तारीखतक बता देता है और जिसे कोटि-कोटि जिज्ञासुओंने भली भाँति जाना है, वह ज्ञानातीत कैसे हुआ? ज्ञानातीत भी हो सकता है; परन्तु स्पेंसर जैसे लोगोंके लिये ही, जो नहीं जानना चाहता, उसके लिये ही।

हमारे अबतकके लिखनेका तात्पर्य यह है कि, विज्ञानका क्षेत्र अलग है और सदाचार, धर्म, अध्यात्मविद्या आदिका अलग; इसलिये ईश्वर-सिद्धिमें विज्ञानका नाम घसीटना व्यर्थ है। विज्ञानने जीवन-संयुक्त अखिल सत्ता मानी है और बस। इसके आगे वैज्ञानिकोंका पहुँच नहीं है। कुछ वैज्ञानिकों और उनकी परान्वेषण-परिषदोंने ईश्वर, आत्मा, परलोक, पुनर्जन्म आदिका अस्तित्व अवश्य ही स्वीकार किया है; परन्तु इनमें धार्मिक दृष्टिकोण भी था; कोरी भौतिकता नहीं। कोरे भौतिक-विज्ञानवादी सदाचार, योग और अध्या-

त्मशास्त्रकी नित्य देखी जानेवाली सैकड़ों अलौकिक बातोंको न तो समझ सकते हैं, न उनपर प्रयोग या निरीक्षण ही कर सकते हैं। हमने यह भी समझानेकी चेष्टा की है कि, चेतनाकी "इति" भी है एवम् वह "इति" असीम, अनन्त, नित्य, मूलस्थ और सबका कारण है और वही ईश्वर है तथा प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ ससीम, सान्त, अनित्य, परिवर्त्तनशील आदि है। यदि ईश्वर नामका व्यक्ति ससीम आदि रहता, तो किसी भी वस्तुकी अबतक सत्ता नहीं रहती।

ईश्वर और फ्लिंट

अंग्रेजीमें फ्लिंट साहबकी "Theism" (आस्तिकवाद) नामकी एक पुस्तक है। उसमें तार्किक, युक्तिविशारद और वैज्ञानिक नास्तिकोंके तर्कों, युक्तियों और कल्पनाओंकी अच्छी खबर ली गयी है। कांट, मिल, हेल्म होल्टज, कामटी, लैपलेस, लांग, हाक्सले आदि-आदिकी शङ्काओंका, बड़ी खूबीके साथ, समाधान किया गया है। हिन्दीका जिस "आस्तिकवाद" पुस्तक पर "मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक" दिया गया है, उसमें फ्लिंटकी ही बातोंका प्राधान्य है। फ्लिंट ईसाई थे; इसलिये आस्तिकत्व-की स्थापनामें ईसाई दृष्टिकी ही प्रबलता है; परन्तु ईश्वर-सिद्धिके विचारसे वह पुस्तक पठनीय है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे नास्तिकोंको एक बार अवश्य उस पुस्तकको पढ़ना चाहिये।

फ्लिंटका मत है कि, "सृष्टि-नियमकी उत्पत्ति अवश्य ही बुद्धिसे हुई है। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि, सृष्टि-नियम जड़ प्रकृतिसे नहीं उत्पन्न हो सकता। प्रकृति जड़ है और उससे बुद्धि या बुद्धिसे उत्पन्न होनेवाली घटनाएँ उत्पन्न नहीं हो सकतीं।" (फ्लिंटका "आस्तिकवाद"; पृष्ठ १७२) फ्लिंटका मतलब यह है कि, जड़ प्रकृतिमें जो इतनी सुव्यवस्था देखी जाती है, ध्रुव, सूय, नक्षत्र, सागर, पर्वत, ऋतु, मास, लता, पुष्प, मनुष्य आदिके यथास्थान और यथा-काल जो स्थापन, परिवर्द्धन, परिवर्त्तन, सौन्दर्य, गति आदि क्रम देखे जाते हैं, प्रकृतिकी सारी वस्तुओंमें जो एक नियम वा नियम-बद्धता देखी जाती है तथा प्रकृति और उससे उत्पन्न पदार्थोंमें जो संरक्षण, स्थिति और प्रयोजनीयता पायी जाती है, वह सब बुद्धि-पूर्वक काय हैं, निर्बुद्धिक नहीं। जड़ प्रकृतिमे बुद्धि नहीं, उसमें सोचने-समझनेकी ताकत नहीं। फलतः एक ऐसे बुद्धिमान् व्यक्तिको मानना पड़ेगा, जो इन सारी व्यवस्थाओंको बनाये हुए है। वही व्यक्ति नित्य ईश्वर है। सृष्टिमें बुद्धि-पूर्वकताको देखकर ईश्वरका वैसे ही अनुमान होता है, जिस प्रकार सेवका गिरना देखकर न्यूटनने पृथिवीकी आकर्षण शक्तिका अनुमान किया था अथवा जैसे गैलीलियोने पृथिवीकी गोलाईका अनुमान लगाया था। प्रत्यक्षवादी नास्तिकोंके यहां भी इसीलिये रोटी बनती है

कि, उन्हें अवश्य ही भूख लगेगी अथवा आगमें नास्तिक भी इसीलिये हाथ नहीं डालते कि, उनका हाथ भी जल जायगा ! फलतः अनुमानसे ही जैसे संसारके सारे काम होते हैं, उसी प्रकार अनुमानसे ही ईश्वर-सिद्धि भी होती है । ईश्वरका प्रत्यक्ष केवल उसके भक्त ही करते हैं ।

आकस्मिकवाद और स्वभाववाद

वैज्ञानिक विवादवालोंमें एक ऐसा दल है, जो 'आकस्मिकवाद" मानता है । उसका मत है कि, सृष्टि वैसे ही अकस्मात् उत्पन्न हो गयी, जैसे भूकम्प, दुर्भिक्ष आदि अकस्मात् होते हैं ! अच्छा, सृष्टि जैसे अकस्मात् हो गयी, वैसे ही अकस्मात् वन्ध्या-पुत्र और अकाश-पुष्प क्यों नहीं हो जाते ? यदि सागर और हिमालय अकस्मात् बन गये, तो काशीका विश्वनाथ-मन्दिर क्यों नहीं अकस्मात् बन गया ? वस्तुतः ब्रह्माण्डका कोई भी पदार्थ अकस्मात् नहीं बना है, सबकी रचना नियम-पूर्वक हुई है और सब नियम-पूर्वक स्थित हैं । अकस्माद्वाद तो बच्चोंका प्रहसन जँचता है !

एक स्वभाववादियोंकी भी मण्डली है । वह कहती है कि, जैसे आगका स्वभाव गर्म होना और जलका स्वभाव ठंढा होना है, वैसे ही परमाणुओंका स्वभाव सृष्टि बना देना है; सृष्टि-

रचनामें ईश्वरकी आवश्यकता नहीं। अच्छा, तो परमाणुओंका स्वभाव मिलनेका है या अलग होनेका? यदि उनका स्वभाव मिलनेका ही है, तो वे मिले ही रहेंगे और बनी वस्तुका कभी विच्छेद नहीं होगा। यदि उनका स्वभाव अलग रहनेका है, तो वे कभी मिलेंगे ही नहीं, कभी कोई वस्तु बन ही नहीं सकेगी! यदि यह कहा जाय कि, कुछ परमाणुओंका स्वभाव मिलनेका है और कुछका अलग होनेका, तो इन दोनों परमाणु-समूहोंमेंसे जिस समूहकी प्रबलता होगी, उसीके अनुकूल कार्य होगा, दोनों कार्य नहीं होंगे—या तो सृष्टि बनी ही रहेगी या बनेगी ही नहीं! यदि दोनों समूह समान-बल हों, तो बराबर खींचातानी होती रहेगी—किसीकी विजय नहीं होगी अथवा किसीकी विजय हो जायगी, तो विजयीके अनुकूल ही कार्य होगा। यदि जगत् सदा एकसी अवस्थामें रहता, तो यह कहा जा सकता था कि, परमाणु-स्वभावके कारण ऐसा होता है। परन्तु जब कि, जड़के परिवर्त्तनोंकी गिनती नहीं है, तब यह कैसे माना जा सकता है कि, इन परिवर्त्तनोंका कारण स्वभाव है? क्या मशीनका स्वभाव चलनेका है? तब वह बन्द क्यों होती है? तब क्या उसका स्वभाव बन्द होनेका है? तब वह चलती क्यों है? यह क्या कभी माना जा सकता है कि, प्रशान्त महासागरसे पानी आ गया, सहारासे मिट्टी आ गयी और विन्ध्याचलसे दावानल पहुँच गया, बस,

आदमी, बैल और आम बन गये ? क्या चीनी, चना और घी मिलकर स्वयं लड्डू बन जाते हैं ? सच तो यह है कि, जड़में कोई कार्य करनेकी शक्ति नहीं है; उसके सारे कार्य बुद्धिपूर्वक ईश्वरके द्वारा बनाये और यथासमय बिगाड़े जाते हैं।

ईश्वर और सृष्टि

सायंस या विज्ञान सृष्टि-प्रक्रियाको इस प्रकार मानता है—"सृष्टिकी उत्पत्तिके पहले न सूर्य था, न चन्द्रमा और न नक्षत्र आदि—समस्त आकाशमें फैला हुआ एक सूक्ष्म द्रव था। विशेष केन्द्र-स्थानोंमें यह द्रव गाढ़ा हो गया और इन स्थानोंमें एक प्रकारकी गति उत्पन्न हो गयी। अनन्तर प्रत्येक केन्द्र एक गोला बन गया और अपनी कीलपर द्रुत वेगसे घूमने लगा। घूमनेके कारण गोलोंमेंसे छोटे-छोटे भाग निकल कर पृथक् हो गये। शनिग्रहके समान पहले तो इनकी चूड़ियाँसी बन गयीं और पीछे इनके भी छोटे-छोटे गोले (उपग्रह आदि) बन गये। ये गोले अपनी कीलों-पर घूमनेके साथ बड़े गोलों (सूर्यों)की चारो ओर भी घूमने लगे। छोटे गोलोंमेंसे अलग टुकड़े हुए। इस प्रकार चन्द्रोंकी सृष्टि हुई। चन्द्रोंमें तीन प्रकारकी गतियां हुईं—एक अपनी कीलोंपर, दूसरी उपग्रहोंकी चारो ओर और तीसरी उपग्रहोंके साथ सूर्योंकी चारो ओर।" सायंसका

मत है कि, प्रकृतिके परमाणु इस प्रकार मिल गये कि, प्राणियोंके शरीरका मूलाधार (प्रोटोप्लाज्म = कललरस) बन गया। परन्तु पदार्थ-विज्ञान इसका कारण नहीं बताता कि, परमाणु ऐसे क्योंकर मिल गये कि, उनमें सर्वथा भिन्न वस्तु (चेतनता) उत्पन्न हो गयी ? आकाशमें व्याप्त द्रव क्यों गाढ़ा हो गया ? केन्द्र-स्थानमें क्यों गति उत्पन्न हो गयी ? अनादि कालसे एकसा फैला हुआ द्रव, बिना कारणके, स्थूल (केन्द्र) क्यों बन गया ? द्रवमें विकासके उपक्रम, प्रोटोप्लाज्मकी उत्पत्ति और चेतनताके आरम्भका कारण बतानेमें विज्ञान बिलकुल असमर्थ है। आस्तिकवादी तो यह डंकेकी चोट कहता है कि, प्राणियोंके अदृष्ट वा प्रारब्धके अनु- सार ईश्वरने सृष्टिका विकास किया और इतर पदार्थोंका प्रारम्भ किया। इसी बातको दार्शनिक ऋषिने अपनी भाषामें कहा है—"एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय।"

असलमें विज्ञान (पदार्थ-ज्ञान) वा सायंसका काम प्राकृ- तिक नियमकी यथाशक्ति जानकारी करना भर है—वह केवल How (कैसे) का उत्तर दे सकता है, Why (क्यों) का नहीं। प्रयोग और निरीक्षणके द्वारा जिन बातोंकी उसे जानकारी होती है, उसे वह बता भर देता है— कारण और कर्त्ताके पास जाना उसका काम नहीं—वहां तक उसकी पहुँच ही नहीं है।

ईश्वर और विकासवाद

विकासवादी डार्विनका मत है कि, कललरससे चेतनता बनी। उसके अनन्तर चेतनताका विकास होता गया और क्रमशः स्थावर, ऊष्मज, अण्डज प्राणी बने। इसके अनन्तर बन्दर बना, चिम्पांजी, गोरिल्ला हुए और इन्हींका विकास मनुष्य हुआ। मनुष्यमें सौन्दर्यका काफी विकास हुआ, उसमें कला, नैतिकता आदि गुण पूरी मात्रामें आये और यह सब प्राकृतिकरीत्या हुआ, ईश्वर या प्राणियोंका अदृष्ट इसमें कारण नहीं है! इसपर यदि कोई विकासवादीसे पूछे कि, सौन्दर्य, कला, सदाचार आदिका कारण क्या है, तो वह चुप हो जाता है! जीवन क्या है? उसका कारण क्या है? क्या जीवनमें वृद्धि, सन्तानात्पत्तिकी शक्ति, विचित्र रंगोंका सौन्दर्य आदि प्रकृतिकी आश्चर्यमयी घटनाओंका घटित होना बिना उत्पादिका, नियामिका और संचालिका शक्तिके ही सम्भव है? क्या विकासकी प्रत्येक अवस्था बिना बुद्धि-युक्त संचालकके सम्भव है? क्या बिना प्रयोजन और प्रयोक्ताके ही, निरुद्देश्य, यह सब हुआ है? इन प्रश्नोंका डार्विनके पास कोई उत्तर नहीं है। हां, डार्विनके पुत्र प्रो० जार्ज डार्विनने दक्षिण अफ्रीकाके ब्रिटिश एसोशियेशनमें एक बार (१६०५ ई० में) अवश्य कहा था कि, "जीवनका रहस्य अब भी

वैसा ही गूढ़ है, जैसा पहले था।" "जीवन-जगत्" (The world of Life) के रचयिता और डार्विनके सहयोगी अलफ्रेड रसेल वालेसका मत तो आस्तिकवादके पूर्ण अनुकूल ही है। वालेसने उक्त पुस्तककी भूमिकामें लिखा है कि, "अपने अधिकारके बाहर समझकर जिन मौलिक नियमोंको अपने ग्रन्थोंमें डार्विनने नहीं लिखा, उनकी भी मैंने परीक्षा की है। जीवन और उसकी वृद्धि, उसके कारण, सन्तति-सृष्टिकी विचित्र शक्तिका कारण, सुन्दर वर्ण आदि-आदि पर विचार करनेसे एक ऐसी उत्पादिका शक्तिका परिचय मिलता है, जो प्रकृतिसे ऐसी आश्चर्यकारक घटनाएँ कराती है। * * * * * विकास-यात्रासे प्रयोजनका भी पता चलता है।" प्रो० जे० ए० टामसन और प्रो० पैट्रिक गेडीसने लिखा है कि, "हम नहीं जानते कि, मनुष्य कहांसे आया और कैसे आया! यह मान लेना चाहिये कि, मनुष्यके विकासके प्रमाण संदिग्ध हैं और सायंसमें उनके लिये कोई स्थान नहीं है।" (Ideals of Science and Faith) सर जे० डब्ल्यू० डासनका मत है कि, "बन्दर और मनुष्यके बीचकी आकृतिका विज्ञानको कुछ पता नहीं" तथा "मनुष्यकी प्राचीनतम अस्थियां भी मनुष्यकीसी ही हैं और इनसे उस विकासका कुछ भी पता नहीं लगता, जो मनुष्य-शरीरसे पहले हुआ है।" डासन साहबका यह भी मत है कि, "मनुष्यकी आदिम अवस्था सबसे उच्च थी।"

होरेशियो हेलने कनाडाकी एक पुस्तिकामें लेख लिखकर सिद्ध किया था कि, "आदि मनुष्यमें उतनी ही उच्च बुद्धि थी, जितनी उसकी सन्तानमें है।" सिडनी कौलेटका सिद्धान्त है कि, "सायंसका स्पष्ट साक्ष्य है कि, मनुष्य उन्नत (विकसित) दशाकी ओर चलनेके स्थानमें अवनति कर रहा है।" (The scripture of Truth) हमारे शास्त्रोंसे ये मत बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं।

उपर्युक्त धुरंधर विज्ञान-वेत्ताओं और विकासवादियोंके कथनसे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि विकासवादके सिद्धान्त अधूरे हैं और उनसे ईश्वरकी असिद्धिके बदले सिद्धि ही होती है। यह भी पता चलता है कि, विज्ञानकी विविध शाखाओंकी अपेक्षा विकास-वादके सिद्धान्त अधिक संदिग्ध हैं और उनसे ही यह भी जँचता है कि, विकास-वाद, कई अंशोंमें, बहुत भ्रान्त है। विकासवाद भी कैसे (How) का ही उत्तर देता है, क्यों (Why) का नहीं। क्योंका उत्तर देनेवाला अध्यात्मवाद है; इसलिये वस्तुतः अन्य विज्ञान-शाखाओंकी ही तरह विकासवादका अध्यात्मवादसे विद्रोह नहीं। एक प्रयोग और निरीक्षणके द्वारा प्रकृतिके नियमोंका स्पष्टीकरण करता है और दूसरा इच्छा और बुद्धिवाले नियम-नियन्ताका सकारण प्रतिपादन करता है। दोनोंमें जो विद्रोह देखते हैं, वे वस्तु-तत्त्वको नहीं समझते। वस्तुतस्तु दोनों ही मिलकर माया और मायावी, शक्ति और

शक्तिमान्, प्रकृति और ईश्वरका सर्वाङ्ग ज्ञान कराते हैं। अच्छा हो कि, विज्ञानके नामपर अध्यात्मवादके ऊपर निष्फल आक्रमण करना छोड़ दिया जाय।

दर्शन और फिलासफी

आत्मा, परलोक, सृष्टि आदिका विवेचन करनेका काम जिस शास्त्रका है, उसे "दर्शनशास्त्र" कहा जाता है। इन उपर्युक्त विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालोंको दर्शनशास्त्रका अध्ययन और मनन करना चाहिये। परन्तु यह बात सदा ध्यानमें रखनेकी है कि, हमारा दर्शनशास्त्र और पाश्चात्त्य फिलासफी एक नहीं हैं। पाश्चात्त्य फिलासफीमें (जिसे आजकल दर्शनशास्त्र कहा जाता है) जड़वादका भी समावेश है। महारे दर्शनशास्त्रमें विशुद्ध चेतनवाद है। फिलासफीमें आत्मज्ञानके सिवा प्रकृतिविज्ञान है, सदाचार-शास्त्र है, समाजनीति है! अर्थनीतितक शामिल है!! फिलासफीका मत है—प्रकृतिके ही सिरपर सवार होकर उसे जीत लेना चाहिये। तात्पर्य यह है कि, जब मनुष्य प्रकृतिके तत्त्वोंको खोज-ढूँढ़ कर अपने जीवनमें उनका उपयोग करने लगता है, तभी वह सुख-शान्तिकी सुशीतल शैय्यापर शयन करता है। हमारा दर्शनशास्त्र कहता है कि, इस संसारमें

पूरा सुख नहीं है। मनुष्य दिन-रात सुखके लिये कर्म-अकर्म करता रहता है; किन्तु उसके जीवन-पथमें प्रकृति या माया ऐसे विघ्न रखती जाती है कि, उसे पूर्ण सुखका अनुभव ही नहीं होता। प्रकृतिके संग मनुष्यका यह संग्राम, सदासे, चला आता है। इस दुर्जेय समरमें उसी मनुष्यके गलेमें विजय-माला पड़ती है, जिसके पास ज्ञानरूप विकट ब्रह्मास्त्र है। इसी ब्रह्मास्त्रसे जब मनुष्य प्रकृति या मायाका बन्धन काट फेंकता है, तब वह चिदानन्द-लहरीमें गोते लगाता है। हमारे दर्शनशास्त्रका उद्देश है उस निर्मल निष्कलङ्क ज्ञानकी प्राप्ति, जिससे आनन्दमय मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, निःश्रेयस या कैवल्य मिलता है, जिससे अनन्त कालका, जन्म-जरा-मृत्युका, बन्धन टूटता है। न्याय, वैशेषिक आदिमें जो कुछ प्रकृति-विज्ञानकी बात हैं, वे अत्यन्त गौण हैं, अध्यात्मवादका मार्ग समझनेके लिये निदर्शक भर हैं और निम्न अधिकारियोंको आगे बढ़ानेके लिये प्रसङ्गतः लिखी गयी हैं।

दर्शन और आत्मसिद्धि

हां, तो हम कह रहे थे कि, आत्मा, परलोक आदिका विचार करना दर्शनशास्त्रका काम है। यहां हमें यह देखना चाहिये कि, यह दर्शनशास्त्र ईश्वरकी सिद्धिके सम्बन्धमें क्या कहता है। पहले चेतन-तत्त्व वा आत्मासे ही विचार प्रारम्भ करनेसे ईश्वर-तत्त्वको समझनेमें सरलता होगी।

नास्तिक कहता है कि, "देह ही आत्मा है, वही मोटी-पतली होती है और वही सब काम-धाम करती है, देहसे भिन्न कोई अदृष्ट वा आत्मा नहीं है।" दर्शनशास्त्र कहता है, देह जड़ पदार्थ है और संसारमें देखा जाता है कि, किसी जड़ पदार्थके अन्दर सोचने-विचारनेकी शक्ति नहीं है; इसलिये सोचनेवाला देहसे भिन्न एक अन्य पदार्थ है, जिसे आत्मा कहा जाता है। यदि यह कहा जाय कि, देह एक ऐसा विलक्षण जड़ है, जिसके अन्दर सोचनेकी भी स्वाभाविक शक्ति है, तो इसका उत्तर दर्शनशास्त्र देता है कि, यदि देहमें स्वाभाविक स्मरणशक्ति है, तो वह मुर्देमें भी रहनी चाहिये; परन्तु मुर्देमें सोचनेकी शक्ति नहीं देखी जाती। इसपर दूसरा नास्तिक कहता है, "मैंने माना कि, देह आत्मा नहीं; परन्तु देहके परमाणु आत्मा हैं और विभिन्न परमाणु विभिन्न-चेतन-स्वरूप होकर सब काम

कर लेते हैं।" दर्शनने इस युक्तिका खूब मुँहतोड़ उत्तर दिया है। वह कहता है, यदि परमाणु ही आत्मा या चेतन हैं, तो लड़कपनके कियेका यौवनमें स्मरण नहीं रहना चाहिये; क्योंकि कुछ ही दिनों (विज्ञानके अनुसार सात वर्षों) में शरीरके सब परमाणु बदल जाते हैं और इधर देखा जाता है कि, बाल्य कालकी अनुभूत वस्तुका यौवन-कालमें पूरा ज्ञान रहता है। फलतः परमाणु ही आत्मा नहीं हो सकते। यदि यह कहा जाय कि, कारण-रूप बचपनके संस्कारसे कार्यरूप यौवनके संस्कारका ज्ञान होता है, तो दर्शन कहता है कि, तब मातृरूप कारणका ज्ञान कार्य-रूप बच्चेमें क्यों नहीं होता ?

दूसरी बात यह है कि, अनेक-परमाणु-रूप चेतन एक ही देहमें नहीं रह सकते; क्योंकि सभी चेतनोंमें सदा ऐकमत्य या एकसी बुद्धि नहीं रह सकती। यदि कहीं पैरवाला चेतन चलना चाहे और मस्तिष्कवाला चेतन खड़ा होना, तो देहके हकमें अनर्थ हो जाय ! फिर भी, अनेक चेतनोंके रहनेपर भी, यदि कहीं हाथ कट जाय, तो उसका ज्ञान पीछे नहीं रह सकता; क्योंकि कटे हाथकी चेतना चली ही गयी है ! फलतः देह वा परमाणु आत्मा नहीं हो सकते; आत्मा स्वतन्त्र और स्मरण-अनुभव-शील चेतन है।

कुछ नास्तिकोंके मतसे शरीरका गुण आत्मा वा चेतन है। वे शरीरको ही अधिकरण, स्वतन्त्र, द्रव्य और धर्मी

मानते तथा आत्माको आधेय, परतन्त्र, गुण और धर्म मानते हैं। वे कहते हैं, जैसे किसी स्वतन्त्र खम्भेका परतन्त्र गुण (उसकी लम्बाई) उसके साथ ही सदा रहता है और खम्भेके विनष्ट होनेपर लम्बाईका भी विनाश हो जाता है, वैसे ही गुणी (शरीर) के साथ गुण (आत्मा) रहता तथा उसीके साथ विनष्ट हो जाता है। वे यह भी कहते हैं कि, जैसे तण्डुल-चूर्ण, गुड़ आदिके मेलसे बने हुए मद्यमें स्वयं नशा करनेकी शक्ति आ जाती है, वैसे ही पृथिवी, जल और अग्नि आदि भूतोंके मेलसे रचित शरीरमे स्वय चैतन्य गुण आ जाता है। फलतः आत्मा या चेतन शरीरका स्वाभाविक धर्म है—संसारमें कोई स्वतन्त्र चैतन्य नहीं है।

दर्शनशास्त्रने इन बातोंके अकाट्य उत्तर दिये हैं। दर्शनका मत है कि, भौतिक शरीरका स्वाभाविक धर्म चैतन्य नहीं है; क्योंकि प्रत्येक भूतमें चेतनता नहीं देखी जाती। जिस पदार्थका जो धर्म है, वह सदा उसके साथ देखा जाता है— चाहे पदार्थका समुदाय रहे, चाहे एक देश रहे। प्रत्येक जड़ पदार्थका धर्म स्थानावरोध या जगह छेकना है—चाहे वह जड़ पदार्थ बड़ा हो या छोटा, जर्रा (परमाणु) हो या पहाड़। परन्तु जड़के धर्म या गुण माने हुए चैतन्य के सम्बन्धमें यह बात नहीं देखी जाती। प्रत्येक भूतमें चैतन्य नहीं देखा जाता; वह केवल शरीरमें ही देखा जाता है—सो भी केवल जीवित शरीरमें ही। यदि चैतन्य

देहका धर्म होता, तो किसीकी कभी मृत्यु ही नहीं होती। देखा जाता है कि, चैतन्यके अभावके विना मृत्यु नहीं होती; और, यदि, चैतन्य शरीरका धर्म होता, तो कभी भी वह शरीरसे अलग नहीं हो सकता। जैसे आगका स्वाभाविक धर्म (गर्मी) कभी आगसे अलग नहीं होता है, वैसे ही शरीरमें सदा चेतनता रहती, जिससे त्रिकालमें भी शरीरका विनाश नहीं होता। इसलिये चैतन्य देहका स्वाभाविक धर्म नहीं है।

दर्शनशास्त्रने मदवाली बातका भी खूब सुन्दर उत्तर दिया है। कहा है, मदशक्तिकी तरह चैतन्य कोई आविर्भूत गुण नहीं है। जिन-जिन आधारोंमें सूक्ष्म रूपसे जो-जो गुण रहते हैं, उन-उन आधारोंके एकत्र करनेपर उन-उन गुणोंका विकास होता है। चावल और गुड़ आदिमें पहलेसे ही नशे-की शक्ति, सूक्ष्म रूपसे, स्थित रहती है, जिससे उनका मेल होनेपर मादकता विकसित हो जाती है। चेतनताके उदाहरणमें यह बात नहीं देखी जाती। देहके उपादान पञ्च भूतोंमें वा शुक्र-शोणितमें चेतनता नहीं देखी जाती। इस लिये यह स्पष्ट है कि, भूतोंके कार्य (शरीर) में चेतनता नहीं उत्पन्न हो सकती। एक नियम यह भी है कि, कारण-गुणके अनुसार ही कार्य-गुणका प्रारम्भ होता है। फलतः कारण-रूप भूतोंमें चैतन्याभाव रहनेके कारण उनके कार्य-रूप शरीरोंमें चैतन्यका अभाव स्वयंसिद्ध है।

इतनी बातें समझनेके बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि, चैतन्य शरीर, जड़ वा भूतका धर्म नहीं है; वह उस पदार्थका धर्म है, जो जड़से स्वतन्त्र और कार्यकारी पदार्थ है। वह कार्यकारी इसलिये है कि, ब्रह्माण्डके किसी भी जड़ पदार्थमें काम करनेकी शक्ति नहीं देखी जाती और जबतक जड़में चैतन्य रहता है, तभीतक उसमें कार्यकारिणी शक्ति देखी जाती है। इसपर कितने ही लोग यह आक्षेप करते हैं कि, कुल्हाड़ीमें भी काम करनेकी शक्ति देखी जाती है; इसलिये उसमें भी चैतन्य वा उसका अधिकरण मानना चाहिये। किन्तु यह आक्षेप निर्मूल है; क्योंकि क्रियाका कारण इच्छा है और इच्छा कुल्हाड़ी वा किसी भी जड़में नहीं देखी जाती। फलतः जिसमें स्वातन्त्र्य, सोचने-विचारनेकी सामर्थ्य और इच्छाशक्ति है; वही चेतन है—किसी-किसी मतमें चैतन्य है और उसके अधिष्ठानका नाम चेतन है।

आँखोंसे नीबूको देखनेसे, कानोंसे नीबूकी बात सुननेसे वा नाकोंसे नीबूको सूँघनेसे जीभपर पानी चला आता है; इससे मालूम पड़ता है कि, आँखों, कानों, नाकों और जीभका आधार एक ही है, जिससे इन इन्द्रियोंको प्रेरणा मिलती है। हाथों वा पैरोंसे किसी अभीष्ट वस्तुका स्पर्श होनेसे आनन्दके मारे आँखें नाचने लगती हैं। इससे विदित होता है कि, हाथों, पैरों और आँखोंका एक ही मूल है,

जिससे इन इन्द्रियोंमें कार्य-संचालन होता है। वही आधार वा मूल आत्मा है। प्रत्येक प्राणीमें आत्मा है। आत्मा ईश्वरका अंश है। आत्मा शरीरमें आबद्ध और अनेक है तथा ईश्वर सर्व-व्यापी और एक है। आत्मा चेतन है और ईश्वर महाचेतन है। जैसे, आत्मा घट, पट आदिका निर्माता है, वैसे ही ईश्वर पर्वत, सागर, वायु आदि निखिल ब्रह्माण्डका कर्त्ता, नियामक, संहर्त्ता आदि है।

ईश्वरसिद्धि और "न्यायकुसुमाञ्जलि"

उदयनाचार्यकी "न्याय-कुसुमाञ्जलि"में ईश्वर-सिद्धिमें बड़ी ही अपूर्व युक्तियां हैं। उन्हें जरा ध्यानसे पढ़िये—

(१) सृष्टिगत सागर, पर्वत आदि जितने पदार्थ हैं, सब कार्य हैं और संसारमें देखा जाता है कि, बिना कारणके कार्य नहीं होता; इसलिये ईश्वर-रूप कारणसे सृष्टि-रूप कार्य हुआ।

(२) पौरस्त्य और कितने ही पाश्चात्य दार्शनिक तथा अधिकांश वैज्ञानिक परमाणुओंके मेलसे सृष्टि मानते हैं। परमाणुओंको मिलानेमें जो क्रिया हुई होगी, उसमें कर्त्ताकी अवश्य ही आवश्यकता हुई होगी। वही कर्त्ता ईश्वर है।

(३) सृष्टिके प्रारम्भमें दो अणु परस्पर मिलते हैं,

जिसे दार्शनिक "द्वि-अणुक-संयोग" कहते हैं। इसके अनन्तर कई अणु मिलते हैं। यह बात किसे सूझी कि, दो अणुओंके संयोगसे सृष्टि होगी? जिसे सूझी, वही ईश्वर है।

(४) सृष्टिको कोई नियामक आधार आवश्यक है। वही ईश्वर है।

(५) सृष्टिके प्रारम्भमें कौन काम कैसे होंगे, इसे किसने बताया? बतानेवाला वही ईश्वर था।

(६) प्राणियोंने प्रथम-प्रथम बोलना किससे सीखा? जिससे सीखा, वही ईश्वर है।

(७) ध्वनि-रूप वेद किसने बनाये? बनानेवाला ईश्वर है।

(८) वेदोंमें ज्ञान प्रदान करनेकी शक्ति किसने दी? यह शक्ति जिसने दी, वही ईश्वर है।

ईश्वरसिद्धि और दर्शन

दार्शनिकोंने ईश्वर-सिद्धिमें और भी अनेकानेक ऐसी युक्तियाँ दी हैं, जिन्हें लिखनेसे एक बहुत बड़ा पोथा हो जायगा; इसलिये हम सब युक्तियोंको न देकर दो-चार ही ऐसी युक्तियाँ लिखते हैं, जो अकाट्य हैं—

(१) जिन पदार्थोंके अंश देखे जाते हैं, उनका कोई न कोई मूल अवश्य होगा। खड़ाऊँ, चौखट आदिका मूल एक अवश्य

होता है। लहरियोंका सागर, किरणोंका सूर्य आदि भी अंश और मूलकी तरह उदाहरण हैं। इसलिये यह बात सिद्ध है कि, अपूर्ण और न्यूनाधिक पदार्थोंका कोई पूर्ण और विश्राम-स्थानीय तत्त्व रहता है। अपूर्ण और न्यून तिलसे आँवला बड़ा है और उस अपूर्ण, न्यून तथा अपेक्षाकृत अधिक बड़े आँवलेसे श्रीफल बड़ा है। इसी तरह तारतम्यानुसार एकसे दूसरा बड़ा और पूर्ण है। इन सब अंशात्मक पदार्थोंका एक पूर्ण मूल है, जो सबसे महान् है। वही ईश्वर है।

(२) संसारमें जहाँ देखिये, वहीं ज्ञानकी कमी-बेशी है। एकके ज्ञानकी अपेक्षा दूसरेका ज्ञान बढ़ा-चढ़ा देखा जाता है। संसारमें देखा जाता है कि, देवदत्त नामक मनुष्य भूत, भविष्य और वर्त्तमानका जितना ज्ञान रखता है, उससे दूना ज्ञान किसी यज्ञदत्त नामक व्यक्तिको है। इसलिये यह बात स्पष्ट है कि, ज्ञानका भी यथेष्ट तारतम्य है। यह बात लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि, इस तारतम्यका कहीं न कहीं अवश्य विश्राम और चरमोत्कर्ष भी होगा। जहाँ चरमोत्कर्ष होगा, वही ईश्वर है।

(३) जगत्में ऐश्वर्यका भी तारतम्य देखा जाता है जो उत्कर्ष देवनायकके पास है, वह देवके पास नहीं। इस तरह जहां ऐश्वर्यकी सबसे उत्कृष्टता है, वही ईश्वर है।

(४) ईश्वर एक ही है, अनेक नहीं हो सकता। यदि कई ईश्वर हों, तो यह गड़बड़ होगी कि, एक ही वस्तुके

लिये दो ईश्वरोंकी दो इच्छाएँ, एक ही साथ, होनेपर एककी इच्छा पूरी होगी और एककी अधूरी। एक ईश्वर किसी वस्तुको बनाना चाहेगा और दूसरा बिगाड़ना, तो इच्छा पूरी होगी एक ही ईश्वरकी। इधर यह अकाट्य अनुमान है कि, जिसकी इच्छा पूरी नहीं होती, अधूरी रहती है वा जिसकी इच्छा गड़बड़झालेमें रहती है, वह अल्पज्ञ प्राणी हो सकता है, सर्वज्ञ और पूर्ण ईश्वर नहीं। इसलिये ईश्वर एक ही है।

(५) नास्तिक कहता है कि, ईश्वरका सबको प्रत्यक्ष नहीं होता; इसलिये ईश्वर नहीं है। इसपर दार्शनिक कहते हैं कि, पहले तो सबको सब बातोंका प्रत्यक्ष नहीं होता। बहुतोंने अणुओंको नहीं देखा है, तो भी शब्द प्रमाणके अनुसार सब उनका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। इसी तरह शब्द प्रमाणके द्वारा ईश्वरको माना जाना चाहिये। दूसरे, सभी जगह प्रत्यक्ष प्रमाण भी दोष-शून्य नहीं है। पाण्डु रोगवाला व्यक्ति संसारकी सभी चीजोंको पीली और हरा चश्मावाला हरी देखता है। परन्तु वास्तवमें संसारमें सभी चीजें न तो पीली हैं और न हरी ही। इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाण विश्वास-हीन और सदोष है। तब भला इससे ईश्वरका सबको प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? फलतः ईश्वरास्तित्वमें शब्द प्रमाण ही सर्वोत्तम प्रमाण है।

कुछ लोगोंने अनुमान प्रमाणको भी दोष-दुष्ट बता कर शब्द प्रमाणको ही ऊँचा रखा है। चींटियोंका निकलना देखकर या मयूरकी बोली सुनकर जो वर्षा होनेका अन्दाज लगाया जाता है, उसे अनुमान प्रमाण कहा जाता है। इसका उत्तर है कि, अनुमान ठीक नहीं; क्योंकि मनुष्यके तंग करनेपर यदि यों ही चींटियोंका झुंड निकल जाय और यदि कोई मनुष्य ही मयूरकी बोली बोल दे, तो वर्षाका अनुमान कर लेना होगा। इस प्रकार अनुमान भी सदोष है। इसीलिये भगवान् कृष्णने भी गीतामें कहा है—

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य-व्यवस्थितौ"

दार्शनिकोंने ईश्वर-सिद्धिमें अगणित युक्तियाँ दी हैं; परन्तु साथ ही अपौरुषेय वेदों और आप्त ऋषियोंके ग्रन्थोंसे शब्द प्रमाण भी यथेष्ट दिये हैं। वस्तुतः ईश्वर जैसे साधारणतया अगम्य पदार्थका पता वे ही दे भी सकते हैं, जिन्होंने ईश्वरके अनुभवके लिये सर्वस्व त्याग करके विजन विपिनमें विकट तपस्या और साधनाके द्वारा अपनी हड्डियाँतक सुखा डाली हैं। परन्तु जो विषयोंके कीड़े हैं, जिनमें उद्दीप्त तपस्या और प्रचण्ड साधना नहीं है और दिव्य संयमके द्वारा जिनका मनोमल प्रक्षालित नहीं हो सका है, वे क्या ईश्वरकी अनुभूति करेंगे और वे बेचारे क्या ईश्वर-तत्त्वको जानने गये? इसलिये ईश्वरके सम्बन्धमें वेदोंसे लेकर आधुनिक साधकोंतकके वचनों, अनुभवों, युक्तियों और तर्कोंको यहाँ हम, अत्य-

न्त संक्षेपमें, दे देते हैं। कदाचित् पाठकोंके लिये भी यह शैली रुचिकर होगी।

ईश्वर और वेद

हमारे मूल धर्म-ग्रन्थ वेद ही हैं—"वेदा मूलम्।" दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराण आदि वेदोंकी व्याख्यायें हैं। करोड़ो हिन्दू ऐसे हैं, जो वेदोंको मनुष्य-जातिकी समस्त ज्ञानराशिका सुदृढ़ आधार मानते हैं। करोड़ो हिन्दू वेदोंको नित्य और ईश्वर-कृत मानते हैं। हमारे धर्म-शास्त्रमें वेद न माननेवाला नास्तिक है—"नास्तिको वेद-निन्दकः।" यह मनुजीका वचन है। मनुजीने यह भी लिखा है कि, "वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ" मतलब यह कि, वेदसे ही धर्मका विधान किया गया है। मनुजीका यह भी मत है कि, "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।" "कौषीतकि-ब्राह्मण"का सिद्धान्त है (१०।३०) कि, वेदके मन्त्र तपःपूत ऋषियोंके द्वारा आविर्भूत हुए हैं वा देखे गये हैं—बनाये नहीं गये हैं। "ऐतरेय-ब्राह्मण"का कहना है (३।१९) कि, गौरवीतिने मन्त्र-समूहों (सूक्तों) को देखा था। जिन दार्शनिकोंने अपने दर्शनोंमें ईश्वरतककी अनावश्यकता स्वीकार की है, वे भी वेदोंको नित्य मानते हैं। कुल्लूकभट्टने लिखा है कि, प्रलयकालमें भी परमात्मामें वेद

रहते हैं—"प्रलयकालेऽपि परमात्मनि वेदराशिः स्थितः।" लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलकने वेदका प्रमाण माननेवाले-को ही हिन्दू कहा है—"प्रामाण्य-बुद्धिर्वेदेषु।" कोरे ऐति-हासिकोंका भी मत है कि, आर्य-जातिका विशेषतः और मनुष्यजातिका साधारणतः इतिहास जाननेके लिये वेदोंसे बढ़कर कोई साधन नहीं। देश और विदेशके प्रायः सभी पुरातत्त्व-वेत्ताओंका मत है कि, ऋग्वेदके समान संसा-रका कोई भी प्राचीन ग्रन्थ नहीं है—असीरियाकी मृत्फलक-लिपिमें लिखी एक खण्डित पुस्तकसे भी शायद ऋग्वेद पुराना है। पुरातत्त्वज्ञ सभी वेदोंसे प्राचीनतम ऋग्वेदको ही मानते हैं।*

हमारे इतना लिखनेका मतलब यह है कि, सभीकी दृष्टिमें संसारका सर्व-श्रेष्ठ ग्रन्थ ऋग्वेद है; इसलिये ईश्वर-सिद्धिके सम्बन्धमें ऋग्वेदकी सम्मति सर्वाधिक मूल्यवती होगी। जो लोग यह कहनेकी धृष्टता करते हैं कि, ऋग्वे-दमें ईश्वरका कहीं उल्लेख नहीं है, आगेकी पङ्क्तियोंसे

* हमारे यहांसे हिन्दी-अनुवाद-सहित सम्पूर्ण "ऋग्वेद-संहिता" निकली है, जिसका मूल्य लागत भर १६) रु० रखा गया है। इस पुस्तकमें सब आठ खण्ड हैं और प्रत्येक खण्डका मूल्य २) रु० है। अनुवाद अत्यन्त सरल हिन्दीमें किया गया है। इस अनुवाद-के सिवा हिन्दीमें ऋग्वेदका दूसरा अनुवाद अबतक नहीं हुआ है।

पता—वैदिक-पुस्तकमाला-कार्यालय,

सुलतानगंज (ई० आई० आर०)

उनका भ्रम भी दूर हो जायगा।

ऋग्वेद, १म मण्डल, १६४ वें सूक्त, ६ष्ठ मन्त्रका अर्थ है—

"मैं अज्ञानी हूं। कुछ न जानकर ही ज्ञानियोंसे जाननेकी इच्छासे पूछता हूं। जिन्होंने इन छः लोकोंको धारण कर रखा है और जो अजन्मा हैं, वे क्या एक हैं ?"

इसी सूक्तके २०वें मन्त्रका भाव है—

"मित्रताके साथ दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) एक ही वृक्ष-रूप शरीरमें रहते हैं। उनमें (जीवात्मा) स्वादु शरीर-संभोग करता है और दूसरा (परमात्मा) कुछ भी भोग नहीं करता, केवल द्रष्टा है।"

इन मन्त्रोंमें लोक-नियामक, अजर, अद्वितीय, व्यापी और केवल द्रष्टा परमात्माका जो उल्लेख है, उससे बढ़कर परमात्माका स्पष्ट विवरण और क्या हो सकता है ?

ऋग्वेद, ३य मण्डल, ५५ वें सूक्तके १६ वें मन्त्रका अर्थ है—

"अन्तर्यामी होनेके कारण सबके प्रेरक और नाना प्रकारके रूपोंवाले "निर्माता" (त्वष्टा) अनेक प्रकारसे प्रजाको उत्पन्न करते और उनका पालन करते हैं। वे सारे भुवनोंके निर्माता हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।"

जिन लोगोंका कहना है कि, ऋग्वेदमें ईश्वरका उल्लेख नहीं है, वे आँखें फाड़-फाड़कर इसको बार-बार पढ़ें।

ऋग्वेद, १०म मण्डल, २७वें सूक्तके ६ वें मन्त्रके अर्थपर ध्यान दीजिये—

(तपःपूत ऋषिकी अनुभूति—) "संसारमें जो तृण खानेवाले पशु हैं, वह हम ही हैं। जो अन्न वा यव खानेवाले (मनुष्य) हैं, वह हम ही हैं। विस्तृत हृदयाकाशमें जो अन्तर्यामी ब्रह्म हैं, वह भी हम ही हैं।"

इसी मण्डलके ३१ वें सूक्तके ८ वें मन्त्रका अर्थ पढ़िये—

"द्यु लोक और भूलोक ही अन्तिम नहीं हैं। इनसे भी बढ़कर कुछ है। वह ईश्वर है, जो प्रजाका निर्माता तथा द्युलोक और भूलोकका धारण-कर्त्ता है। वह अन्नका प्रभु है।"

उक्त दोनों मन्त्रोंमें ईश्वरका क्या ही दिव्य और भव्य अनुभव तथा विवरण है!

इसी १०म मण्डलके ६०वें सूक्तके १म, २य और ३य मन्त्रोंके अर्थोंसे ईश्वरके स्वरूप और उनकी महिमापर बड़ा ही सुन्दर प्रकाश पड़ाता है। वे अर्थ ये हैं—

१म मन्त्रका अर्थ—"विराट् पुरुष अर्थात् ईश्वर अनन्त शिरों, अनन्त चक्षुओं और अनन्त चरणोंवाले हैं। वह ब्रह्माण्ड-गोलकको चारो ओरसे व्याप्त कर और ब्रह्माण्डसे बाहर भी व्याप्त होकर अवस्थित हैं।"

२य मन्त्रका अर्थ—"जो कुछ हुआ है और जो कुछ होनेवाला है, सो सब ईश्वर ही हैं। वह देवत्वके स्वामी हैं; क्योंकि प्राणियोंके भाग्यके निमित्त अपनी कारणावस्थाको छोड़कर जगदवस्थाको प्राप्त करते हैं।"

३ य मन्त्रका अर्थ—"यह सारा ब्रह्माण्ड ईश्वरकी महिमा

है। ईश्वर तो स्वयं अपनी महिमासे भी बड़े हैं। ईश्वर वा पुरुषका एक अंश ही यह ब्रह्माण्ड है—उनके अविनाशी तीन अंश तो दिव्य लोकमें हैं।"

इन अर्थोंको पढ़कर क्या कोई यह कह सकता है कि, वेदोंमें ईश्वरका सर्वाङ्ग-सुदर वर्णन नहीं है? क्या ईश्वरका इससे भी जानदार और शानदार विवरण मिलना सरल है?

इसी मण्डलके १२९ वें सूक्तका नाम "नासदीय सूक्त" है। लो० तिलकने "गीता-रहस्य"में लिखा है कि, मनुष्य-जाति की सर्व-श्रेष्ठ चिन्ता यही है। इस सूक्तके दूसरे मन्त्रका अर्थ है—

"उस समय (सृष्टिकी पूर्वावस्थामें) मृत्यु नहीं थी, अमरता भी नहीं थी, दिन और रातका भेद भी नहीं था। वायु-शून्य और आत्मावलम्बनसे श्वास-प्रश्वास-युक्त केवल ब्रह्म थे। उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।"

४ थे मन्त्रका अर्थ है—

'सर्वप्रथम परमात्माके मनमें काम (सृष्टिकी इच्छा) उत्पन्न हुआ। उससे बीज वा उत्पत्ति-कारण निकला।" इत्यादि।

इन दोनों मन्त्रोंमें ईश्वरतत्त्व उसी तरह निहित है, जिस तरह तारमें बिजली निहित रहती है।

ऋग्वेदमें ईश्वर-प्रतिपादक अनेकानेक मन्त्र हैं———इन्द्र, अग्नि आदिको लक्ष्य करके भी अनेक मन्त्रोंमें ईश्वरका

प्रतिपादन किया गया है; परन्तु स्थान-संकोचके कारण यहां हम दिग्दर्शन भर करा सके हैं। ऊपर लिखे ऋग्वेदके अनेक मन्त्र यजुर्वेदमें भी हैं; इसलिये यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि, यजुर्वेदमें भी ईश्वर-स्वरूप भली भाँति विवृत है। यजुर्वेदकी "ईशावास्योपनिषद्" तो ईश्वर-स्वरूप बतानेवाला प्रसिद्ध ग्रन्थ है ही। सामवेदके अनेक स्थलों (१।३।२।४।६, १।६।२।२।७ आदि) में इन्द्र-रूपसे ईश्वरका वर्णन मिलता है। अथर्ववेद (१६।५६) में कालरूपसे ईश्वरका सुन्दर प्रतिपादन किया गया है।

उपनिषदोंका तो इस सम्बन्धमें कहना ही क्या है? उनकी ब्रह्म-विवृतिपर तो देश-विदेशके सभी दार्शनिक और आस्तिक विमुग्ध हैं। ईशावास्यको लीजिये वा मुण्डकको उठाइये, छान्दोग्यको पढ़िये वा बृहदारण्यकका परिशीलन कीजिये, सबमें आप परम पिताकी निर्मल ज्योत्स्नाका दर्शन करेंगे।

ईश्वर और सांख्यदर्शन

अब दर्शनोंपर दृष्टि डालिये। प्रथम सांख्यदर्शनसे ही प्रारम्भ कीजिये। वर्त्तमान सांख्य-सूत्र छः अध्यायोंमें विभक्त हैं और सब ४५६ सूत्र हैं। इनमें पुरुष (चेतन) और

प्रकृति (जड़) को नित्य माना गया है; परन्तु कई सूत्रोंसे ईश्वरको इस दर्शनमें असिद्ध माना गया है। किन्तु यह बात ठीक नहीं जँचती। इसके कई कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि, उपलब्ध सांख्यसूत्र आधुनिक हैं। प्राचीन सांख्यसूत्रका नाम "तत्त्वसमाससूत्र" था। यह ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। अधिकांश पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वानोंका मत है कि, "तत्त्वसमाससूत्र"में ईश्वर-खण्डन नहीं था। दूसरा कारण यह है कि, पुराण आदिमें जिन सांख्य-प्रणेता कपिलको ईश्वरका अवतार माना गया है, उन्होंने ईश्वरका खण्डन किया है, यह बात विश्वसनीय नहीं है। तीसरा कारण यह है कि, सांख्यदर्शनके तीसरे अध्यायके "ईदृशेश्वर-सिद्धिः सिद्धा" सूत्रसे मालूम पड़ता है कि, विवेक-ज्ञानसे जो जीव ईश्वर हो गये हैं, उनका अस्तित्व सांख्यको स्वीकृत है। ऐसे ईश्वर-की स्वीकृतिसे मालूम पड़ता है कि, सांख्यवाद नास्तिक-वाद नहीं है। चौथा कारण सांख्याचार्य विज्ञानभिक्षुका सांख्य-भाष्य है। सांख्यके प्रथमाध्यायके ९२ वें सूत्र "ईश्वरासिद्धेः" के भाष्यमें विज्ञानभिक्षुने लिखा है कि, "इस सूत्रका मतलब ईश्वरका खण्डन करना नहीं है—इससे दर्शनकारको केवल सन्देह उठानेवालेका मुँहतोड़ जवाब भर देना है। यदि कपिलका ईश्वर-खण्डन ही अभिप्राय रहता, तो वे साफ-साफ "ईश्वराभावात्"—ईश्वर है ही नहीं, ऐसा लिख

देते। ईश्वरको असिद्ध कहकर इस दर्शनने जो निरीश्वरता दिखायी है, उसका और कुछ मतलब नहीं, केवल "ईश्वरो हि दुर्ज्ञेय इति निरीश्वरत्वम्"--ईश्वर बड़ी कठिनतासे जानने योग्य है, यही अभिप्राय है।" पाँचवाँ कारण यह है कि, पुराणोंमें जहां-जहां सांख्यका विवरण दिया गया है, वहां-वहां ईश्वरका खण्डन नहीं किया गया है।

इसपर यदि कोई कहे कि, फिर आगे कहीं सूत्रकारने क्यों नहीं ईश्वरका मण्डन किया है वा अपना स्पष्ट भाव बताया है, तो भाष्यकार (विज्ञानभिक्षु) कहते हैं कि, सूत्रकारका जो प्रयोजन था, वह उन्होंने निकाल लिया; यहां और ज्यादा बात बढ़ानेकी जरूरत ही क्या थी? इसके अतिरिक्त ईश्वरको असिद्ध मान लेनेपर भी जब पुरुषकी मुक्तिमें कोई बाधा नहीं पड़नेवाली है, तब सूत्रकारको सेश्वर और निरीश्वरका झगड़ा उठाकर लेना ही क्या था? विज्ञानभिक्षुने सांख्यके ईश्वरका नास्तित्व बतानेवाले अन्य सूत्रोंका भी ईश्वर-परक ही भाष्य किया है। ये वे ही विज्ञानभिक्षु हैं, जो, कई मनीषियोंके मतसे, वर्त्तमान सांख्यसूत्रके कर्त्ता हैं और जिन्होंने १६ के लगभग दार्शनिक ग्रन्थ बनाये हैं तथा भाष्योंकी रचना की है। इन्हींके मतके पक्षपाती महामहोपाध्याय प० अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि आदि हैं। चूड़ामणिजीने सांख्यसूत्रपर एक सुन्दर भाष्य लिखकर और सभी निरीश्वरवादी सूत्रोंका विशद

अर्थ करके इस दर्शनको सेश्वर सांख्य सिद्ध किया है। आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्द और उनके अनुयायी भी इसी मतके पोषक हैं। देशके हजारों विद्वान् भी इसी मतके हैं।

ईश्वर और योगदर्शन

महर्षि पतञ्जलिका बनाया योगदर्शन चार पादों (अध्यायों) और १९५ सूत्रोंमें पूर्ण हुआ है। इनमें ईश्वरके सम्बन्धमें कई सूत्र हैं। प्रथम पादमें २४ से २९ सूत्रोंमें ईश्वरके लक्षण आदि विवृत हैं। २४ वें सूत्रमें लिखा है कि, क्लेश, कर्म, कर्मफल, वासना वा संस्कार आदिसे ईश्वर अछूता है और एक तरहकी विशेष अथवा स्वतन्त्र आत्मा है। क्लेश आदि अन्तःकरणके धर्म हैं और अन्तःकरणसे आत्मा या पुरुषका सम्बन्ध होनेसे जीवात्माको क्लेश आदि भोगने पड़ते हैं। विशुद्धान्तःकरण ईश्वर क्लेश आदिसे अलग हैं; इसलिये वे भोक्ता भी नहीं हैं। सूत्र ऐसा है—

"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" ।

२५ वें सूत्रका मतलब यह है कि, ईश्वरकी बुद्धि अनादि कालसे ही विशुद्ध है; इसलिये वह नित्य-मुक्त है—

"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञत्वबीजम्"।

२६ वें सूत्रमें कहा गया है कि, ईश्वर ब्रह्मा आदिके गुरु या शिक्षक हैं; वह कालमें नहीं बँधे हैं; उनकी मृत्यु नहीं होती और उनके ही हाथमें काल भी रहता है—

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।"

२७ वें और २८ वें सूत्र यों हैं—

"तस्य वाचकः प्रणवः ।" "तज्जपस्तदर्थभावनम् ।"

मतलब यह कि, ईश्वरका सर्व-श्रेष्ठ नाम ओङ्कार है; इसलिये प्रत्येक योगाभ्यासीको ओङ्कारका जप और उसके अर्थका चिन्तन करना चाहिये ।

२९वें सूत्रमें लिखा है कि, जप और चिन्तन करते-करते भक्तकी योग-बाधक व्याधियां विनष्ट होती हैं और उसे आत्मज्ञान मिलता है—

"ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।"

ईश्वर और न्यायदर्शन

महर्षि गौतमका न्यायदर्शन ५२१ सूत्रोंमें समाप्त हुआ है। इस दर्शनके जो सोलह पदार्थ हैं, उनमें प्रमेयके अन्तर्गत आत्माका ही उल्लेख है—परमात्माका नहीं। परन्तु पीछेके नैयायिकोंने यह माना है कि, आत्मा शब्दमें ही

परमात्माका ग्रहण है। न्यायदर्शनके चतुर्थ अध्याय, प्रथम आह्निकके कई सूत्रोंमें ईश्वरका प्रसङ्ग आया है। आत्माके सम्बन्धमें तो बहुत उल्लेख है। नैयायिक तार्किक-शिरोमणि कहे जाते हैं; इसलिये आत्मा और परमात्माके सम्बन्धमें हम इनका, अत्यन्त संक्षिप्त मत, यहां दे देना आवश्यक समझते हैं।

नैयायिक आत्माको द्रष्टा, भोक्ता, ज्ञाता आदि मानते हैं। न्यायदर्शनके प्रणेता महर्षि गौतमके सूत्र (१।१।१०) से आत्माका अस्तित्व अनुमानसे सिद्ध है, ऐसा भाष्यकारका मत है। परन्तु पीछेके नैयायिकोंने आत्माका मानस प्रत्यक्ष माना है। मनसे ही आत्मा और सुख-दुःखका प्रत्यक्ष नैयायिक मानते हैं। "जिस वस्तुको उस दिन मैंने देखा था, उसीको आज भी देखता हूँ"— इस प्रत्यक्ष और प्रात्यभिज्ञानमें दोनों दिनोंका देखनेवाला भी भासित होता है। इसमें और ऐसी ही कितनी ही बातोंमें प्रत्यक्ष ज्ञान मानना ठीक जँचता है। किसी भी वस्तुको छूने, देखने, स्वाद लेने आदिका आधार एक ही है—सबका ज्ञाता भी एक ही है, यह हम पहले भी लिख आये हैं। नैयायिक लोग इन बातोंसे आत्माको अनुमान-सिद्ध मानते हैं। बिना कारण बच्चेका हँसना, माताका दूध पीनेकी अभिलाषा करना, जनमते ही बन्दरका डालपर छलाँगें भरना, जनमते ही गरीब और धनी होना आदि बातोंसे नैयायिकोंने जन्मा-

न्तरवादका अस्तित्व भी माना है। पूर्व जन्मके संस्कारके ही कारण बच्चेमें हँसी, दूध पीनेकी रुचि आदि आती है। पूर्व जन्म नहीं माननेसे अकारण बच्चेमें उक्त बातें नहीं हो सकतीं।

शरीर और शरीरके परमाणु वर्षों नहीं रहते; तो भी बीसियों वर्ष पहले किये कर्मका स्मरण होते देखा जाता है। क्यों? इसलिये कि, विभिन्न अवस्थाओंके शरीरों और विविध इन्द्रियोंका अनुभविता, आधार, स्मर्त्ता आदि आत्मा नामक पदार्थ है। वह आत्मा अनेक है; क्योंकि एक आत्मा होनेसे सबके दुःख, सुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि भी समान रहते।

नैयायिकोंके मतसे संसारको रचनेवाली आत्माका नाम ईश्वर है। न्यायदर्शनके ४ र्थ अध्याय, १म आह्निक (१६ से २१ सूत्रों) में जो ईश्वरका प्रसङ्ग आया है, उससे सूचित होता है कि, जीवोंके धर्माधर्मके अनुसार ईश्वर उन्हें सुख-दुःख देता है। धर्म आदि जड़ पदार्थ हैं, वे स्वयं फल उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। फलतः फलप्रदान-के लिये ईश्वरकी आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त प्रकृति और परमाणु अचेतन हैं। इनमें प्रथम व्यापार उत्पन्न करने-के लिये एक क्रियाशील चेतनकी आवश्यकता है। वही ईश्वर है।

जीवात्माओंके समान ईश्वरमें अधर्म, अज्ञान, प्रमाद आदि

नहीं हैं। जीवात्माओंका ज्ञान अनित्य है, ईश्वरका नित्य है। ईश्वरके प्रयत्न, इच्छा, सुख भी नित्य हैं।, ईश्वरमें दुःख, द्वेष आदि नहीं हैं। ईश्वरके शरीर भी नहीं है।

प्रसिद्ध नैयायिक गङ्गेशोपाध्यायने "ईश्वरानुमानचिन्तामणि" नामका एक सुन्दर ग्रन्थ बनाया है, जिसमें अनुमानसे ईश्वरको सिद्ध किया गया है। जिस "न्यायकुसुमाञ्जलि" ग्रन्थका पहले उल्लेख किया गया है, उसमें भी अनुमानसे ही ईश्वरको सिद्ध किया गया है। वह भी ईश्वर-विषयक प्रतिष्ठित न्याय-ग्रन्थ है। नैयायिकोंका मत है कि, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन, परमाणु आदि वस्तुएँ निरवयव हैं; शेष सावयव हैं। निरवयव नित्य है और सावयव अनित्य है। पृथिवी, सागर, पर्वत आदि सावयव हैं; इसलिये सादि, विनाशवान्, कार्य आदि हैं। संसारके घट, पट आदि कार्योंके कर्त्ता देखे जाते हैं; इसलिये पृथिवी आदि कार्योंके भी कर्त्ता हैं। इस तरहके अनेकानेक अनुमानोंसे ईश्वरको सिद्ध किया गया है। नैयायिकोंने नास्तिकोंके आकस्मिकवाद, सांख्याचार्योंके तत्त्वपरिणामवाद और वेदान्तिकोंके भ्रमविलासवादका भी खण्डन किया है।

ईश्वर और वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक दर्शनमें ३७० सूक्त हैं। इसके प्रणेता महर्षि कणादके मतमें जो नौ द्रव्य हैं, उनमें आत्मा आठवाँ द्रव्य है। ज्ञानके आधारको उन्होंने आत्मा कहा है। आत्मा अमूर्त है; इसलिये उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता; अनुमानसे आत्माकी सिद्धि होती है। शरीर रथ है; इसका संचालक सारथि आत्मा है। यह भले-बुरेका विचार करता है; क्योंकि यह चेतन है। जड़ शरीर या इन्द्रियोंसे भले-बुरेका विचार सम्भव नहीं है। जैसे चेतनके द्वारा ही भाथी फूलती और संकुचित होती है, वैसे ही आत्माके द्वारा ही शरीरका श्वास और प्रश्वास होता है। जैसे किसी चेतनके द्वारा ही कुएँमें मोटका गिरना और उठना सम्भव है, वैसे ही आत्माके द्वारा ही पलकोंका गिरना और उठना हो सकता है। सांख्य, योग और न्यायके समान ही वैशेषिकके मतसे भी आत्मा एक नहीं, अनेक हैं।

वैशेषिकके नवीन ग्रन्थोंमें आत्माको ही एक प्रकारसे ईश्वर कहा गया है। आत्मा और परमात्माके जो लक्षण न्यायमें हैं, प्रायः वे ही वैशेषिकमें भी हैं। वैशेषिक भी पृथवी, जल, अग्नि और वायुको कार्य मानता है और यह भी मानता है कि, इनकी उत्पत्तिके पहले इनका ज्ञान ईश्वरको रहता है। ईश्वरके द्वारा ही इनमें क्रिया और सृष्टि

होती है। ईश्वरके शरीर नहीं है। आत्मा और ईश्वरकी सिद्धि अनुमान और शास्त्रसे होती है। दोनों अजर और अमर हैं। "मैं हूं," यह प्रत्यक्ष तो नहीं है; परन्तु प्रत्यक्षके समान ही दृढ़ अवश्य है। आत्मा और परमात्मा इसलिये नित्य हैं कि, उनका कोई कारण नहीं है। कणादके मतमें अदृष्ट-कारण-विशेषके द्वारा परमाणु-संयोग होनेसे यह ब्रह्माण्ड बना है। पूर्वमें उपार्जित धर्माधर्म-संस्कारका नाम अदृष्ट है। आत्माका जन्मान्तर-गमन आदि अदृष्टके द्वारा ही होते हैं। कुछ लोगोंके मतसे यह "अदृष्ट" कदाचित् ईश्वर ही है।

ईश्वर और मीमांसादर्शन

जैमिनि मुनिकी मीमांसामें एक हजारसे कुछ ही कम सूत्र हैं। मीमांसादर्शनमें यज्ञ, सकाम तथा निष्काम कर्मोंका ही विशेष विवेचन है। इस दर्शनके मतसे वैशेषिकके नौ पदार्थोंके अतिरिक्त अन्धकार और शब्द भी पदार्थ हैं। शब्द और शब्दमय वेदको मीमांसक नित्य मानते हैं। इनके सिद्धान्तसे वेद-मन्त्र ही देवता हैं; मूर्त्तिमान् देवता कोई नहीं है। ये जगत्को नित्य मानते हैं। इन्हें ब्रह्म वा ईश्वर स्वीकृत नहीं हैं। ईश्वर-बोधक श्रुति वा स्मृति अर्थ-वाद हैं अर्थात अच्छे काममें लगानेके लिये भय प्रदर्शन

मात्र हैं—ऐसी श्रुति वा स्मृतिका कहना सोलहो आने ग्राह्य नहीं है। हां, आत्माको मीमांसा मानती है। इसके मतसे आत्मा प्रति शरीरमें भिन्न है, नाना है, अजर, अमर, ज्ञानी, विभु, सुख-दुःख-भोक्ता और मनसा प्रत्यक्ष है। निष्काम नित्य, नैमित्तिक कर्मवालेको मोक्ष मिलता है। मोक्षमें भी मन रहता है, स्वात्म-सुख रहता है।

ईश्वर और दर्शनोंका मतसमन्वय

अबतक हमारे पाठक सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक और मीमांसा दर्शनोंके मत आत्मा, ईश्वर आदिपर पढ़ चुके हैं। इन सभी दर्शनोंके प्रतिपाद्य विषय अलग-अलग हैं। उन्हींका विशेषतः विवरण देना प्रत्येक दर्शनका लक्ष्य है। प्रसङ्गतः इन्होंने ईश्वरकी भी कुछ चर्चा कर दी है। सांख्यके प्रतिपाद्य पुरुष और प्रकृति हैं। सांख्य-प्रणेता कपिल मुनि श्रेष्ठ ज्ञानी थे। संस्कृतके अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थोंतकमें कपिलको अग्र-ज्ञानी कहा गया है। गीतामें श्रीकृष्णचन्द्रने कपिलको ही सर्व-श्रेष्ठ "सिद्ध" कहा है। सो, इन सिद्धके मतमें आत्मा अनादि, सर्वगत, निर्गुण, नित्य, द्रष्टा, अकर्त्ता, असङ्ग आदि है। आत्म-स्वातन्त्र्यकी महाध्वनि कपिलने उठायी थी। आत्म-स्वाधीनताके सम्मुख उन्होंने अपने सूत्रोंमें ईश्वर

की चर्चा अनावश्यक समझी। संक्षेपमें यों समझिये कि, ईश्वर उनका प्रतिपाद्य नहीं था; इसलिये उन्होंने ईश्वरका प्रतिपादन नहीं किया।

यही बात योगदर्शनकी भी है। उसका भी लक्ष्य ईश्वर-प्रतिपादन नहीं है। उसका विषय है चित्त-निरोध। योगके मतसे चित्तैकाग्रतासे दिव्य शक्ति मिलती है, संयमसे समाधि लगती है और समाधिसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। आत्माके सम्बन्धमें सांख्यके ही समान योगका भी विचार है। योग भी आत्म-स्वातन्त्र्यका पूर्ण पक्षपाती है। उसकी प्रबल घोषणा है—"यथाभिमतध्यानाद्वा *—जिसमें जी चाहे, ध्यान लगाकर चित्त-निरोध कीजिये और समाधि लगाइये, कोई विशेष पदार्थ ही ध्यानके लिये आवश्यक नहीं। सांख्यकी ही तरह योग भी आत्माको अकर्ता, असङ्ग आदि समझता है; इसलिये उसमें भी ईश्वरका पूरा विवेचन नहीं हो पाया है। हां, प्रसङ्गतः ईश्वरकी चर्चा की गयी है और अत्यन्त संक्षेपमें ही सही, सुन्दर चर्चा की गयी है। ध्यानका एक आधार ईश्वर भी है।

न्याय और वैशेषिक दर्शनोंके प्रतिपाद्य प्रमाण, तर्क-प्रणाली, शास्त्रार्थ-मर्यादा, युक्ति-वैभव, पञ्च-महाभूत, दिक्, काल, मन आदि हैं। न्यायका एक गौण प्रतिपाद्य आत्मा भी है। वैशेषिकका भी एक प्रतिपाद्य द्रव्य आत्मा है। परन्तु यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि, दोनों ही दर्शनोंके आचा-

योंने केवल आत्माका ही प्रतिपादन किया है—आत्मामें परमात्माका गृहण नहीं किया है। हाँ, नवीन नैयायिकों और वैशेषिकोंने आत्माके अन्तर्गत परमात्माको अवश्य कर दिया है तथा अनेक प्रमाणोंसे ईश्वर-सिद्धि भी कर डाली है। परन्तु न्याय और वंशेषिकके सूत्रोंमें यह बात नहीं है। न्याय-सूत्रोंमें प्रसङ्गतः ईश्वरकी चर्चा आयी है; परन्तु जिन सूत्रोंमें चर्चा आयी है, उनके अर्थोंमें भी भारी झगड़ा है। वैशेषिक सूत्रोंमें तो कहीं भी ईश्वरका प्रसङ्ग तक नहीं आया है। फलतः इन दर्शनोंके अपने अलग प्रतिपाद्य हैं और उनमें ईश्वर नहीं है। आत्मा प्रतिपाद्य अवश्य है; परन्तु इन दोनों पदार्थवादियोंके मतसे आत्मा कर्त्ता, दुःखी, द्वेषी तक है! प्रमाणों और परमाणुओंके विवेचन करनेवालोंने नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्तस्वभाव आत्माकी आवश्यकता नहीं समझी; उसे असङ्ग और अकर्त्ता बताना अनावश्यक समझा। संसारमें इसी विचारके अधिक व्यक्ति हैं; इसलिये स्थूलादि पदार्थवादी दर्शनोंने निर्गुण आत्मा और कूटस्थ ब्रह्मकी चर्चा उठाना भी अप्रासङ्गिक समझा!

मीमांसादर्शनका प्रतिपाद्य वैदिक-कर्म-कलाप है। उसमें वैदिक-धर्म-निरूपण है। कितने यज्ञ हैं, उनके कितने अङ्ग हैं, कौन यज्ञाधिकारी हैं, कर्म-रहस्य क्या है, वेद क्यों नित्य हैं, दान और होम कैसे किया जाता है आदि विषय मीमांसाके प्रतिपाद्य हैं। मतलब यह कि, वैदिक धर्मके सारे

रहस्योंको क्रम-बद्ध बताना और हिन्दूधर्मके हृदय कर्म-काण्डको प्रचारित करना मीमांसाका लक्ष्य है। विराट् वैदिक साहित्यकी विवेचनामें यह दर्शन भी विराट् हो पड़ा है। शब्दकी नित्यता और विधि तथा अर्थवादके विचारमें भी इस दर्शनका एक बड़ा भाग खर्च हुआ है। इस दर्शनका न तो आत्मा ही प्रतिपाद्य है, न ईश्वर ही। हां, प्रसङ्गतः आत्मा आदिका जिक्र आया है। प्रायः न्याय और वैशेषिकके समान ही आत्माके सम्बन्धमें मीमांसाका भी मत है। इस दर्शनने भी ईश्वरकी कोई आवश्यकता नहीं समझी। इस मतसे वेद ईश्वर-कृत नहीं, नित्य और स्वतन्त्र हैं। ये पाँचों दर्शन द्वैतवादी हैं।

यह सब कुछ है; परन्तु पुराणोंमें जो कपिल, गौतम, कणाद, जैमिनि आदि ऋषियोंकी जीवनियाँ मिलती हैं, उनसे तो मालूम पड़ता है कि, ये ऋषि ईश्वरके अनन्य भक्त थे और परम ज्ञान वा परा भक्तिके बलपर मुक्ति तक प्राप्त कर चुके थे। तब फिर इन्होंने क्यों नहीं अपने दर्शनोंमें ईश्वरके सम्बन्धमें विशद विवेचन किया? अवश्य ही यह सन्देह उत्पन्न होता है। परन्तु इसका उत्तर भी बहुत सुन्दर दिया गया है और दिया जा सकता है। वह यों है—विभिन्न अधिकारियोंके लिये ऋषियोंने विभिन्न श्रेणियोंके दर्शन लिखे थे। ब्रह्माण्डका रहस्य समझनेके लिये उन्होंने पाँच सोपान तैयार किये थे। जो आयुर्वेद सीखना चाहता है, उसे भूगोल

बतानेकी कौन जरूरत थी? जो जड़का पूरा और चेतनका भी कुछ हो रहस्य समझना चाहता है, उसे कूटस्थ ब्रह्मका पाठ पढ़ानेकी क्या जरूरत थी? हाँ, जो पुरुष इन पाँचोंका रहस्य समझ चुका है और ब्रह्म-रहस्य समझना चाहता है, उसके लिये महर्षि व्यासने एक स्वतन्त्र दर्शन ही बनाया है, जिसके प्रथम सूत्रमें ही उन्होंने घोषणा की है कि, "अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा" अर्थात् अब उसके लिये ब्रह्मको जाननेकी जरूरत है, जो उच्च अधिकारी है और जो अन्य दर्शनोंके प्रतिपाद्य समझ चुका है। इससे यह भी सूचित होता है कि, साधारण अधिकारीके लिये ईश्वर-तत्त्व अगम्य है और उसे वही समझ सकता है, जिसे जड़की समस्त और चेतनकी भी कुछ ज्ञान-ज्योति मिल चुकी है। चेतनकी स्वतन्त्र सत्ताका रहस्य समझे विना ब्रह्मतत्त्व समझना असम्भव है। अन्य दर्शनोंने इसी सत्ताका रहस्य समझाया है और वेदान्तने ब्रह्मका। यह बात दूसरी है कि, कुछ लोग पूर्व जन्मके उच्च संस्कारके कारण थोड़ी अवस्थामें ही वेदान्त-ब्रह्मकी जिज्ञासाके अधिकारी बन जाते हैं।

एक समाधान और भी किया जा सकता है——सांख्य, योग आदि पाँचों दर्शनोंने जो जड़का सारा और चेतनका संक्षिप्त रहस्य बताया है, उसके आगे मनुष्यको ईश्वरतत्त्व बतानेकी तो कोई आवश्यकता भी नहीं—मनुष्य स्वभावतः ईश्वर-तत्त्वको समझ ही जायगा। आत्मतत्त्वको जान लेनेके

अनन्तर परमात्म-तत्त्वको जाननेमें उतनी ही देर लगेगी, जितनी देर हवड़ा पहुँचनेके अनन्तर कलकत्तेको जाननेमें लगती है। यही कारण है कि, इन पाँचों दर्शनोंने ईश्वरका पूरा विवरण लिखनेकी चेष्टा नहीं की और ईश्वर तथा कूटस्थ ब्रह्मका साङ्गोपाङ्ग विवरण बतानेका भार वेदान्तके ऊपर विन्यस्त रहा। इसीलिये वेदान्तने ब्रह्मका अथसे इतितक रहस्य बताया है। यह बात भी ध्यान देने की है कि, इन छहो दर्शनोंका बीज वेदोंमें है और वैदिक साहित्यके नियत क्रमके अनुसार ही इन छहो दर्शनोंने अपना-अपना पथ चुना है। फलतः सभीमें नियमबद्धता है, किसीपर भी असम्बद्धता वा निरङ्कुशताका दोष लगाना सम्भव नहीं है।

शङ्कराचार्य और वेदान्त-दर्शन

महर्षि व्यासके बनाये वेदान्त-दर्शनमें ५५७ सूत्र हैं। इसे माधव आदि आचार्योंने "सर्वदर्शन-शिरोमणि" कहा है। नैयायिकोंने भी वेदान्तको "तत्त्व" बतानेवाला कहा है—"तत्त्वन्तु बादरायणिः।" संस्कृतमें यह श्लोक भी बहुत प्रसिद्ध है—

"तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद् वेदान्तकेसरी॥"

मतलब यह कि, तभी तक वन-प्रदेशमें शृगाल-रूपी अन्य शास्त्र गरजते हैं, जबतक महाशक्ति वेदान्त-सिंहकी गर्जना नहीं सुनाई देती ।

यह बात बहुत अंशोंमें ठीक भी है । वेदके अन्तिम प्रकरण ब्रह्मवादके विवेकके सामने अन्य शास्त्रोंके विचार उतना महत्त्व नहीं रखते । प्राचीन समयमें वेदान्तको बड़ी प्रतिष्ठा थी और लोगोंमें अत्यधिक प्रचार भी था । विरक्त और गृहस्थ—सभी, ईश्वर-तत्त्व समझनेके लिये, वेदान्तका अध्ययन आवश्यक समझते थे । इसीसे वेदान्त-ग्रन्थोंके भाष्यों, टीकाओं, वृत्तियों, वार्त्तिकों और व्याख्याओंकी संख्या अपरिमित हो गयी है । जिस सम्प्रदायकी ओरसे वेदान्तदर्शनकी व्याख्या नहीं की गयी है, उसकी न तो प्रसिद्धि थी, न प्रतिष्ठा ही । शङ्कर, रामानुज, माध्व, निम्बार्क, वल्लभ, अवधूत आदिने अपने-अपने मतोंके अनुसार वेदान्तदर्शनकी व्याख्या की है । शङ्कराचार्य और रामानुजाचार्यने अपने भाष्योंमें, जहाँ-तहाँ, बौधायन ऋषि और उपवर्ष मुनिके अत्यन्त प्राचीन वेदान्त-भाष्योंको भी उद्धृत किया है ।

इसमें सन्देह नहीं कि, मध्य कालमें नास्तिक बौद्धोंने वेदान्तकी प्रतिष्ठा कम करनेकी चेष्टा की; परन्तु शङ्कराचार्यने "शारीरक-भाष्य" लिखकर बौद्ध-सिद्धान्तोंका राई-रत्ती उड़ा डाला । शङ्कर वस्तुतः महापण्डित थे । लोकमान्य तिलकने अपने

"गीतारहस्य"के "विषय-प्रवेश"में लिखा है कि, संसारमें शङ्कराचार्यके समान अद्वितीय तत्त्व-ज्ञानी नहीं उत्पन्न हुआ। केरल प्रान्तके कालपी ग्राममें, संवत् ८४५में, शङ्करका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम था शिव-गुरु। १६ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने जो अपना "शारीरक-भाष्य" लिखा, वह इन दिनों भी बहुत ही प्रतिष्ठित और प्रचारित है। उपलब्ध भाष्योंमें सबसे प्राचीन भाष्य यही है। अनेक विद्वानोंके मतसे 'वेदान्तका वास्तव मर्म यही भाष्य है अथवा "शारीरक-भाष्य" ही वेदान्त-सिद्धान्त है।' बात भी कुछ ऐसी ही है। फलतः हमें भी शङ्करके मतका उल्लेख कर लेना चाहिये।

शङ्करका मत है कि, "ब्रह्म-साक्षात्कार होनेपर जीव ब्रह्म हो जाता है" और "आत्मज्ञ संसार-सागरका अतिक्रम करता है।" अपने मतके समर्थनमें उन्होंने कितनी ही श्रुतियों और युक्तियोंको लिखा है। उनकी प्रतिज्ञा है कि, "ब्रह्म-ज्ञानके अतिरिक्त दुःखसे आत्यन्तिक निवृत्ति पानेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।" "मैं ब्रह्म ही हूँ"—ऐसा ज्ञान शङ्करका चरम प्रतिपादन है। इस ज्ञानकी प्राप्तिमें गुरुमुखसे श्रद्धा-पूर्वक वेदादिका श्रवण प्रधान उपाय है। भली भाँति मनन तथा निदिध्यासन वा बार-बार ध्यान श्रवणके सहायक हैं। बहुत लोग सन्देह करते हैं कि, जीवन भर वेदान्त और "अहमस्मि ब्रह्म"

आदि वेद-वाक्योंका श्रवण करनेपर भी कितने ही तत्त्व-ज्ञानी नहीं होते और कितने ही विना पढ़े लिखकर भी तत्त्वज्ञानी हो जाते हैं। शङ्करने उत्तर दिया है कि, श्रवण करनेपर भी जो तत्त्वज्ञानी नहीं होता, उसका कारण उसके चित्तकी मलिनता और जन्मान्तरीण पाप हैं। जिन वामदेव आदि ऋषियोंको विना पढ़े ही तत्त्वज्ञान हो गया था, उसका कारण उनके पूर्व जन्मका श्रवण है। शङ्करसे भिन्न मत रखनेवाले अनेक आचार्योंका मत है कि, निदिध्यासनके प्रभावसे ही ब्रह्मका मानस प्रत्यक्ष होता है; इसलिये निदिध्यासन ही तत्त्वज्ञान वा ब्रह्म-ज्ञानका कारण है। श्रवण और मनन उसके पूर्ववर्ती सहकारी हैं।

जैसे मरु-मरीचिकामें जलकी भ्रान्ति होती है, वैसे ही ब्रह्ममें दृश्य (जगदादि) की भ्रान्ति होती है। वस्तुतः दृश्य मिथ्या है और ब्रह्म ही सत्य है। आत्माका ही दूसरा नाम ब्रह्म है। पहले इस ज्ञानको प्राप्त किया जाता है, पीछे उसपर दृढ़ विश्वास किया जाता है। इसके अनन्तर "अहमस्मि ब्रह्म"का अभ्यास करना चाहिये। "मैं देह हूँ" अथवा "मेरी इन्द्रियाँ हैं" आदि भ्रान्ति-जन्य हैं—रस्सीको साँप समझनेके बराबर हैं। बहुत दिनोंतक बुद्धिपूर्वक चेष्टा करनेपर किसी न किसी दिन स्वयं भ्रान्तिसे गला बच जायगा और ब्रह्म-ज्ञानका उदय हो जायगा। ब्रह्मज्ञानके अनन्तर मुक्ति हो जायगी है।

चेतन नित्य सत्य है। वह परिपूर्ण और एकरस है। एक

ही चेतन ब्रह्म इसलिये कहा जाता है कि, वह बृहत् है और आत्मा इसलिये कहा जाता है कि, वह व्यापक है। उपाधियोंके कारण उसके भिन्न-भिन्न नाम हैं। चेतनका आश्रित अज्ञान इन्द्रजाल है और आधार वा चेतन सत्य है—इस ज्ञानपर दृढ़ आस्था होनेपर ही जीवत्व नष्ट होता और ब्रह्मत्व प्रकट होता है।

ऊपरके सिद्धान्तको शङ्कराचार्यने अखण्डनीय तर्कोंके साथ, बड़ी ही पाण्डित्यपूर्ण शैलीमें, उपस्थित और स्थापित किया है। शङ्करकी प्रगाढ़ विद्वत्ताके सामने सारे भारतके नास्तिक बौद्धोंको हार मान लेनी पड़ी थी और आजतक ऐसा एक भी नास्तिक नहीं उत्पन्न हुआ, जिसने शङ्कर-सिद्धान्तका युक्ति-सिद्ध खण्डन किया हो। अस्तु। शङ्करके कुछ और मत भी सुनिये।

जैसे प्रकाशके साथ अन्धकार नहीं रहता, वैसे ही ज्ञानके साथ अज्ञानका रहना असम्भव है। गीतामें जो लिखा है कि, "अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्" (अज्ञानने ज्ञानको ढक दिया है), उसका तात्पर्य यह है कि, अज्ञान ज्ञानका पार्श्ववर्त्ती पर्दा है। जहाँ प्रकाश रहता है, वहाँ अन्धकार नहीं रहता और जहाँ अन्धकार रहता है, वहाँ प्रकाश नहीं रहता। इसी प्रकार अज्ञानकी प्रबलता होनेपर ज्ञान नहीं रहता और ज्ञानका आविर्भाव होनेपर अज्ञान भाग जाता है। हम लोग अज्ञानसे ढके हुए हैं; इसलिये हम बद्ध हैं; परन्तु जिस समय हमें

ज्ञान हो जायगा, उस समय अज्ञान भाग जायगा और मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी।

शङ्करका मत है कि, मूलमें अखण्ड चेतन वा ज्ञान था और साथ ही अज्ञान भी था। तो क्या वह अज्ञान ज्ञानका शक्ति-रूप था? इसका उत्तर दिया गया है कि, अज्ञान शक्ति नहीं है—शक्तिके समान भासित होनेवाला है। उसी अज्ञानका प्रादुर्भाव होनेपर मनकी उत्पत्ति होती है और इसके अनन्तर जीव-भावकी। यह अज्ञान अनादि तो है; परन्तु अनन्त नहीं, सान्त है। कहीं अनादि अन्धकार रहनेपर भी जैसे प्रकाशके प्रादुर्भावके साथ अन्धकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही ज्ञानका प्रादुर्भाव होनेपर अज्ञान नष्ट हो जाता है। अज्ञानके नष्ट होते ही मन उच्छिन्न हो जाता है। उस समय जीव निरञ्जन ब्रह्म हो जाता है। इसी अज्ञानको माया, जगद्योनि आदि कहा गया है। अन्य शास्त्रोंमें इसका नाम ऐश्वरी शक्ति, ईश्वरेच्छा, सृजन-शक्ति, मूला प्रकृति और प्रधान आदि कहा गया है।

इसी अज्ञानने ब्रह्मको संसाररूपसे प्रकाशित किया है; इसीलिये इस समय ब्रह्म और जगत् मिले-जुलेसे मालूम पड़ते हैं। वस्तुतः जगत् नाम और रूपवाला है और ब्रह्म सत्ता, प्रकाश तथा सौन्दर्य वाला।

श्रुतिने ब्रह्मके दो लक्षण बताये हैं—स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण। ब्रह्म सच्चिदानन्द, अखण्ड, एकरस और

अद्वितीय है———यह सब स्वरूप लक्षण है और ब्रह्म जगत्-कारण है—यह तटस्थ वा परिचायक लक्षण है। यहाँ यह बात ध्यान देनेकी है कि, जगत्कारण होनेपर भी ब्रह्म सांख्यकी प्रकृतिके समान परिणामी कारण वा वैशेषिकके परमाणुके समान आरम्भक कारण नहीं है। ब्रह्मका विकार नहीं होता है, विवर्त्त होता है। वह अपनी माया वा अनिर्वचनीय-स्वभाव अज्ञानका अयथा आलिङ्गन करनेके कारण आकाश आदिके रूपमें विवर्त्तित हुआ है। दूधका दही बनना विकार है और सर्प-रूपमें रस्सीका भान होना विवर्त्त है। ब्रह्म जगत्का निमित्त और उपादान—दोनों कारण है। जैसे मकड़ी अपने शरीर (लार) से जालको निकालनेके कारण उपादान कारण और जालको बनानेके कारण निमित्त कारण है, वैसे ही ब्रह्म जगत्के प्रति अभिन्न-निमित्तोपादान विवर्ती कारण है। यह जगत् ब्रह्मका विवर्त्त है; इसलिये इन्द्रजालके समान मिथ्या है। वेदान्तमतके अनुसार महामायावी ईश्वरने अपनी माया वा इच्छा-शक्तिके द्वारा इस जगत्का सृजन किया है।

वेदान्तमें ईश्वरकी इच्छाशक्तिको माया कहा गया है। गुणवती माया एक होनेपर भी सत्त्व, रज और तमके भेदके अनुसार विविध हो जाती है। उत्कृष्ट सत्त्व (सत्ता) की प्रबलता होनेपर माया "माया" है और मलिन सत्त्वकी प्रबलतासे माया "अविद्या" नाम ग्रहण करती है। वेदान्तके

ईश्वर मायोपहित हैं और जीव अविद्योपहित है। जीव केवल उपहित ही नहीं है, अविद्याके वशमें भी है। माया एक है; इसलिये ईश्वर भी एक हैं। मलिनताकी अल्पता और अधिकताके अनुसार अविद्याएँ अनेक हैं; इसलिये जीव भी अनेक हैं—सुर, नर, असुर, पशु आदि। मायामें ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति और क्रियाशक्तिका चरम उत्कर्ष है। इसीलिये मायोपहित ईश्वर-सर्वज्ञ, सर्व-शक्ति, सर्वेश्वर, स्वतन्त्र और सर्व-नियन्ता हैं। अविद्यामें इन ज्ञानशक्ति आदिकी अल्पताके कारण जीव सर्वज्ञ आदि नहीं है।

शास्त्र, युक्ति, अनुभव आदिसे जाना जाता है कि, जिसका अस्तित्व और प्रादुर्भाव जिसके अधीन है, वह उसमें कल्पित, भर किया जाता है। तरङ्गका अस्तित्व और आविर्भाव जलके आधीन है; इसलिये तरङ्ग जलमें ही परिकल्पित है—उसका पृथक् अस्तित्व नहीं है। वैसे ही इस जगत्का अस्तित्व और आविर्भाव ब्रह्मके आधीन होनेसे जगत् ब्रह्ममें ही परिकल्पित है—उसका अस्तित्व पृथक् नहीं है।

जैसे दर्पणकी कालिमा दर्पणकी स्वच्छताको ढक लेती है, वैसे ही अपना अज्ञान ही अपने रूपको आच्छादित कर लेता है। इसीलिये जीव जगत्की परिकल्पना और मिथ्यात्वको समझनेमें असमर्थ हो रहा है। जिस समय, श्रवण आदिके द्वारा, उसकी अज्ञान-मलिनता परिमार्जित

हो जाती है, उस समय जीव समझता है कि, "मैं बँधा हुआ नहीं हूं, मैं परम ब्रह्म हूं।"

आकाशके समान आत्मा महाव्यापक है। वह चेतन और स्वयंप्रकाश है। उसमें जो अनादि अज्ञान है, वह जब अहंकारको उत्पन्न करता है, तब असंख्य वस्तुओं—द्वैत—की उत्पत्ति हो जाती है। उस समय जीव अपने ऊपर वृथा कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदिको आरोपित कर लेता है। इसीलिये, जीवको अपनापन बतानेके लिये, माताके समान अतिशय उपकारिणी श्रुतिने "तत्त्वमसि", "अयमात्मा ब्रह्म" आदि महावाक्योंका उपदेश किया है।

जैसे भोजन करनेपर क्षणिक सुखका अनुभव होता है; परन्तु फिर भूख लगनेपर दुःख आ घेरता है, वैसे ही स्वर्ग और सायुज्य मुक्तिकी प्राप्ति आदि होनेपर कुछ ही समयके लिये दुःखोंसे मुक्ति मिलती है, सदाके लिये नहीं। वैकुण्ठ, गोलोक आदि भगवान्‌के धामोंकी प्राप्ति होनेपर भी सेवामें अपराध होते रहते हैं, जिससे पुनः मर्त्यलोकमें आना पड़ता है। इसके उदाहरण भगवान्‌के पार्श्वद जय और विजय हैं। पुण्य क्षीण होनेपर स्वर्गसे भी फिर संसारमें आना पड़ता है। इसीसे श्रुतिका भी मत है कि, "द्वितीयाद्वै भयं भवति"। फलतः अद्वैतवादके अतिरिक्त अन्य वादोंके अनुसार आत्यन्तिक मोक्षकी सम्भावना नहीं है।

ऊपर जो सब बातें लिखी गयी हैं, वे ही शङ्कराचार्यके

"शारीरक-भाष्य"का सार हैं। इन बातोंके समर्थनमें शङ्करने नाना युक्तियों, उदाहरणों और प्रमाणोंको विन्यस्त किया है। इनके सिवा बुद्धि-निर्मलताके उपकरण, वेद-विवेचनकी शैली, साधन-रहस्य, उपासना-पद्धति, कर्म और उपासनाके फल, जीवन्मुक्ति, निर्वाण, परपक्षोंकी निःसारता आदि-आदिका विशद विचार किया है। इन विषयोंके लिये जिज्ञासु सज्जनोंको "शारीरक-भाष्य"का अध्ययन करना चाहिये। यहां हम वेदान्तदर्शनकी कुछ अतीव प्रसिद्ध बातोंपर और तदनन्तर "ब्रह्म–सूत्र"के ब्रह्म-प्रतिपादक कुछ सूत्रोंपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे। वास्तवमें वेदान्तका एकमात्र प्रतिपाद्य चेतन ही हैं; परन्तु प्रसङ्गतः कुछ ऐसी आवश्यक बातोंका भी प्रतिपादन किया गया है, जो आवश्यक थीं। वेदान्तीय ईश्वरका परिचय प्राप्त करनेवालोंको इन सबकी थोड़ी-थोड़ी जानकारी रखना आवश्यक समझकर ही हमने इनकी यहां कुछ अधिक चर्चा की है और आगे भी करने जा रहे हैं।

वेदान्तकी कुछ आवश्यक बातें

पहले वेदान्त शब्दको ही लीजिये। वेदका अन्त उपनिषद् है। वेदका कर्म-भाग ऐतरेय, शतपथ, ताण्ड्य, गोपथ

आदि ब्राह्मणग्रन्थ हैं, उपासना-भाग ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम, अथर्व आदि चारो वैदिक संहिताएं हैं और ज्ञान-भाग ईश, केन, कठ आदि उपनिषदें हैं । इन्हीं उपनिषदोंको वेदान्त कहा जाता है । ब्रह्मसूत्र आदि भी वेदान्तग्रन्थ कहे जाते हैं; क्योंकि वे उपनिषदोंके सहायक हैं—उपनिषदोंके प्रतिपाद्य ब्रह्मके विवेचनमें सहायता देते हैं। जिस विद्याका अनुशीलन करनेपर दुःख, जन्म, मरण आदिके मूल अज्ञानका विनाश होता है, उसी ब्रह्मविद्याको उपनिषद् कहा जाता है। ऐसी ब्रह्मविद्याके प्रतिपादनमें जो-जो ग्रन्थ साहाय्य प्रदान करें, उन सबको उपनिषद् और वेदान्त कहा जा सकता है । इसीलिये उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भागवत-गीता—तीनों ही वेदान्तग्रन्थ कहाते हैं । तीनोंका एक नाम प्रस्थान-त्रयी भी है । ब्रह्म-सूत्रोंका तो उद्देश ही ब्रह्म-विद्याका प्रतिपादन है; इसलिये वे सूत्र वेदान्त-सूत्र भी कहे जाते हैं । उपनिषदोंके ब्रह्मका थोड़ेमें ही वेदान्त-दर्शनमें बड़ा सुन्दर विवेचन किया गया है; इसलिये यहाँ वेदान्त-दर्शनके सम्बन्धमें ही लिखा गया है तथा कुछ और लिखा जायगा । यहां हमारा उद्देश्य भी वेदान्त-दर्शनकी बातोंकी विवेचना करनेका ही है । इस दर्शनके विवेचनके साथ उपनिषदोंके प्रतिपाद्यका भी स्वभावतः विवेचन हो ही जायगा ।

आश्चर्य है कि, लोग मामूली-मामूली कामोंके लिये

कितने ही वर्ष बिता देते हैं; परन्तु ब्रह्म-विद्या जैसे जटिल विषयके लिये कुछ भी समय देनेको तैयार नहीं होते। अँग्रेजी समझनेमें लोग एक जमाना गुजार देते हैं; परन्तु ईश्वरको समझनेके लिये दर्शनशास्त्र पढना अनावश्यक समझते हैं! भला ऐसे लोग क्योंकर निगूढ़ ईश्वर-तत्त्व समझने गये! जिस ब्रह्मविद्याको जाननेके लिये ऋषियोंने आमरण अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया और जिस ईश्वर-सत्ताको समझनेके लिये हमारे पूर्वजोंने अपनी हड्डियाँ तक सुखा डालीं, उसे हम, शरीरको बिना हिलाये-डुलाये ही, खिलवाड़में समझ लेना चाहते हैं! भला यह कब सम्भव है! हम बिना शम, दम किये—बल्कि विषयके कीड़े रहकर ही समूची ब्रह्मविद्या निगल जाना चाहते हैं! इस अन्धेरका भी कुछ ठिकाना है?

अच्छा, सुनिये, ब्रह्मतत्त्व समझनेका अधिकारी कौन है? (१) जो ऐसा निश्चय करता है कि, अद्वितीय ब्रह्मके अतिरिक्त सभी दृश्य वस्तुएँ अनित्य हैं, (२) जो इस लोक और परलोकके फल-भोगमें वैराग्य रखता है, (३) जो भीतरी इन्द्रियोंका नियमन, बहिरिन्द्रियोंका दमन, विषय-प्रवृत्तिका मारण, शीत, उष्ण, अपमान, शोक, हर्ष आदिमें उद्वेग-हीनता, आत्मामें चित्त-वृत्तिकी विलीनता, गुरु और वेदान्तके उपदेशमें दृढ़ विश्वास करता है और जो (४) भवसागरसे सदाके लिये मुक्त होनेकी इच्छा करता है, वही ब्रह्म-

विद्याका वा ईश्वरको समझनेका अधिकारी है । जिसका चित्त चञ्चल है, जो इन्द्रियोंका गुलाम है, जिसे काम, क्रोध आदि घेरे रहते हैं, जिसकी शास्त्रोंपर श्रद्धा नहीं है और जो सन्तान प्राप्ति, धन-लाभ और कीर्त्ति लोलुपताके लिये व्याकुल हैं, वह ब्रह्मविद्याका अधिकारी नहीं है, उसे ईश्वरत्वका दिव्य भान नहीं हो सकता । क्या जिनके हृदयपर परम पिता परमात्माकी निर्मल ज्योति नहीं पड़ती वा जिनकी समझमें ईश्वर-तत्त्व नहीं आता, उन्होंने अपने हृदयकी मलिनता और इन कमियोंका अनुभव किया है ? यदि किया है, तो उन्हें उचित है कि, वे इस मलिनता और कमियोंको साहसके साथ दूर कर डालें और फिर देखें कि, उनके सिरपर मङ्गलात्माकी अभय-वरद भुजाकी कल्याणमयी छाया विराज रही है ।

अधिकारी स्वयं समझने लगता है कि, जन्म-जराके चक्करसे बचनेके लिये ब्रह्म-वेत्ता गुरुके पास जाना चाहिये । वह जानता है कि, मैं अबतक भ्रममें था; इसीलिये अपनेको ब्रह्मसे पृथक् समझता था । वह ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, छल, कपट वाले संसारको भयंकर दावानल समझकर उससे बचनेकी चिन्तामें तन्मय हो जाता है । ऐसे अधिकारीको गुरुदेव को भी ब्रह्म और आत्माकी एकता समझानेमें देर नहीं लगती । गुरुदेवकी दयासे अधिकारीको यह मालूम होनेमें देर नहीं लगती कि, अद्वितीय, एकरस, आनन्दात्मक और

ज्ञानमय ब्रह्म ही वस्तु है और अज्ञान तथा उससे उत्पन्न सारे दृश्य अवस्तु हैं। अज्ञान भाव और अभाव, दोनोंसे वैसे ही पृथक् है, जैसे क्लीब स्त्री और पुरुष, दोनोंसे। शशश्रृङ्ग वा बन्ध्या-पुत्रके समान अज्ञान नहीं है; क्योंकि "अज्ञान है"—इसका सबको अनुभव होता है। परन्तु वह ब्रह्मके समान वस्तु भी नहीं है; क्योंकि ज्ञानके होते ही वह नहीं रहता—वह मिथ्या मालूम पड़ने लगता है। वस्तुतः जो तीनों कालोंमें नहीं रहता और जो मिथ्या वा भ्रम मालूम पड़ता है, वह कैसे वस्तु हो सकता है? फलतः अज्ञान न तो सत् है, न असत् है, न सावयव है, न निरवयव है। वह अनिर्वचनीय है।

कुछ लोगोंका मत है कि, ज्ञानका अभाव अज्ञान है; परन्तु यह बात ठीक नहीं जँचती। शास्त्रोंमें तीन प्रकारके ज्ञान बताये गये हैं। कहीं इसे चैतन्य कहा गया है, कहीं बुद्धिवृत्ति कहा गया है और कहीं आत्मगुण माना गया है। चैतन्य नित्य है; इसलिये उसका अभाव अज्ञान नहीं हो सकता। बुद्धि-वृत्ति जड़ है, चैतन्यव्याप्त होनेपर ही वह वस्तुका प्रकाश करती है। जड़ पदार्थ ज्ञान नहीं कहा जा सकता; इसलिये उसका अभाव अज्ञान नहीं हो सकता। आत्मगुणका अभाव होना असम्भव है। हाँ, यह अवश्य कहा जाता है कि, "मैं अज्ञान था"। परन्तु यह अनुभव भी ज्ञान है। "अज्ञान था"का तात्पर्य यह है कि, उस समय

आपका ज्ञान अज्ञानेतर विषयमें संलग्न था। इसलिये आत्म-गुण ज्ञानका अभाव हो नहीं सकता। फलतः अज्ञान इन तीनों ज्ञानोंका अभाव नहीं है—वह एक प्रकारका तुच्छ और अस्थिर वा अनिर्वाच्य पदार्थ है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, ऐसे अज्ञानका अस्थिर अस्तित्व है। इसे ही माया भी कहते हैं। "मैं अज्ञ हूं"—ऐसा अनुभव तो होता ही है। अज्ञान एक ही है; परन्तु विशेष-विशेष अवस्थाओंको लक्ष्य कर अनेक कहा गया है। जैसे वृक्षोंका समूह वन और जलोंका समुदाय जलाशय है, वैसे ही भाव-विशेषके अज्ञान भी एक ही हैं। स्फटिकके पास रह कर जवाकुसुम अपनी लालिमा स्फटिकमें आरोपित करता है; इसलिये उसे स्फटिककी उपाधि कहा जाता है। वैसे ही अज्ञान भी, चैतन्यके पास रहकर, अपना गुण-दोष चैतन्यमें आरोपित करनेके कारण चैतन्यकी उपाधि कहाता है।

समष्टि अज्ञानको उत्कृष्ट और विशुद्ध-सत्त्व-प्रधान तथा व्यष्टि अज्ञानको निकृष्ट और मलिन-सत्त्व-प्रधान कहा जाता है। सृष्टिकालमें मूल प्रकृतिके सिवा मन, बुद्धि आदि उपाधियाँ नहीं थीं; इसलिये वह उत्कृष्ट कहा गया है। सृष्टिकी प्रथम दशामें सत्त्वगुण बढ़कर महत्तत्वको उत्पन्न करता है। फलतः समष्टि अज्ञान और महत्तत्त्वमें सत्त्वगुण प्रबल रहता है; इसलिये उस अज्ञानको विशुद्धसत्त्व-प्रधान कहा जाता है। वेदान्तका मत है, कि, समष्टि अज्ञानके द्वारा

उपहित वा उपाधि-प्राप्त चैतन्य ईश्वर, सर्वज्ञ, सर्वनियामक आदि है। वह सर्वज्ञ इसलिये है कि, वह समष्टि अज्ञानका ज्ञाता और अवभासक है। ईश्वरकी उपाधि समष्टि अज्ञान ही समस्त दृश्योंका कारण है, इसलिये वह ईश्वरका कारणशरीर भी कहा जाता है उसमें आनन्द है और कोषके समान आच्छादकता भी; इसलिये वह आनन्दमय कोष भी कहाता है। उसमें सारे जन्य पदार्थोंका लय होता है; इसलिये वह लय स्थान, प्रलय, महासुषुप्ति आदि भी कहा जाता है। अनेक भेदोंवाले जीवोंमे फैले हुए अज्ञानको व्यष्टि अज्ञान कहा जाता है। वह, असर्वज्ञ और अल्पशक्तिमान् जीवोंकी उपाधि होनेसे, निकृष्ट कहा गया है। महत्तत्त्वकी सृष्टिके अनन्तर रज और तम बढ़कर अहङ्कार आदिकी सृष्टि करते हैं; इसलिये विभिन्न-अवस्थापन्न अज्ञान मलिन-सत्त्व-प्रधान कहा जाता है। यह जावोंका कारणशरीर है; क्योंकि अहङ्कार आदिका कारण वही है। व्यष्टि अज्ञानको भी आनन्दमयकोष माना गया है। जाग्रत् और स्वाप्न पदार्थोंका उसमे लय होता है; इसलिये उसे सुषुप्ति कहते हैं। यह सूक्ष्म और स्थूल शरीरोंका लय-स्थान भी कहाता है।

महासुषुप्ति और सुषुप्तिके समय ईश्वर और जीव चैतन्यके द्वारा प्रदीप्त सूक्ष्म अज्ञान-वृत्तिके द्वारा आनन्दका

अनुभव करते हैं। उस समय कोई प्रविभक्त वृत्ति वा ज्ञान नहीं रहता। केवल अविभक्त वा अखण्डाकार अज्ञान-वृत्ति रहती है। उसीके द्वारा दोनों आनन्दका अनुभव करते हैं। सुषुप्तिकी समाप्तिपर लोग कहते हैं कि, मैं सुखमें था, कुछ भी नहीं जानता था"। सुषुप्तिमें आनन्द और अज्ञान, दोनोंका अनुभव न रहनेपर कभी भी ऐसा स्मरण नहीं होता।

यहां यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि, पहले जो समष्टि और व्यष्टि अज्ञानोंकी बात कही गयी हैं, वे काल्पनिक हैं। जैसे वृक्ष और वन अभिन्न हैं अथवा जैसे जल और जलाशय भिन्न नहीं हैं, वैसे ही समष्टि और व्यष्टि अज्ञान एक ही हैं।

उपाधियों (समष्टि और व्यष्टि अज्ञानों) के एक होनेपर उन उपाधियोंसे युक्त चैतन्य (ईश्वर और जीव) एक ही होंगे। जैसे वनावच्छिन्न और वृक्षावच्छिन्न आकाश एक ही है, वैसे ही दोनों चैतन्य भी एक ही हैं। हाँ, जबतक इन दोनोंकी उपाधियां हैं, तबतक दोनोंको भिन्न-भिन्न कह लीजिये। उपाधियोंके दूर करते ही दोनों महाचैतन्य कहलाते हैं। महाचैतन्य अद्वितीय, अखण्ड और परब्रह्म कहाता है।

अज्ञानकी दो शक्तियाँ हैं—आवरणशक्ति और विक्षेप-शक्ति। जैसे मेघके एक छोटेसे टुकड़ेके नेत्रके सामने आ

जानेपर दर्शक समझता है कि, मेघने सूर्यको ढक लिया है, वैसे ही अज्ञानके बुद्धि-प्रतिबिम्बित चैतन्यके ढक लेनेपर बोद्धा अपनी सर्वव्यापकता आदिको नहीं समझ पाता। अज्ञानावरणसे ढका हुआ जीव अपनेको बद्ध, संसारी, कर्त्ता, भोक्ता, दुःखी, सुखी आदि समझने लगता है। इसी आवरण-शक्तिके द्वारा जीव रस्सीको ही साँप समझता है।

विक्षेप-शक्तिको कल्पनाशक्ति भी कहा जाता है। इसीके कारण मनुष्य विशुद्ध चेतन आत्माको देह, इन्द्रिय आदि मान बैठता है। अज्ञान अपनी इसी शक्तिके द्वारा अनेकानेक अनर्गल कल्पना-जल्पनाएँ करता है। तमोगुणबहुल और विक्षेपशक्तिवाले अज्ञानकी उपाधिवाले चैतन्यसे प्रथम आकाश उत्पन्न होता है। आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और इन चारोंसे पृथिवी उत्पन्न होती है। प्रत्येकके मूल कारण (माया) में तमोगुणकी प्रबलता थी—रजोगुण अल्प मात्रामें था और सत्त्वगुण अत्यल्प मात्रामें। प्रथम उत्पन्न आकाश आदि पाँच पदार्थोंको सूक्ष्म भूत, तन्मात्रा और अपञ्चीकृत महाभूत कहा जाता है। इन्हींसे जीवोंके सूक्ष्म शरीर और स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। सूक्ष्म शरीरको ही लिङ्ग शरीर कहा जाता है। इन सत्रह अवयवोंसे युक्त लिङ्ग शरीर होता है—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण), बुद्धि, मन, पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) और प्राण

आदि पाँच वायु (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान)। आकाश आदि सूक्ष्म भूतोंके सात्त्विक अंशसे पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । अन्तःकरणकी निश्चय-करण-शक्तिवाली वृत्तिका नाम बुद्धि है। संकल्पशक्ति और विकल्प शक्तिवाली वृत्तिका नाम मन है । चित्त बुद्धिके और अहङ्कार मनके अन्तर्गत है। अनुसन्धान करनेवाली वृत्तिका नाम चित्त और अभिमान करनेवाली वृत्तिका नाम अहङ्कार है। बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियोंके समूहको विज्ञानमय कोष कहा जाता है। इस कोषको इस लोक और परलोकमें संचरण करनेवाला व्यवहारी जीव भी कहा जाता है। इसीमें "मैं करता हूं, भोगता हूं, सुखी हूं" आदि अभिमान होते हैं। मन और पाँच कर्मेन्द्रियोंके समुदायको मनोमय कोष कहा जाता है। आकाश आदिके सत्त्व अंशसे विज्ञानमय कोष और रजः अंशसे मनोमय कोष की उत्पत्ति हुई है । पाँचो कर्मेन्द्रियों और पाँचो वायुयोंके समूहको प्राणमय कोष कहते हैं। विज्ञानमयकोष ज्ञानशक्तिवाला और कर्त्ता है । मनोमय कोष इच्छाशक्तिवाला और कारण है। प्राणमय कोष क्रियाशक्तिवाला और कार्य है। इन तीनों कोषोंको ही सूक्ष्म शरीर कहा जाता है— यह फिर लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

सूक्ष्म शरीरमें भी समष्टि (सामूहिक) और व्यष्टि (व्यक्तिगत) नामक भेद हैं । समष्टि सूक्ष्म शरीरकी उपा-

धिवाला चैतन्य सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ और प्राण कहाता है। सूत्रके समान यह प्रत्येकमें ओत-प्रोत है; इसलिये सूत्रात्मा है तथा ज्ञान-इच्छा-क्रिया-शक्ति-युक्त सूक्ष्म भूतोंका अभिमानी होनेसे यह हिरण्यगर्भ और प्राण है। हिरण्यगर्भकी उपाधि उक्त तीनों कोष (सूक्ष्म शरीरकी समष्टि) स्थूल जगत्की अपेक्षा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं।

प्रत्येक जीवका अपनी-अपनी बुद्धिका विषय होनेसे यह सूक्ष्म शरीर व्यष्टि भी है। इस व्यष्टि उपाधिवाले चैतन्यका नाम तैजस है। यह स्वप्न-कालमें केवल तेजोमय अन्तःकरणके द्वारा कल्पित विषयका अनुभव करता है। प्रत्येक तैजसात्माकी उपाधि, स्थूल शरीरसे सूक्ष्म होनेके कारण, सूक्ष्म शरीर कहाती है। यह स्थूलशरीरका लय-स्थान भी है। समष्टिसूक्ष्मशरीराभिमानी सूत्रात्मा और प्रत्येक (—व्यष्टि)-सूक्ष्मशरीराभिमानी तैजसात्मा स्वप्न-कालमें सूक्ष्म मनोवृत्तिके द्वारा सूक्ष्म विषयका अनुभव करते हैं।

पहलेके समान यहां भी समष्टि और व्यष्टि शरीरोंमें वस्तुतः भेद नहीं है——उनकी उपाधिवाले चैतन्योंमे भी भेद नहीं है। फलतः सब अभिन्न हैं।

पाँचों प्रकारके सूक्ष्म भूतोंके मिश्रणसे वे व्यवहारके योग्य स्थूल पञ्च भूत हो जाते हैं। वेदान्तका मत है कि, जगत्की रचना करनेकी इच्छासे ईश्वरने प्रत्येक महाभूतको दो-दो भागोंमें बाँटा। पुनः प्रत्येकके प्राथमिक भागको चार

समान भागोंमें विभक्त किया। अनन्तर प्रत्येकके ये चारों भाग (अपने-अपने द्वितीयार्द्धको छोड़कर) अन्य चार भूतोंके द्वितीयार्द्ध भागोंसे मिलाये गये। इस प्रकार प्रत्येक भूतमें अपना आधा (द्वितीयार्द्ध) और अन्य चार भूतोंमें प्रत्येकका अष्टमांश रहता है। इसी मिलावटका नाम पञ्चीकरण है। पञ्चीकरण हो जानेपर भी जिसमें जिस भूतकी अधिकता रहती है, उसका वही नाम पड़ता है। आकाशका गुण शब्द, वायुका स्पर्श, अग्निका रूप, जलका रस और पृथिवीका गन्ध है। वायुका कारण आकाश है; इसलिये उसमें आकाश और वायुके गुण शब्द और स्पर्श—दोनों रहते हैं। अग्निका कारण वायु है; इसलिये उसमें शब्द, स्पर्श और रूप——तीनों गुण रहते हैं। जलका कारण अग्नि है; इसलिये उसमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस—चारों गुण हैं। पृथिवीका कारण जल है; इसलिये उसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—पाँचों गुण रहते हैं।

पञ्चीकृत भूतोंसे ही पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, महः, जन, तपः, सत्य आदि लोकों तथा अतल, वितल, भूतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल आदि बने हैं। इन सब लोकोंका एक संयुक्त नाम है ब्रह्माण्ड। ब्रह्माण्डमें चार स्थूल शरीरों और उनके भोगके खाद्य, पेय आदि पदार्थ बने।

चार स्थूल शरीर ये हैं—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। जरायु वा गर्भ-वेष्टनसे निकलनेके कारण मनुष्य

और पशु आदि जरायुज कहाते हैं। अंडेसे उत्पन्न पक्षी, सर्प आदि अण्डज कहाते हैं। स्वेद, क्लेद वा पसीनेसे उत्पन्न मच्छड़, खटमल आदि स्वेदज हैं। पृथिवीको फोड़कर उत्पन्न होनेवाले तृण, वृक्ष आदि उद्भिज्ज हैं। सामूहिक रूपसे ये स्थूल शरीर एक और व्यष्टि वा भेद-बुद्धिके अनुसार अनेक हैं। समष्टि स्थूल शरीरकी उपाधिवाला चैतन्य वैश्वानर और विराट् कहाता है। ये नाम इसलिये पड़े कि, वह सर्वदेहाभिमानी और विविध प्रकारसे वर्त्तमान है। वैश्वानरका यही समष्टि स्थूल शरीर अन्नमय कोष है। भोगोंका आयतन होनेके कारण इसका एक नाम "जाग्रत्" भी है। पृथक्-पृथक् स्थूल शरीरों (व्यष्टि) की उपाधिवाला चेतन्य विश्व कहाता है। इसे भी अन्नमय कोष और जाग्रत् कहा गया है।

जाग्रत् अवस्थामें विश्व और वैश्वानर दिक्, वायु, अर्क, वरुण और अश्विनीकुमारोंके द्वारा प्रेरित होकर श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राणके द्वारा यथाक्रम शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका अनुभव करते हैं। दिक्, वायु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियोंपर अनुग्रह करनेवाले देवता हैं।

विश्व और वैश्वानर अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, यम और प्रजापतिके द्वारा अनुगृहीत वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थके द्वारा यथाक्रम कथन, ग्रहण, गमन, परित्याग और आनन्दका अनुभव करते हैं।

ये दोनों वन्द्र, ब्रह्मा, शङ्कर और विष्णुके द्वारा नियन्त्रित मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्तके द्वारा संकल्प विकल्प, निश्चय, अभिमान और अनुसन्धानका अनुभव करते हैं। वृक्ष और वनके समान ये विश्व और वैश्वानर भी एक हैं। इन सब स्थूलों, सूक्ष्मों और कारणोंकी समष्टिको वैसे ही महाप्रपञ्च कहा जाता है, जैसे छोटे-छोटे वनोंकी समष्टिको महावन कहा गया है।

इन त्रिविध उपाधियोंसे युक्त वैश्वानर और विश्व हिरण्यगर्भ और तैजस, ईश्वर और प्राज्ञ (प्रायेण अज्ञ = जीव) आदि सब वैसे ही एक चैतन्य है, जैसे निखिल-वन-युक्त आकाश और अखिल-जलाशय-प्रतिबिम्बित आकाश वस्तुतः एक हैं।

उक्त महाप्रपञ्च और उसके द्वारा उपहित चैतन्य "तप्त लौह-पिण्ड"के समान संयुक्त प्रतीत होते हैं। "लोहा जलाता है"के दो अर्थ हैं—वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ। अग्नि और लौह अलग-अलग हैं; तो भी अत्यन्त संयोग होनेके कारण लोग कहते हैं, "लोहेसे जल गया"। यहाँ लोहेका अर्थ लोहा नहीं है—लोहेमें मिला अग्नि ही लोहा शब्दका अर्थ है। यह हुआ लौह शब्दका वाच्यार्थ। लोहेको छोड़ देनेपर जो अग्नि रहता है, वह उक्त वाक्यका लक्ष्यार्थ है। इसी प्रकार "तत्त्वमसि," 'अहं ब्रह्मास्मि,' "सर्वं खल्विदं ब्रह्म," "प्रज्ञानं ब्रह्म" आदि चारों महावाक्योंका वाच्यार्थ

है समष्टि और व्यष्टि अज्ञान तथा इन उपाधियोंसे युक्त चैतन्यका एकीभाव । उपाधि-रहित केवल चैतन्य इन महावाक्योंका लक्ष्यार्थ है । इस बातको यों भी कहा जा सकता है कि, सत्तारूपी चेतन्य ही सत्य है और महा-प्रपञ्च मिथ्या है—यही वेद-वचनोंका वास्तव तात्पर्य और तपःपूत महर्षियोंका अखण्ड अनुभव है । सबमें एकताका भव्य भाव, समानताकी सरस सुरसरी और सबमें अवि-भक्तिका दिव्य आलोक ! यही सच्चा "साम्यवाद" है, यही वैज्ञानिक अद्वैतवाद है और यही मानव तथा अतिमानव-का अकाट्य अनुभव है । इसी अभेद्य सत्ताका प्रतिपादन करनेके कारण वेदान्त संसारका सर्व-श्रेष्ठ दर्शन कहाता है ।

वेदान्तके मतमे एक अखण्ड चैतन्यके सिवा सभी दृश्य अज्ञान-जन्य और मिथ्या हैं । जैसे रस्सीमें भ्रम-वश सर्पका आरोप मिथ्या और रस्सी ही सत्य है, वैसे ही वस्तु चिदात्मामे दृश्य अवस्तुओंका आरोप मिथ्या है । सारा जगत् प्रपञ्च, भ्रम वा अज्ञानके द्वारा कल्पित है; इसलिये वह मिथ्या है, केवल अद्वितीय चिदात्मा ही सत्य है । चिदा-श्रित अज्ञान विकारी, परिणामी और दृश्योंका उपादान है । सन्निधि-रूपसे चिदात्मा निमित्त माना गया है । कुछ वेदा-न्ती कहते हैं कि, महाप्रलयमें प्राणियोंके अदृष्ट आदिके साथ ब्रह्म रहता है और कुछ कहते हैं कि, चारो स्थूल शरीर, उनके भोग्य, उनके आधार पृथिव्यादि

चतुर्दश भुवन, उनका आश्रय ब्रह्माण्ड आदि सब अपने-अपने उपादानोंमें लीन हो जाते हैं। इसके अनन्तर शब्द, स्पर्श आदिके साथ पञ्चीकृत भूत, सूक्ष्मशरीर, अपञ्चीकृत महाभूत, उपाधिप्राप्त चिदात्मा आदि अपने-अपने कारणोंमें विलीन हो जाते हैं। जब उपहित चैतन्य भी अपने अधिकरण अनुपहित चैतन्यमें लीन हो जाता है, उस समय अर्थात् महाप्रलयावस्थामें केवल चेतन अवशिष्ट रहता है। कुछके मतसे ऐसा महाप्रलय ज्ञानियोंके लिये ही होता है।

मतलब यह कि, सारा प्रपञ्च भ्रम है, अज्ञान है। गुरूपदेश, मनन, निदिध्यासन, योग, तपस्या, समाधि आदिके द्वारा जब चित्त निर्मल हो जाता है, तब ब्रह्मज्ञानका उदय हो जाता है और साधक ब्रह्ममें स्वानुभूति कर लेता है। उस समय ज्ञानीके लिये सम्पूर्ण अज्ञान वैसे ही विनष्ट हो जाता है, जैसे प्रकाशके सामने अन्धकार नष्ट हो जाता है। यद्यपि अज्ञान, माया वा भ्रम और उसके प्रपञ्च अनादि हैं; परन्तु वैसे ही सान्त भी हैं, जैसे घटका अनादि अभाव घटके आनेसे सान्त हो जाता है। सो, ज्ञानीके प्रचण्ड ज्ञानालोकके सामने ये सारे दृश्य सदाके लिये अवस्तु हो जाते हैं. ज्ञानीको अखण्ड-ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाता है, अन्तःकरणके सारे संशय, भ्रम तथा कर्म, अकर्म जलकर भस्म हो जाते हैं और उसकी ब्रह्मके साथ अविभाज्य एकता हो जाती है। जीते जी संसारमें मुक्त होनेके कारण ऐसे

ज्ञानीको जीवन्मुक्त भी कहा जाता है। हम व्यवहारी जीव अपने शरीर और उसके उपभोग्यको जहां सत्य समझा करते हैं, वहाँ परमार्थी ज्ञानी सबको केवल इन्द्रजाल समझ कर देखता है और कभी भी इन्हें सत्य नहीं समझता। जल पड़नेपर भी जैसे कमलका पत्ता उससे निर्लिप्त रहता है, वैसे ही जीवन्मुक्त कर्म करने पर भी अन्तःकरणसे निर्लिप्त रहता है। जैसे कुम्भकारके एक बार चक्र चला देनेपर भी कुछ कालतक चक्र चलता रहता है, वैसे ही पूर्व जन्मके कर्मानुसार ज्ञानीका भी आयुः-चक्र चला करता है; परन्तु उसमें या उसके कार्योंमें ज्ञानीकी इच्छा, वासना आदि बिलकुल नहीं रहते; इसलिये ज्ञानीके पास पुण्य आदि फटकने भी नहीं पाते। ऐसे पुरुषका न तो कोई शत्रु होता है, न मित्र। भोगके द्वारा पूर्वके कर्मफलका विनाश हो जानेपर वह प्रत्यक् चैतन्यमें विलीन हो जाता है—वह परिपूर्ण, अद्वितीय, एकरस और अखण्ड ब्रह्ममें मिल जाता है--स्वयं कूटस्थ ब्रह्म बन जाता है।

ब्रह्म और वेदान्त

वेदान्तके मतसे परमात्माके तीन रूप हैं—ब्रह्म, ईश्वर और विराट्। ब्रह्म कूटस्थ वा मूलस्थ, सदा एकरस, निर्गुण और अनिर्वचनीय आदि है। ईश्वर मायावी वा

माया उपाधिवाला, सगुण, समयानुसार अवतार धारण करनेवाला और समस्त विश्वोंका संचालक आदि है। विराट् ब्रह्माण्ड, चराचर-समन्वित, विश्वरूप आदि है। सबका मूल सत्य, नित्य और ज्ञानमय चेतन है--उसमें सूत्रमें मणियोंके समान सब गूँथे हुए हैं। वही अखण्ड सत्य चैतन्य ब्रह्म है, जो निरञ्जन और सदा अविचल है। अज्ञान वा मायाके कारण हम उसके सगुण और विराट् रूपोंकी कल्पना कर डालते हैं। यह माया अनादि है; परन्तु प्रागभावके समान (घड़ेका कहीं अनादि अभाव रहनेपर भी वहाँ घड़ेके आनेपर उसका अनादि अभाव सदाके लिये नष्ट हो जाता है, वैसे ही) सान्त है। जिसे ब्रह्म-ज्ञान हो गया, उसके सामने यह अज्ञान वा माया वैसे ही सदाके लिये विलुप्त हो जाती है, जैसे प्रकाशके सामने अन्धकार विलुप्त हो जाता है। यह बात परमार्थ-दशामें प्राप्त ज्ञानीके लिये ही होती है—सबके लिये नहीं। यह सब होनेपर भी व्यवहार-दशामें यह माया, अज्ञान वा अनादि भ्रम सत्य माना जाता है। इसलिये व्यवहार-दशामें प्राप्त कर्त्तव्योंको निष्काम भावसे सबको पूरा करना चाहिये। स्वयं शङ्कराचार्यने भी जीवन भर निष्काम कर्म किया था। गृहस्थोंको, कुछ अवस्थाओंमें, सकाम कर्म भी करने चाहिये। वेदान्तका यही मत है। वेदान्त बार-बार कहता है कि, स्वप्नमें देखी वस्तुओं या

इन्द्रजालके समान सारा दृश्य असत्य होनेपर भी किसीको भी कर्त्तव्य-हीन नहीं बनना चाहिये। कर्त्तव्य-परायणतासे ही मनुष्यका चित्त निर्मल होता है; और, निर्मल-चेता ही ब्रह्म-ज्ञानको समझनेका अधिकारी है। वस्तुतः वेदान्तका मत है समता है——वह अपनी सारी सृष्टि-प्रक्रियामें, समूचे प्रतिपाद्यमें, निखिल जड़-चेतनमें एक ही परम तत्त्वको देखता है, एक ही महासत्यमें ओत-प्रोत सबको परखता है। वह विषमताका, उच्चता और अधमताका, बन्धन और ससीमताका कट्टर शत्रु है। वेदान्तकी प्रत्येक बातसे हमें यही शिक्षा मिलती है। हमारे जो पाठक अभी-अभी "वेदान्तकी कुछ आवश्यक बातें" शीर्षकको ध्यानसे पढ़ चुके होंगे, वे इस अमूल्य शिक्षाका पद-पद पर अनुभव करेंगे। विशुद्ध चैतन्य, अज्ञान, मायोपहित चैतन्य (ईश्वर), पञ्च महाभूत, सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर, जीव, विराट् आदि आदि सब नाम मात्रके लिये पृथक्-पृथक् हैं; वस्तुतः सबमें एकताकी मन्दाकिनी बह रही है, सबमें समत्वकी विमल किरणें प्रसृत हैं, सबका हृदय एक है, सब एक ही विलास है। सारे प्रपञ्चकी एक-रूपता वा महाप्रपञ्चका एकत्व और विषमताका मिथ्यात्व जैसा वेदान्तने समझाया है, वैसा संसारके किसी भी दर्शनशास्त्रने नहीं। यही कारण है कि, संसारका सर्व-श्रेष्ठ दर्शन वेदान्त ही माना गया है। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थने वेदान्तकी इसी

अपूर्वता और श्रेष्ठताकी पताका अमेरिका, यूरोप, जापान आदिमें फहरायी थी, जो आजतक फहरा रही है।

यहां हम एक बात लिख देना आवश्यक समझते हैं। इस "ईश्वरसिद्धि" ग्रन्थमें हमने ईश्वर शब्दका प्रयोग निर्गुण और सगुण, ब्रह्म और सृष्टि-संचालक, दोनों अर्थों में किया है। परन्तु वेदान्तने ब्रह्मको निर्गुण और कूटस्थ माना है तथा ईश्वरको मायावी और सगुण। वेदान्तके मतको ही हम भी मानते हैं; परन्तु संक्षेप और सुभीतेके लिये हमने ऐसा किया है। यह लिखनेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं कि, वेदान्तका ईश्वर भी ब्रह्मका ही एक रूप है अथवा निर्वचनीय ब्रह्म ही है, अनिर्वचनीय नहीं।

यद्यपि कई स्थलोंमें हम ब्रह्मके स्वरूपका उल्लेख कर चुके हैं; परन्तु इस स्वरूपकी अधिक स्पष्टताके लिये हम ब्रह्मके सम्बन्धके कुछ वेदान्त-सूत्रोंका मन्तव्य भी दे देना आवश्यक समझते हैं।

वेदान्त-दर्शनके प्रथम अध्यायके प्रथम पादके प्रायः सारे सूत्र ब्रह्मके लक्षण आदिको ही बताते हैं। उनमेंसे कुछ सूत्रोंके भाव हम यहाँ लिखते हैं।

यह दर्शन कहता है कि, जिससे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसमें अवस्थित है और जिसमें विलीन होगा, वही ब्रह्म है। यह ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है; स्वरूपलक्षण नहीं। यह ऐसा कल्पित लक्षण है, जो

ब्रह्मका वास्तव रूप न बनाते हुए भी ब्रह्मके रूपका कुछ परिचायक है । वेदान्तका मत है कि, जगत्कारण ब्रह्म (वस्तुतः चेतन वा ईश्वर) ज्ञानागार शास्त्रोंका उत्पत्तिस्थान है । शास्त्र शब्दका अर्थ वेद और दर्शन, दोनों है । वेद ब्रह्म (ईश्वर) का श्वास माना गया है इसलिये वही वेदका जन्मस्थान कहा गया है । वेदान्तका यह भी मत है कि, वेदादि शास्त्रोंके द्वारा ही ब्रह्मको जाना जा सकता है और वेदान्त-श्रुतियोंका प्रतिपाद्य ब्रह्म ही है । वेदान्तके तीसरे और चौथे सूत्रोंके भाष्यमें ये बातें बड़े विशद रूपसे लिखी गयी हैं ।

सांख्य-प्रणेताका मत है कि, जड़-स्वभावा प्रकृति ही जगत्-का कारण है, ब्रह्म नहीं । वेदान्त-प्रणेता व्यासने पाँचवें सूत्रमें इस मतका खण्डन किया है । लिखा है, सांख्यकी प्रकृति जगत्कारण नहीं है; क्योंकि वेदका मत इस बातका समर्थक नहीं है । वेदमें लिखा है कि, जगत्के कर्त्ताने सृष्टि-समयमें ईक्षण वा आलोचन किया । यह कर्म चेतनका ही हो सकता है, जड़का नहीं । जड़ कैसे समीक्षा कर सकता है ? यह भी नहीं कहा जा सकता कि, यहाँ ईक्षण शब्दका प्रयोग मुख्य नहीं, गौण है; क्योंकि श्रुतियोंमें, इस प्रसङ्गमें (जगत्कारणत्वमें), आत्मशब्द अर्थात् चेतनका ही प्रयोग है और अचेतन (जड़) के लिये आत्मशब्दका प्रयोग नहीं हो सकता ।

यदि यह कहा जाय कि, जैसे राज-रूप होकर नौकर वा प्रतिनिधि सन्धि-विग्रह आदि करता है, वैसे ही पुरुषात्मा होकर प्रकृति ही सब कुछ करती है, यह ठीक नहीं; क्योंकि आत्मज्ञाताके मुक्ति-लाभकी बात भी वहाँ लिखी गयी है । इसलिये आत्मशब्दको गौण नहीं, मुख्य मानना पड़ेगा । भला वेद क्योंकर अभिज्ञ चेतनको अचेतन होनेका उपदेश देगा ? यदि जगत्कारण आत्माको इन्द्रिय, मन, बुद्धिके समान गौण माना गया होता, तो श्रुति इन्द्रियादिके सदृश ही जगत्कारण आत्मा वा ब्रह्मका भी निषेध किये रहती वा इसका गौणत्व भी बताये रहती। श्रुतिने यह भी कहा है कि, सुषुप्ति-कालमें जीव अपने स्वरूपमें लीन होता है और वही स्वरूप सत् वा आत्मा है । इसलिये जगत्कारण-प्रतिपादक श्रुतिमें सत् शब्द है (सदेव सोम्य इदमग्र आसीत्). वही आत्मा जगत्कारण है, प्रकृति नही। सारे सृष्टि-बोधक वेद-वचनोंमें चेतनको ही जगत्कारण माना भी गया है । फलतः सांख्यकी प्रकृति वा न्यायका परमाणु जगत्कारण नहीं हैं ।

वेदान्त दर्शनके ११ सूत्रोंका तात्पर्य इतना ही है। इससे पाठक समझेंगे कि, ब्रह्मके स्वरूप और अस्तित्वके सम्बन्धमे शब्द-प्रमाण वा वेद-प्रमाणको ही वेदान्तने सबसे अधिक महत्त्व दिया है । वेदको वेदान्त ईश्वरका निश्वास मानता है । वेदोंके उपदेश अनन्त कालके अनुभूत हैं और दूसरोंके

अनुभव परिमित कालके (जो कच्चे भी हो सकते हैं); इसलिये वेदोपदेशको ही वेदान्तने सर्व-श्रेष्ठ प्रमाण माना है और उसीके आधारपर अपना मत स्थिर किया है। मुख्य बात यह समझिये कि, वेदान्त-दर्शनकी प्रत्येक बात वेद वा श्रुति (विशेषतः उपनिषदों)के वचनोंपर ही अवलम्बित है ।

इसके आगे वेदान्तने अपने उपास्य (सगुण) और ज्ञेय (निर्गुण) चेतनोंका विचार किया है, जो इस प्रकार है—

आनन्द शब्दका प्रयोग बार-बार परमात्मामें ही देखा जाता है; इसलिये तैत्तिरीय श्रुतिमें कथित आनन्दमय * आत्मा परमात्माका ही वाचक है । मतलब यह है कि, आत्मा ही परमात्मा है। आनन्दमयका अर्थ है, प्रचुर आनन्द-वाला। यद्यपि विकार अर्थमे भी मयट् प्रत्यय होता है; परन्तु यहाँ वह अर्थ नहीं है, प्रचुरता ही अर्थ है । श्रुतिमें लिखा है कि, जीवके आनन्दका मूल कारण ब्रह्म ही है; इसलिये भी "आत्मा आनन्दमयः" में विकार अर्थमें मयट् प्रत्ययको नहीं माना जा सकता । निर्विकार ब्रह्ममें विकार सम्भव भी नहीं है । जो ब्रह्म मन्त्र-वाक्योंमें कहे गये हैं, वे ही उस तैत्तिरीय श्रुतिमें भी कहे गये हैं। जीवका आनन्दमय होना युक्ति-सिद्ध भी नहीं, आनन्दमय तो परमात्मा ही है । श्रुतिने जीवको आनन्दका प्रापक और

* यहाँ विकारवाले आनन्दमय कोषसे मतलब नहीं है।

आनन्दमयको प्राप्य कहा है। तब दोनों एक कैसे हुए? अनुमान-गम्य प्रकृति भी आनन्दमय वा सृष्टि-कर्त्री नहीं है; क्योंकि जगत्कारणका सृष्टि बनाना इच्छा-पूर्वक माना गया है और जड़ा प्रकृतिमें इच्छा नहीं है। श्रुतिमें कहा गया है कि, जीव आनन्दमयको जानकर आनन्दमय हो जाता है; इसलिये आनन्दमय ब्रह्म ही है, जीव वा प्रकृति नहीं।

वेदान्तदर्शनका विश्वास है कि, प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण, अनेक स्थलोंमें, दूषित हो जाते हैं और वेद-वाक्य सदा निर्भ्रान्त होते हैं; इसलिये वेद-वचन वा शब्द प्रमाणको ही श्रेष्ठ प्रमाण मानना चाहिये और उसीके आधार-पर ब्रह्म आदिका निरूपण भी करना चाहिये। अपने इसी मतके अनुसार वेदान्तने अपने सारे प्रतिपाद्योंका विवेचन किया है; और, ऐसा सुन्दर विवेचन किया है, जिसके सामने सारे दर्शनोंके विवेचन फीके पड़ गये हैं। इस दर्शनकी युक्तियाँ भी अनूठी हैं; परन्तु वे सबकी सब श्रुति-सिद्धान्तानुकूल ही हैं। श्रुति-विरुद्ध युक्तियों और तर्कोंको वैदान्तिक "कुयुक्तियां" और "कुतर्क" कहते हैं।

वेदान्तका निष्कर्ष

ऋग्वेद (२ अष्टक, ३ अध्याय, ४६ मन्त्र) का कहना है कि, "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात् तत्त्व-दर्शी पुरुष एक मात्र सद्वस्तुको ही अनेक प्रकारसे निर्देश किया करते हैं।" यह बात बिलकुल सही है। लोगोंको समझानेके लिये—साधारण जनोंके मस्तिष्कमें परम तत्त्वका ज्ञान बैठानेके लिये—चिन्ताशील अधिकारियोंने नाना नाम-रूपोंकी कल्पना की है—वस्तुतः विष्णु, शिव, गणेश, दुर्गा, आत्मा आदि सब एक हैं। इसी तत्त्वको ईसाई स्वर्गस्थ पिता, मुसलमान अल्लाह, पारसी अहुरमज्द, चीनी तितीन, यहूदी जेहोवा, इमर्सन परमात्मा (Over-soul), प्लेटो शिव (Good), स्पिनोजा सारतत्त्व (Substancia), सर विलियम क्रूक्स मूल तत्त्व (Protyle), शोपेनहार महाशक्ति (Will) और हेकेल सत् (Substance) कहते हैं। हमारे भारतीय आचार्योंमेंसे सांख्याचार्योंने इस तत्त्वको "आदिविद्वान्", पातञ्जलोंने "क्लेश, कर्म, विपाक और आशयसे शून्य," उपनिषद्वादियोंने "शुद्ध-बुद्ध-स्वभाव," शैवोंने "शिव," वैष्णवोंने "पुरुषोत्तम," पौराणिकोंने "पितामह," याज्ञिकोंने "यज्ञ-पुरुष," महापाशुपतोंने "निर्लेप और स्वतन्त्र," सौगतोंने "सर्वज्ञ," दिगम्बरोंने "निरावरण" (वस्त्र-शून्य), मीमांसकोंने "उपासनासे प्रसिद्ध वा कर्म," नैयायिकोंने

"यावदुक्तोपपन्न," (कर्त्ता), शिल्पियोंने "विश्वकर्मा" और चार्वाकोंने "लोक-व्यवहार-सिद्ध" माना है । बस, "नदिया एक, घाट बहुतेरे" वाली बातको ही पक्की समझिये ।

यह "नदिया" समताका स्वरूप है । जो इसे समझ लेता है, जो अपने ही समान समस्त चराचरको जानता है, वह शोक, मोह आदिसे परे हो जाता है—

"यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥" (ईशोपनिषद्)

विषमतामें दुःख है, अशान्ति है, विनाश है । विषमतामें अनन्य अनुराग नहीं हो सकता और परा अनुरक्तिसे शून्य पुरुषको आनन्दकी उपलब्धि नहीं हो सकती । निरानन्द पुरुष मायाके जालमें जकड़ा रहता है अथवा विकट संसार-चक्रमें पिसता रहता है । वह बुद्धिमान् नहीं, बुद्धि-भ्रष्ट है, पण्डित नहीं, मूर्ख है । पण्डित तो वे हैं, जो विद्वान् और विनयी ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालतकको एक भावसे देखते हैं—

"विद्या-विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥" (गीता)

यह ब्रह्मज्ञान, ऐक्यज्ञान वा समत्व-ज्ञान परा विद्यासे होता है—"परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।" (मुण्डकोपनिषद्) । यह परा विद्या अन्तर्ज्ञान है । जहाजवाले ज्योतिषकी गणनाके बलपर दिशाको जानकर नियत स्थानपर पहुंचते

हैं और कबूतर बिना गणनाके, अन्तर्ज्ञानके बलपर, नियत स्थानपर पहुंचते हैं। अन्तर्ज्ञानी बहुत्वमें दुःख समझकर "वसुधैव कुटुम्बकम्"को अपनाता है। अन्तर्ज्ञान अनन्त गम्भीरताको पाकर आनन्द-सागरमें निमग्न हो जाता है। स्टाबकने अन्तर्ज्ञानके विषयमें अपना अनुभव इस प्रकार लिखा है—"अन्तरकी गहराई और भी गहराईमें पैठने लगी—मेरी ही साधनासे जो गहराई मेरे अन्दर उत्पन्न हुई, उससे आकर मिलने लगी वह अथाह गम्भीरता, जो बाहर है, जो नक्षत्रोंको भी पार कर गयी।......कई अवसरोंपर मैंने यह अनुभव किया कि, मुझे भगवत्सत्ताके सारूप्यका आनन्द भोगनेको मिला।" यह भगवत्सत्ता अनन्त-रस-स्वरूपिणी है। स्वरूप-ब्रह्म रसमय है। उसे पानेपर ही अखण्ड आनन्दकी प्राप्ति होती है—"रसं ह्यवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।" (तैत्तिरीय) वह आनन्दी ब्रह्मको, ईश्वरको चारो तरफ देखता है—"स एव अधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वमिति।" (छान्दोग्योपनिषद्)

इस ईश्वरको और इस जागरूक सत्यको वेदान्त दर्पणकी तरफ दिखाता है और दिखाकर हर एककी आत्मामें अनन्त आनन्द और निर्मल शान्ति भरता है। यही वेदान्तका वेदान्तपन है, जिसपर समस्त विश्वके मनीषी, भक्त और दार्शनिक मुग्ध, स्तब्ध और आसक्त हैं। वेदान्तकी वाणीमे

जो ओज, प्रताप और प्रोज्ज्वलता है, वह किसीकी भी वाणीमें नहीं है, किसीके भी उपदेश वा आदेशमें नहीं है। मैक्स-मूलर साहबका मत है—"वेदान्त सभी दर्शनोंसे अधिक गम्भीर दर्शन है। हमारे हेराक्लिटस, प्लेटो, कांट आदि तत्त्ववेत्ताओंमें ऐसा कोई नहीं हुआ, जिसने ऐसी मीनार खड़ी की हो, जिसे तूफान या बिजलीका कोई भय नहीं हो, जहाँ एक बार ऊपर चढ़नेके लिये कदम रखा और जहाँ एक बार यह बात समझमें आ गयी कि, मूलमें एकके सिवा दूसरा कोई नहीं हो सकता और अन्तमें भी एकके सिवा दूसरा नहीं हो सकता (उसे चाहे आत्मा कहिये चाहे ब्रह्म), वहाँ आगे पत्थरपर पत्थर रखा पक्का रास्ता बराबर मिलता चलेगा।" (Six systems of Hindu Philosophy, P. 239) शोपेनहारका मत है कि, "यह (वेदान्त) मेरे जीवनका दिलासा है; यह मेरी मृत्युका दिलासा होगा।"

जैसा कि हम पहले लिख आये हैं, इसी वेदान्तकी दिव्य वाणी स्वा० रामतीर्थ, स्वा० विवेकानन्द, आदिने जापान, अमेरिका, यूरोप और ईजिप्टको सुनाकर वहाँकी जनताको विस्मित कर दिया था। इन दिनों भी वेदान्तकी इसी प्रतापशालिनी वाणीको सुनाकर रामकृष्ण मिशन निखिल महीमण्डलको चमत्कृत किये हुए है। यह वाणी केवल समता, सत्यता और विश्व-बन्धुता है और वही ईश्वरका रूप है, जो स्वतः सिद्ध है।

इस साम्यवादके जमानेमें तो वेदान्तीय ईश्वरको समझने-की अतीव आवश्यकता है। वेदान्तका डंकेकी चोट यह कहना हमारे पाठकोंको मालूम है—"द्वितीयाद्वै भयं भवति"। जहाँ दो रहेंगे, वहाँ रुचि-भेद होगा, मत-विभिन्नता होगी। मत-विभिन्नता होनेसे ही द्वेष, क्रोध, स्मृति-भ्रष्टता, बुद्धि-नाश आदि होंगे और इन सबके होनेसे एकका विनाश हो जायगा। दो पदार्थ नित्य नहीं हो सकते—एक वही नित्य हो सकता है, जो पूर्ण, ज्ञानमय और रस-रूप है। इसीसे वेदान्तने प्रकृति (जड़) और जीव (चेतना) का भेद दूर करके उन्हें भी ब्रह्मके साथ मिला दिया। जब सब एक ही हैं, तब स्वभावतः सबके दुःख और अभावमें सबको शामिल होना चाहिये। किसी तालाबमें एक रोड़ा फेंकनेसे ही अनेक तरङ्गें उत्पन्न होंगी और सारे तालाबके जलको चञ्चल बना देंगी। इसी प्रकार यदि आप जान जायं कि, एकको दुःख पहुँचानेसे सारी वसुधाके हृदय-देशपर प्रहार होगा, तो अवश्य ही विश्व-बन्धुताका एकान्त उपासक हो जायं। जब आप सबको अपने ही समान समझने लगेंगे, तब अपने ही समान सबपर प्रेम करेंगे, सबकी रक्षा करेंगे, सबको उन्नत करेंगे और सबको पूरा आनन्द और शान्ति देनेकी चेष्टा करेंगे। यही वेदान्त है, यही अन्ता-राष्ट्रियता है और यही विश्व-भ्रातृ-वाद है। इस वेदान्तको समझनेवाला वेदान्ती अपनेको सबमें मिला देता है—अपना

"आपा" खो देता है। वह न तो अपनेसे भिन्न किसी दूसरेको समझता है और न दूसरेसे अपनेको भिन्न समझता है। वह एकता वा ईश्वरताकी विजयपताका लिये विश्वमें रमता रहता है। इसीसे वेदान्तीको जीवन्मुक्त कहा गया है। वह अपने साथ ही दूसरोंमें भी ईश्वरत्वका अजेय तेज भरता रहता है। वह जिसे छू देता है, वह अमृतसे भी प्रिय बन जाता है, वह जिसे देख देता है, चन्द्रिकासे भी निर्मल हो जाता है और वह जिसपर पैर रखता है, वह पद्मराग मणिसे भी मूल्यवान् हो जाता है। उसका हृदय पारिजातसे भी अधिक सुगन्धित और स्फटिक मणिसे भी अधिक शुभ्र होता है। उसकी मुट्ठीमें ही कुरुक्षेत्रका भैरव-रव, वीरोंका भयंकर हुंकार, रण-चण्डीका प्रचण्ड अट्टहास, रणभूमिका विकट झणत्कार, लक्ष्मीका मधुर हास्य और वृन्दावनकी प्रेमतरङ्ग आदि नाचा करते हैं। वह ईश्वरीय दूत है और विश्वके उद्धारके लिये ही उसका अवतरण हुआ करता है।

यद्यपि हिन्दीमें प्रायः वेदान्त शब्दका अर्थ ही अद्वैतवाद समझा जाता है; परन्तु रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि वैष्णव आचार्यों और उनके अनुगामियोंकी जो वेदान्त-सूत्रोंपर टीकाएँ हैं, वे शङ्कराचार्यके अद्वैतवादसे बहुत दूर हैं और उनमें ईश्वरको सेवनीय तथा जीवको सेवक माना गया है एवम् दोनोंको प्रायः स्वतन्त्र स्वीकार किया गया है। वैष्णवोंके मतसे ईश्वर

अशरणोंका शरण है, बुढ़ियाकी लकुटिया है, डूबतेको सहारा है, दरिद्रोंकी चिन्तामणि है, भ्रान्तोंका ध्रुवतारा है, अमा-निशामें ज्योति है और भव-सागर-संत्रस्तोंका सम्बल है। वे कहते हैं (और ठीक ही कहते हैं) कि, मनुष्य कितना भी अधीर हो, चञ्चल हो, संसारके थपेड़े खाकर मरणासन्न हो गया हो; परन्तु ईश्वरकी याद आते ही वह सबल-सतेज हो उठता है। उनका मत है कि, जिस समय अपने मकान-में प्रचण्ड ज्वाला उड़ रही हो, प्रलयकालीन तूफान उठ खड़ा हुआ हो, प्रबल ज्वालामुखी हुहुकार मचाये हुए हो, महासागर-का वड़वानल क्षुब्ध हो उठा हो, जहाज सागरके अगाध गर्भमें विलीन होनेवाला हो, उस समय ईश्वरका सर्वशक्तिमान् नाम मनुष्यमें अनन्त विक्रम और विश्व-विजयी प्रताप भर देता है तथा वह इन आपदाओंको देख कर प्रह्लादकी तरह हँसने और खेलने-कूदने लगता है। उनके सिद्धान्तसे ईश्वर क्या ही एक विलक्षण शक्ति है कि, वह भयको लेकर निर्भीकता, रोगको लेकर नीरोगिता, दुःखको लेकर आनन्द, चञ्चलताको लेकर शान्ति और मरणको लेकर जीवन प्रदान करता है। वैष्णवोंके मतसे क्या ही गजबकी बात है कि, मनुष्य अपने सारे दुःख-दारिद्रय, झंझट-प्रपञ्च, पाप-ताप और कुकर्म-कुवासनाएँ ईश्वरके ऊपर फेंक देता है, "कृष्णा-र्पण" कर देता है और प्रतिक्षण अपने नाथसे, सर्वशक्ति-मान् ईश्वरसे सरसता और सुन्दरता, प्रतिभा और वर्चस्व

प्राप्त करता रहता है। इसीलिये, सारी वेदान्तविद्याका मन्थन करने बाद भी वैष्णव कहा करते हैं—

"यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा,
विलुठतु चरणाब्जे मोक्ष-साम्राज्य-लक्ष्मीः।"

शङ्करमत-वादियों और वैष्णवोंमें वस्तुतः रुचि-विभिन्नता है—दोनोंके मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। अद्वैतवादी ज्ञानकी प्रधानता मानते हैं और परमार्थ-ज्ञानसे ही मोक्ष मानते हैं तथा द्वैत-वादी भक्तिको प्रधानता मानते हैं और पराभक्तिसे ही मुक्ति मानते हैं। गांधीजीके समान वैष्णव भी ऊंच-नीचका भाव छोड़कर सबकी सेवा करना परम धर्म और असली वेदान्त मानते हैं तथा शङ्करानुगामी भी यही बात मानते हैं। बस, "नदिया एक, घाट बहुतेरे।" परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, अनेक प्राचीन और अर्वाचीन मनीषियों तथा सिद्ध-साधकोंने अद्वैतवादतक पहुँचनेके लिये द्वैतवादको सीढ़ी माना है और सालोक्य, सामीप्य आदि मुक्तियोंके बाद तादात्म्यमुक्ति मानी है। वेदान्तका अन्तिम वाद अद्वैतवाद ही है—विदेशी विद्वानोंतकने इस बातको स्वीकार किया है। इस वादके कारण विदेशोंमें भी हम गौरवान्वित हैं, अन्य देशोंको भारतका यह उपहार है और संसारके समाजवादी अथवा साम्यवादी देशोंके अनुकूल भी यही वाद है। पृथिवीके अन्य देशोंमें भी इस

अद्वैतवादका अङ्कुर उत्पन्न हुआ है; परन्तु इसका विचारित, मथित और विकसित रूप हमारे ही यहाँ प्रकट हुआ है। यह बात निःसन्दिग्ध है कि, ईश्वर-सिद्धिके लिये यह वाद ब्रह्मास्त्र है और विश्व-बन्धुताका प्रचार करनेके लिये भी यह मत अद्वितीय है।

अनेक वैष्णवोंका मत है कि, "द्वैतवाद प्राचीन है और अद्वैतवाद अर्वाचीन है। शङ्कराचार्य ही इसके जन्मदाता हैं। इनके पहले अद्वैतवाद विद्यमान नहीं था।" परन्तु बात ऐसी नहीं है। अद्वैतवाद प्राचीन ही नहीं, प्राचीनतम वाद है। ऋग्वेदके प्रसिद्ध "नासदीय सूक्त" के मन्त्रोंमें अद्वैतवादका ही उल्लेख है; द्वैतवादका तो नाम भी वहाँ नहीं है। छान्दोग्योपनिषद् (६।२।१) और बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४।१९) में स्पष्ट ही अद्वैतवादका विवरण है। सांख्यसूत्रों (१।२२—२४ और ३।२।८,१६) में अद्वैतवाद ही वेदान्त-मत माना गया है। न्यायसूत्र "तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः"के भाष्यमें भी अद्वैतवाद ही वेदान्त-सिद्धान्त स्वीकृत हुआ है। भवभूतिने भी "एको रसः करुण एव विवर्त्तभेदात्" तथा "ब्रह्मणीव विवर्त्तानां क्वापि विप्रलयः कृतः" आदि वचनोंमें अद्वैतवादका सिद्धान्त लिखा है। पुराणोंमें तो जहाँ कहीं भी वेदान्तका उल्लेख है, वहाँ अद्वैतवाद-सिद्धान्तसे ही तात्पर्य है। सूतसंहिता और योगवासिष्ठ जैसे प्राचीन ग्रन्थोंमें अद्वैतवाद भरा पड़ा

है । नैषध-चरित (२१।८८) में तो बुद्धको भी "अद्वयवादी" कहा गया है । शान्तरक्षितके तत्त्व-संग्रह (३२८–१२१) में अद्वैतवादका उल्लेख है । दिगम्बराचाय समन्तभद्रने आत्ममीमांसा (२४ श्लोक) में अद्वैतवादकी चर्चा की है । स्थान-संकोचके कारण हम यहाँ ऐसी उक्तियोंका अधिक उल्लेख करनेमें असमर्थ हैं । मुख्य बात यह समझिये कि. अद्वैतवाद अतीव प्राचीन वाद है और इसमें खूबी यह है कि, यह सामाजिक भी है और अबतक तरोताजा भी बना हुआ है ।

इस विषयके उपसंहार और निष्कर्षके लिये अपने लिखे हुए आशयको नीचेकी कुछ लाइनोंमें दोबारा लिखना हम आवश्यक समझते हैं—अद्वैतवादी कहते हैं कि, आत्मा चेतन है और आत्मासे इतर पदार्थ अचेतन वा जड़ । आत्मा ज्ञान-रूप है और जड़ अज्ञान-रूप । चेतनका धर्म है प्रकाश, सत्ता आदि और जड़का धर्म है अन्धकार, दुःख और अनित्यता आदि । तो भी लोग कहते हैं कि, आत्मा दुःखी है, दुर्बल है, आत्मा की इन्द्रियाँ हैं, आत्मा दुर्बल है, आत्मा कर्त्ता है आदि । क्यों ? केवल भ्रन्तिके वश होकर । यह भ्रान्ति सदासे चली आ रही है । भ्रान्ति माया है । मायाके ही बल रावणने सीताजीके आगे रामचन्द्रका सिर काटकर फेंका था । हरिवंशमें लिखा है कि, इन्द्रजाल वा मायाके ही द्वारा एक

युद्धमें श्रीकृष्णको धोखा दिया गया था । इस विद्यामें शम्बर असुर प्रवीण था; इसलिये पुराणोंमें इस विद्याका नाम 'शम्बर-विद्या' भी है । इसी प्रकार तालियाँ पीटकर कौवे बुला देना, आँखें मलनेपर दो चन्द्रमा देखना, सूर्यकिरणोंमें मरीचिका, सीपमें चाँदी, रस्सीमें सर्प आदि देखना भ्रान्ति-जन्य हैं । भ्रान्ति और माया अज्ञानमयी है और अज्ञान वा माया अनादि है । इसीके कारण जन्म-मरण है, देहात्मवाद है और सारा प्रपञ्च है । जैसे प्रकाशके सामने अन्धकार विनष्ट हो जाता है, वैसे हो परमार्थ-ज्ञानके सामने माया विनष्ट हो जाती है । अद्वैतवादका कहना है कि, जैसे स्वप्न-कालकी देखी वस्तुएँ वस्तुतः भ्रम हैं, वैसे ही जाग्रदवस्थाकी देखी वस्तुएँ भी वस्तुतः भ्रम हैं । द्वैतवादी कहते हैं कि, स्वप्नका आधार सत्य है, वैसे ही जाग्रदवस्थाका आधार भी सत्य है । इसपर अद्वैतवादी कहते हैं कि, दोनोंका आधार माया है और माया अनादि होते हुए भी, परमार्थ-ज्ञानीके लिये, सान्त है; विनाशी है । अज्ञान-रूपिणी माया नित्य नहीं हो सकती; क्योंकि, उसके नित्य होनेके अर्थ हैं कभी भी मोक्ष नहीं होना और कभी भी पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्तिका न मिलना । इसके सिवा ईश्वर और माया, दोनोंके नित्य होनेसे दोनोंकी सीमा दोनोंसे बँध जानेके कारण दोनों

ही विनाशशील हो जायँगे। ऐसा होनेसे दोनोंका विलोप (जड़-चेतनका अत्यन्त अभाव) कभीका हो गया होता। ऐसा नहीं हुआ है; इसलिये मानना पड़ता है कि, वस्तुतः एक सच्चिदानन्दमय ईश्वर नामक पदार्थ वा ब्रह्म नित्य है और ईश्वरसे भिन्न पदार्थ वस्तुतः मिथ्या हैं।

फलतः निष्कर्ष यह निकला कि, आत्म-गौरवकी ज्वलन्त प्रतिमा अद्वैतवाद हमारी चिर शान्तिका सबसे बड़ा उपाय और ईश्वर-सिद्धिका सबसे बड़ा साधन है। जब कि, ईश्वरके सिवा किसीकी नित्य सत्ता ही नहीं, तब ईश्वर स्वतः सिद्ध है।



विज्ञान और वेदान्तका "सच्चिदानन्द"

वेदान्त और शङ्कराचार्य आदि ब्रह्मको सत्, चित् और आनन्दका रूप मानते हैं। इनके मतसे ईश्वर वा ब्रह्म सत्ता-स्वरूप, ज्ञानमय और आनन्दात्मक है। शङ्कराचार्यने प्रबल तर्कों, अखण्डनीय युक्तियों और वेदादिके वचनोंसे ब्रह्मको सच्चिदानन्द सिद्ध किया है।

प्रसन्नताकी बात है कि, "सत्यके निकटतम प्रदेश"में पहुँचनेकी चेष्टा करनेवाले विज्ञान, पदार्थ-विज्ञान वा सायंसके प्रयोगों और निरीक्षणोंसे भी "सच्चिदानन्द" ब्रह्मका आभास दिखाई दे रहा है। सम्भव है, इस दिशामें विज्ञान और भी आगे कदम उठावे और ईश्वरकी दयालुता, अवतरण, कर्मफलदातृत्व, शासकता आदिकी भी सिद्धि करने लगे। जो हो, आज हमें यही देखना है कि, ब्रह्मके स्वरूप-लक्षण वा "सच्चिदानन्दमय"को विज्ञानने क्योंकर सिद्ध किया है।

पृथिवीके प्रायः सभी वैज्ञानिक इस बातसे सहमत हैं कि, सारे ब्रह्माण्डोंका मूल एक है, जिसे 'ईथर' कहते हैं और जो नित्य है। ईथरको आकाश-तत्त्व कहा जाता है, परन्तु वैसा तत्त्व नहीं, जिसे शून्य कहा जाता है। यह कूटस्थ वा मूल सत्ता कहा जाता है। ईथरके दो भँवर (Whirlpools) हैं, जिन्हें ऋणविद्युत् (एलेक्ट्रन) और धनविद्युत् (प्रोटोन) कहा जाता है। इन्हीं दोनों (घूमनेवाले एलेक्ट्रन और केन्द्र

प्रोटोन) तत्त्वोंके समवायका नाम परमाणु है—परमाणु कोई अन्य अविभाज्य पदार्थ नहीं हैं। वैज्ञानिकोंने पहले जिन बानबे तत्त्वोंका पता लगाया था, उनके मूल भो उक्त दोनों तत्त्व ही हैं। आकाशके नक्षत्र आदि भी इन्हीं दोनों तत्त्वोंसे बने हैं। प्रकाश, उष्णता आदि विविध शक्तियाँ भी इन्हींके रूपान्तर हैं। रसायनशास्त्रके वे छियासी तत्त्व भी इन्हींसे बने हैं, जो पृथिवी और पृथिवीके सारे जड़ और "जीवित द्रव्यों"के उपादान हैं। मुख्य बात यह समझिये कि, समस्त विश्व और उसकी शक्तियोंका मूल कारण वह एक ईथर ही है, जो सत्ता-रूप है, शून्य नहीं; क्योंकि शून्यसे, असत्से वा अभावसे द्रव्य, सत्ता वा भावकी सृष्टिका होना असम्भव है। गीताका "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" वचन और सांख्यका सत्कार्यवाद भी इसी सिद्धान्तका समर्थन करते हैं। इस प्रकार एक अविनाशी और शाश्वत सत्को विज्ञान स्वीकार करता है।

अब चित्की बात सुनिये। प्रयोजन-मूलक प्रमाण (Teleological proof) पर ध्यान देनेसे मालूम पड़ता है कि, इस ब्रह्माण्डका जितना कर्म है, वह सब किसी एक प्रयोजनको लेकर हो रहा है और उसी प्रयोजनको लेकर सृष्टि बढ़ी चली जा रही है। यह उद्देश्य किसी विवेकी चेतनमें ही सम्भव है, विचार-विहीन जड़में नहीं; इसलिये चित्का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह नित्य है; क्योंकि इसे अपने

जन्म और मरणका पता नहीं है।

मैं चेतन हूं, ऐसा प्रवाह कभी नहीं टूटता। जाग्रदव-स्थामें चेतनके द्वारा ही सब अनुभव होते हैं, स्वप्नावस्थामें भी स्वप्नका अनुभव चेतनको होता है और सुषुप्ति (स्वप्न-शून्य निद्रा) में भी चेतनका अनुभव रहता है; क्योंकि जागने-पर वह कहता है कि, "मैं सुखसे सोया।" क्लोरोफार्मकी बेहोशीमें भी चेतन है; क्योंकि इस अवस्थामें भी हलचल (Reflex actions) रहती है। वैज्ञानिकोंके द्वारा सुषुम्ना काट-कर मेढ़कके मस्तिष्कको उसके शरीरकी शिराओंसे भिन्न कर देनेपर भी उसके किसी अङ्गमें तेजाब लगानेपर उसका हाथ उस तेजाबको जगहको रगड़ने लगता है। इससे सिद्ध होता है कि, उस मेढ़कके हलचल करनेवाले अङ्गमे चेतन-शक्ति है।

यह चित् मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सबमें है। सर जग-दीशचन्द्र वसुने वृक्षों और धातुओंमें भी चेतन-शक्ति वा चैतन्य माना है। अन्य जड़ पदार्थोंमें भी चैतन्य है। सर वसुने अपने "Artificial retina" नामके ग्रन्थमें प्रमा-णित किया है कि, नेत्र-शक्ति (ज्ञानेन्द्रिय-शक्ति) जड़ पदा-र्थोंमें भी है। जीवित नेत्रोंमें विविध शक्तियों (प्रकाश, उष्णता आदि) से जो विकार होते हैं, वे ही विकार वसु महोदयके बनाये हुए कृत्रिम नेत्रोंमें भी होते हैं। असल बात तो यह है कि, जबतक जड़में चैतन्य नहीं

रहेगा, तबतक चित्को जड़का ज्ञान ही नहीं होगा; क्योंकि भिन्न-भिन्न सत्ताओंमें किसी प्रकारका भी मेल-मिलाप नहीं हो सकता—मेल-मिलापके लिये उनमें समानता आवश्यक है। इधर हमें जड़-जगत्का अनुभव होता है, हम ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा बाह्य पदार्थोंको अपनी चित्-शक्तिमें लाते हैं। इससे मालूम होता है कि, बाह्य पदार्थोंमें वा जड़ मात्रमें हमारी चित्-शक्तिसे मेल करनेवाला चैतन्य अवश्य है।

बुद्धि, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्राओं और मन आदि एकादश इन्द्रियोंसे सूक्ष्म देह बनती है। यह संस्कारों और इन्द्रियोंका अड्डा है। मृत्युके अनन्तर इसी सूक्ष्म देहके साथ चेतन-शक्ति अन्य स्थूल देहमें चली जाती है—स्थूल-देहके विनाशके साथ चैतन्यका विनाश नहीं होता। अखबारोंमें जो हमें बराबर पढ़नेको मिलता है कि, अमुक बालकने अपने पूर्व जन्मकी अमुक बात बतायी, बरेलीके जगदीशचन्द्रने अपने प्रथम जन्मकी सारी कथा सुनायी वा दिल्लीकी शान्ति कुमारीने अपने पहले जन्मका सच्चा-सच्चा वर्णन किया, वह सब चैतनकी नित्यता सिद्ध करते हैं।

यहाँ दो सन्देह उठ सकते हैं। पहला यह कि, यदि जड़मात्रमें चेतनशक्ति है, तो 'मृत'का क्या तात्पर्य है? इसका उत्तर वैज्ञानिक यह देते हैं कि, मृतक

देहमें भी चैतन्य है, इन्द्रिय-शक्ति भी है; परन्तु उसमें जीवन-तत्त्व (Protoplasm)की वह दशा नहीं है, ताकि उसमें जीवन-चिन्ह दिखाई पड़े । बिजलीके सर्व-व्यापक होनेपर भी जैसे बिगड़े हुए बल्ब वा बिजलीके लट्टूमें बिजलीका प्रकाश नहीं होता, वैसे ही मृत शरीरमें चित् और इन्द्रिय-शक्ति रहनेपर भी, जीवन-तत्त्वके बिगड़ जानेपर, वे अपनेको मृतक देहमें प्रकट नहीं कर सकते ।

दूसरा सन्देह यह होता है कि, यदि मृतक शरीरमें सब कुछ रहता ही है, तो फिर उसमेंसे निकलकर चेतन आदि कैसे चले गये ? इसका उत्तर यह है कि, सर्वव्यापक चेतनमें अहंभावके कारण वैयक्तिकता आ जाती है और इसीके कारण सूक्ष्म देह निकम्मी स्थूल देहको छोड़कर दूसरी स्थूल देहमें चली जाती है । केवल अहं-भावके ही कारण प्रत्येक शरीरमें रहनेवाला चित् अप-नेको परिमित व्यक्ति समझने लगता है—यह बात खास ध्यान देनेकी है । यदि विज्ञान मृतक स्थूल देहको जीवित कर सके, तो सूक्ष्म देह बाहर जाकर भी मृतक शरीरमें वापस चली आवेगी और पूर्ववत् संस्कारोंवाला मनुष्य पुनः उठ बैठेगा । विज्ञानमें तो नहीं; परन्तु योगमें यह शक्ति विद्यमान है । फलतः चेतना सर्वव्यापक और नित्य है ।

कारबन, आक्सीजन, हाईड्रोजन, नाइट्रोजन, सलफर और फास्फरस आदि पदार्थोंका विचित्र संमिश्रण प्रोटा-प्लाज्म वा कललरस (जीवनतत्त्व) है—यह सब जानते हुए भी वैज्ञानिक जीव-सृष्टि नहीं कर सकते; चेतना लानेकी उनमें क्षमता नहीं है। इसके सिवा विना द्रष्टा (चेतन)के दृश्य (जड़) का ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये जिस समय कललरसकी, चेतनाके साथ, उत्पत्ति हुई, उस समय भी एक चेतन-शक्तिकी जरूरत थी; नहीं तो कललरसका ज्ञान ही नहीं होता। यह कहा जा सकता है कि, कललरसकी रचनाका अनुमान किया जा सकता है; परन्तु यह ठीक नहीं; क्योंकि एक बार किसी पदार्थके चेतनके द्वारा प्रत्यक्ष होनेपर ही उसका अनुमान किया जा सकता है। फलतः चेतन नित्य है।

कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि, जैसे सर्व-व्यापक विद्युत्-शक्तिको बल्बके द्वारा प्रकट किया जाता है, वैसे ही सर्व-व्यापक चैतन्यको देहमें प्रकट किया जा सकता है, जीवन-तत्त्वका निर्माण किया जा सकता है और ताजे मुर्देको उठाकर बैठाया जा सकता है। इस तरहकी चिन्तामें इन दिनों बड़े-बड़े वैज्ञानिक लगे हुए हैं। परन्तु कुछ वैज्ञानिक इस बातको असम्भव समझ कर योगकी शरणमें जा रहे हैं। जो हो; किन्तु इन दोनों तरहके वैज्ञानिक चेतनको नित्य और व्यापक मानते हैं और कुछ तो जड़को चेतनमय

मानकर "वैज्ञानिक अद्वैतवाद" भी सिद्ध करते हैं।

कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि, दिन, पक्ष, मास, ऋतु आदिकी नियमित क्रियाएँ बुद्धि-पूर्वक हुई हैं और जड़ ईथरमें बुद्धि नहीं; इसलिये वह सृष्टि-रचना नहीं कर सकता। सृष्टि-रचना करनेवाला चेतन है, जो नित्य है और बहुत सम्भव है कि, चेतन ही मुख्य हो।

सर जगदीशचन्द्र वसुका मत है कि, विभिन्न आकारके जीवोंमें यन्त्रके द्वारा प्रतिघात (Impact) करनेसे उस यन्त्रके द्वारा उसका जो लेखके आकारका प्रतिफल होता है, वह एक ही प्रकारका होता है; इसलिये सभी चेतन एक और स्वतन्त्र हैं।

पाठकोंको ध्यान देना चाहिये कि, सत् और चित्‌के सम्बन्धमें आधुनिक वैज्ञानिक इतनी दूरतक "सत्यके निकटतम प्रदेश"में पहुंचे हैं। आनन्दके सम्बन्धमें उनका जो मत है, उसे भी अब सुन लीजिये।

यदि संसारमें केवल दुःख रहे, आनन्दका नाम नहीं रहे, तो जीवन भार हो जाय और प्राणी आत्म-हत्या कर बैठे। इसीलिये महादुःखमें भी आनन्द मिला रहता है। तत्त्वज्ञानके अनन्तर आनन्द ही रह जाता है। मनुष्यकी स्वाभाविक इच्छा आनन्दमय बननेकी है। अपने भीतर दृष्टि करनेसे बड़ा आनन्द मिलता है। विषय-भोग भी आनन्दके लिये ही किया जाता है। और तो क्या, मनुष्य सारे

कर्म दुःख-निवृत्ति और आनन्द-प्राप्तिके लिये ही करता है। इन सब बातोंसे मालूम पड़ता है कि, आत्माका स्वभाव ही आनन्दमय है; इसीलिये वह दुःख, अहंकार आदिके पर्देको हटा कर आनन्दमें ही विलीन रहनेकी चेष्टामें निरत है।

आनन्दकी साधना और अभिव्यक्ति संगीत है। सूक्ष्म निरीक्षणसे मालूम हुआ है कि, प्रत्येक प्राणी संगीत गाता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर वेङ्कट रमणने तो यहाँतक सिद्ध किया है कि, सारे द्रव पदार्थ (Liquids) राग-रागिनी गाते हैं। द्रवोंकी संगीत-धारा अप्रतिहत है। ऊंची ध्वनि होनेके कारण मनुष्य उस आनन्दधारामें अवगाहन नहीं कर सकते थे; इसलिये रमण महोदयने यन्त्रोंके द्वारा उस ध्वनिको इतना नीचे उतार दिया है कि, अब कोई भी मनुष्य उस लहरीमें गोते लगा सकता है। विविध द्रवोंकी विभिन्न राग-रागिनियाँ हैं और प्रायः उन सबको पयानो आदि वाद्य-यन्त्रोंके साथ मिलाकर डा० रमणने संगीत-सम्मेलनसा कर दिया है।

प्रत्येक मनुष्य वा जीवमें कुछ न कुछ आनन्द रहता है—पूर्ण नहीं; इसलिये मालूम पड़ता है कि, एक ऐसी पूर्ण आनन्द-सत्ता है, जिसका कुछ-कुछ अंश सबको मिला है। स्वामी रामतीर्थने एक बार कहा था कि, चापलूसी करनेसे जीवको आनन्द मिलता है; क्योंकि चापलूसीसे उसे अपने आनन्द-रूपकी याद हो आती है।

इन सब बातोंसे मालूम पड़ता कि, सत् (Existence) और चित् (Consciousness) की ही तरह एक अखण्ड आनन्द सत्ता (Bliss) है, जो सनातन और एकरस है। असल बात तो यह है कि, जो सत्ता (सत्) नित्य है, वह अज्ञानमयी होकर अथवा ज्ञानसे शून्य होकर और दुःखिनी होकर नित्य नहीं हो सकती; क्योंकि अज्ञानी और दुःखीका बराबर ही विनाश होते देखा गया है। इसीसे वेदान्तने ब्रह्मको सच्चिदानन्द माना है और सत्, चित् तथा आनन्दको एक ही कहा है। अनेक पदार्थोंके नित्य माननेसे एकसे दूसरेकी सीमा बँध जायगी और ससीम पदार्थ कभी नित्य नहीं हो सकते। जो तत्त्व अखण्ड, असीम, अपरिछिन्न और एकरस नहीं है, वह नित्य नहीं हो सकता। इसीलिये वेदान्तने अद्वैतवाद वा एक ही ब्रह्म-तत्त्व माना है, जिसके सत्, चित् और आनन्द स्वरूप लक्षण कहे गये हैं। इधर वैज्ञानिक सत्, चित् और आनन्दको अविनाशी मानते हुए भी तीनोंको पृथक्-पृथक् मानते हैं—अबतक सबकी एकरूपता नहीं सिद्ध कर सके हैं। दार्शनिक भित्ति और अपने अनुमानपर कुछ वैज्ञानिक तीनोंकी एकरूपता मानते हैं और कुछ, सम्भव हैं, आगे चलकर वेदान्तीय एकरूपता मानने लगें वा सिद्ध कर डालें।

विज्ञानकी बारीक बातोंमें ईश्वर

"On the Nature of the Physical world" (1928) मे प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिंगटन साहबने कहा था—"कोई अज्ञात कारण किसी अज्ञात क्रिया-कलापमें प्रवृत्त है और हम इस भौतिक जगत्के परेके पदार्थके विषयमें कुछ भी नहीं कह सकते ।" अध्यात्मवादके सम्बन्धमे अधिकांश वैज्ञानिकोंकी कुछ ऐसी ही सम्मति है । इस सम्बन्धमें वे 'अज्ञात', 'अज्ञेय', 'सन्दिग्ध' आदि शब्दोंका ही प्रयोग किया करते हैं । असल बात यों है कि, अध्यात्मवाद विज्ञानके दायरेके बाहर है और विज्ञानकी खोजें भी अभी अधूरी हैं—यह बात हम पहले भी लिख चुके हैं । जिन सर आलिवर लाज सर विलियम क्रुक, स्व० सर आयानन, स्व० मि० स्टेड, मि० मायर आदि विज्ञान-प्रेमियोंने दर्शनशास्त्र और अध्यात्म-विद्याकी सरणि पकड़ी है, वे इस दिशामें कुछ कृत-कार्य भी हुए हैं; परन्तु जिन्होंने विशुद्ध जड़वादकी कोटिका आश्रय लिया है, वे आध्यात्मिक विषयोंसे कोसों दूर रह गये हैं । आगेकी पङ्क्तियोंमें, उदाहरणके साथ, इन बातोंका स्पष्टीकरण पढ़िये ।

वैज्ञानिकोंके जो भौतिकविज्ञान, प्राणिविज्ञान और मनोविज्ञान नामके तीन बड़े शास्त्र हैं, उनमें प्रकृति, चेतन

और मनका स्वरूप हमलोगोंसे छिपा हुआ है। गुप्त मन (Subconscious Mind) की शक्तियोंका बिलकुल अधूरा ही ज्ञान हो पाया है। जिज्ञासुओंको विज्ञानसे पता नहीं मिलता कि, क्योंकर प्राकृतिक मन जड़-चेतनकी सन्धियोंको नियन्त्रित कर रहा है। प्राणि-विज्ञानके मतानुसार चैतन्यका अन्तिम रूप Cell (जीविताणु) है; परन्तु यह उसे पता नहीं कि, सेलमें जीवनका स्रोत क्या है ? यह माना कि, सेलके केन्द्रमें उसका चैतन्य है; परन्तु उसका मूल कारण और उत्पत्ति-रहस्य क्या है, इसका पता प्राणि-विज्ञान कुछ भी नहीं बताता। क्या पहले चेतनका एकदम अभाव था और परमाणुओंका मेल होते ही, एकाएक, जड़से चेतनकी उत्पत्ति हो गयी ? परन्तु जड़से चेतनकी उत्पत्ति मानना वैसा ही है, जैसा यह मानना कि, अन्धकारसे प्रकाशकी उत्पत्ति होती है, अन्धकार जनक है और प्रकाश जन्य! सर आलिवर लाजने अपनी "Beyond Physics" नामकी पुस्तकमे और मैकडूगल साहबने अपनी "Modern Materialism and Emergent evolution" नामक पुस्तकमें यह बात मानी है कि, अव्यक्त रूपमे चेतनकी प्रथम ही विद्यमानता माने बिना सेलके केन्द्रमे एकाएक चैतन्यका विकास समझमें नहीं आता। लायड मार्गनकी भी कुछ ऐसी ही दलील है। किन्तु इन तीनों पुरुषोंकी दृष्टि कुछ दार्शनिक भी थी।

पृथिवी कब बनी? इस सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंके कितने ही मत थे। परन्तु अब यूरेनियम, रेडियम आदिकी खोजोंसे वैज्ञानिकोंने पृथिवीकी आयु दो अरब वर्षोंकी मानी है। किन्तु हमारे पञ्चाङ्गोंमें जो सृष्टि-रचना एक अरब सत्तानबे करोड़ वर्षोंकी लिखी है, उसे, इन खोजोंके पहले, वैज्ञानिक उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते थे!

अब वैज्ञानिक यह भी मानने लगे हैं कि, अखिल ब्रह्माण्ड-की अपेक्षा हमारी यह पृथिवी एक कणके बराबर भी नहीं है। परन्तु इसके पहले जब हम कहते थे कि,—"अस्य ब्रह्मणः समन्ततः स्थितानि अनन्त-कोटिब्रह्माण्डानि समुज्ज्वलन्ति," तब वैज्ञानिक मजाकको हँसी हँस दिया करते थे!

वैज्ञानिक कहते हैं कि, शक्तिका प्रवाह निम्नमुख है—प्रलयकी ओर है। किसी एक चीजमें पाँच हजार डिग्री सेंटीग्रेडकी गर्मी है और दूसरीमें दो हजारकी, तो तापका प्रवाह पहलीसे दूसरीमें तबतक होता रहेगा, जब तक दोनोंमें शक्तिकी समता न आ जाय। ब्रह्माण्डमें सूर्यकी तरह अनेक शक्ति-केन्द्र हैं, जिनकी शक्ति आकाशमें सतत विशीर्ण हो रही है। क्यों? वही शक्तिके सम-वितरणके लिये। विज्ञान-वादियोंका मत है कि, यह प्रवाह जारी रहेगा और एक न एक दिन सारी प्रकृति, शक्ति बनकर, आकाशमें फैल जायगी—सारे कार्य बन्द हो जायँगे—महाप्रलय उपस्थित हो जायगा! इसके अनन्तर?

इसके अनन्तर विज्ञानके मतसे फिर सृष्टि होनेका कोई उपाय नहीं है—सदा महाप्रलय बना रहेगा ! (इस बातको भी सांख्य-कर्त्ता महर्षि कपिलने हजारों वर्ष पहले ही कहा था ।) इसे ही उन्होंने साम्यावस्था (प्रकृति) कहा है । यद्यपि डा० जीन्स आदिका मत है (और ठीक मत है) कि, विश्वके बाहर किसी कारणको हमें पुनः सृष्टिका कारण मान लेना चाहिये । परन्तु इसके लिये कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है ।

परन्तु ऋग्वेद (१०।१०।३) कहता है कि--

"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरीक्षमथो स्वः ॥"

अर्थात् पूर्व कालके अनुसार ही ईश्वरने सूर्य, चन्द्रमा, सुखकर स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरीक्षको बनाया ।

मतलब यह हुआ कि, सृष्टि और प्रलय नैसर्गिक-प्रवाह-गत और परस्परापेक्षी क्रम हैं, जिन्हें ईश्वर चलाते हैं । पूर्व सृष्टिमें जैसे सूर्य आदि शक्ति-केन्द्र थे, वैसे ही महाप्रलयानन्तर भी चेतन-शक्ति (ईश्वर) के द्वारा ये स्वस्थानोंमें अवस्थित किये जाते हैं । इन शक्ति-केन्द्रोंके द्वारा ही सृष्टि-प्रवाह चलता है ।

पाठक पढ़ चुके हैं कि, ऋण-विद्युत् (Electron) और धन-विद्युत् (Proton) से ही सारा विश्व बना

है—प्रकृति और शक्ति (Matter and Energy) इन्हीं दोनोंसे प्रसूत हैं। सभी इन्हीं दोनों विद्युतोंसे बने हैं—केवल ऋण-विद्युत्के संख्या-भेदके कारण पदार्थ-नानात्व है। परमाणु विद्युद्रूप हैं—विद्युत् केवल ऋण-धनात्मक प्रकाश हैं।

विज्ञान-वेत्ताओंका यह सिद्धान्त था कि, प्रकृति अखण्ड है और इसी अखण्डताके कारण शक्ति एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुंचती है—आगकी गर्मी लोहेमें जाती है। परन्तु इधर जो कैंटम थ्योरी (Quantum Theory) निकली है, उसने यह सिद्ध किया है कि, प्रकृतिकी अखण्डता (Continuity) ठीक नहीं है; क्योंकि शक्ति मेढ़ककी चालसे कैंटा (छोटे-छोटे बंडलों) में स्थानान्तर होती है। तात्पर्य यह कि, जैसे प्रकृतिके कण परमाणु हैं, वैसे ही शक्तिके कण भी परमाणु हैं। तो क्या जड़ परमाणु ही चेतनका कार्य करते हैं? इसी समस्याको हल करनेके लिये शायद दार्शनिक-शिरोमणि ह्वाइट हेड साहबने परमाणुको चैतन्य धर्मवाला मान लिया है। जो हो; परन्तु इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, वैज्ञानिकोंको न तो शक्तिके ठीक रूपका ज्ञान हो पाया है, न उन्हें प्रकृति और शक्तिके सम्बन्धका ही। इस सम्बन्धमें उनका सिद्धान्त एकदम अस्थिर है। तब हम क्यों नहीं मान लें कि, "शक्तिरस्त्यैश्वरी काचित् सर्व-शक्ति-नियामिका" (ऐसी एक ईश्वरी शक्ति

है, जो एकरस है, अखण्ड है और सारी शक्तियोंका नियत संचालन करती है) ?

विज्ञानकी एक और बारीक बात भी सुन लीजिये। विज्ञान-विद् विश्व-केन्द्र, मध्याकर्षण-शक्ति, लम्बाई, वजन आदिकी कल्पनाओंमें न्यूटन साहबके हालतक शिष्य बने हुए थे। परन्तु वर्त्तमान यहूदी वैज्ञानिक डा० एलबर्ट आइन-स्टाइनने, एक अभिनव कल्पना करके, इन सब कल्पनाओंको निकम्मी बना डाला है। आइनस्टाइनके सिद्धान्तका नाम है अपेक्षावाद वा सापेक्षवाद (Relativity)। इसके बलपर उन्होंने कल्पना की है कि, उक्त सब कल्पनाएँ देश-कालसे सापेक्ष हैं। अपेक्षावादके अनुसार विश्वका केन्द्र सर्वत्र है। हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति विश्वकी नाभिपर है, जिसका अपना-अपना देश-काल चौखटा है! इस पञ्जरमें वह जड़ा हुआसा है। आइनस्टाइनके सिद्धान्तानुसार देशकाल विनत (Curved) हैं और जहाँ पदार्थ सबसे अधिक है, वहाँ विनति वा झुकाव (Curvature) सबसे अधिक है। जिस पथसे सूर्यकी चारों ओर पृथिवी घूमा करती है, उसका कारण न्यूटनवाला आकर्षण-नियम नहीं है, बल्कि आकाशमें पृथिवीके लिये उस पथके सिवा दूसरा कोई पथ ही नहीं है। सूर्य-कृत विनति और निज प्राकृत-पदार्थ-कृत विनतिके वशमें होकर पृथिवीको उस पथसे जाना ही पड़ता है। आइनस्टाइनका मत है कि, इस धरित्रीपर जो चीज एक गज लम्बी है, वही

फी सेकंड डेढ़ लाख मीलकी गतिसे चलनेपर आध गज रह जायगी और एक लाख छियासी हजार मील गतिसे चलनेपर तो उसमें कुछ भी लम्बाई वा वजन नहीं रह जायगा!

कहा जाता है कि, आइनस्टाइनके इस अपेक्षावादको समझनेवाले संसारमें "बारह" ही व्यक्ति हैं! वास्तवमें साङ्गोपाङ्ग अपेक्षावाद समझनेके लिये गणितशास्त्रके ऊंचे ज्ञानकी आवश्यकता है। गणितका ऐसा ज्ञान हमें नहीं है; इसलिये ब्रह्माण्डके समस्त चराचरके सम्बन्धमें जो आइन-स्टाइनके विचार हैं, उन्हें याथातथ्य रूपमें समझ लेना हमारे लिये जरा टेढ़ी खीर है। आइनस्टाइनकी कल्पनाएँ इतनी क्लिष्ट हैं कि, उन्हें बखूबी समझकर पचा लेना और साधारण पाठकोंके विचारमें उन्हें उतार देना एक बड़े मनीषीका काम है। हाँ, कई विषयोंके सम्बन्धमें ऊपर जो हम आइनस्टाइनका मत लिख आये हैं, उससे हमारी धारणा-का कुछ आभास पाठकोंको मिल सकता है। यहाँ हम इस वादकी कुछ मूल और मुख्य बातोंको लिखेंगे। इसे हमारे पाठक भी रुचिकर समझेंगे।

आइनस्टाइनका पहला नियम है कि, "निरपेक्षता एक असम्भव कल्पना है; न गति निरपेक्ष है, न समय निरपेक्ष है, न आकाश निरपेक्ष है।" आइनस्टाइनने सबसे पहले इस सिद्धान्तको स्थिर किया कि, कोई ज्ञान निरपेक्ष नहीं हो

सकता; संसारकी निखिल वस्तुओंका ज्ञान और माप किसी अन्य वस्तुकी अपेक्षासे ही हो सकता है। मान लीजिये कि, सारे आकाशमें एक गोलक स्थिर हैं, सभी ग्रह विनष्ट हो गये हैं, तो उस गोलककी गति वा स्थिरताका ज्ञान होना असम्भव है, चाहे वह प्रतिपल एक लाख मीलके वेग से चल रहा हो, चाहे दो लाख मीलके वेगसे; क्योंकि किसी दूसरी वस्तुसे उसका फासला घट-बढ़ नहीं रहा है। इसके अनन्तर आकाशमें दूसरे गोलकके आनेकी कल्पना कीजिये। इन दोनों गोलकोंमें भी यदि सतत समान देशान्तर रहता है, तो हम नहीं जान सकते कि, दोनों समान गतिसे एक ओरको जा रहे हैं वा स्थिर हैं; क्योंकि दोनों ही अवस्था-ओंमें समान व्यवधान रहेगा। यदि दोनों गोलकोंमें प्रतिपल १० मीलके हिसाबसे फासला बढ़ रहा हो, तो भी हमें इस १० मील प्रतिपलकी सापेक्ष गतिके अतिरिक्त किसी भी साधनसे किसी वास्तव गतिका ज्ञान नहीं हो सकता, चाहे एक १०० मील और दूसरा ११० या ६० मीलके वेगसे चल रहा हो, चाहे एक ५५० और दूसरा ५६० या ५४० मीलके वेगसे चल रहा हो अथवा एक स्थिर हो और दूसरा १० मीलके वेगसे चल रहा हो या दोनों विपरीत दिशाओंमें ५—५ मीलके वेगसे चल रहे हों। इन सारी अवस्थाओंमें हमें उनकी प्रतिपल १० मील सापेक्ष गतिका ही ज्ञान होगा। इसी प्रकार दोसे तीन, तीनसे चार और बढ़ते-बढ़ते वर्त्त-

मान सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, नक्षत्र आदि गोलकोंकी कल्पना हम कर सकते हैं। हाँ, इनमेंसे किसीको स्थिर मानकर हम अन्यकी सापेक्ष गतियोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु देशमें निरपेक्ष गतिका ज्ञान हम किसी भी साधनके द्वारा नहीं प्राप्त कर सकते।

कदाचित् हमारे पाठकोंके ध्यानमे सापेक्षवादका सिद्धान्त आ गया होगा। इसे जरा और सरलतासे ध्यानमें लाइये। एक आदमीको एक वस्तुके खट्टी होनेका ज्ञान होता है और दूसरेको उसी वस्तुके मीठी होनेका, एक मनुष्यको तोपकी आवाज सुनाई देती है और दूसरेको नहीं। तत्त्ववादियों और वास्तविकतावादियोंमें यहाँ विवाद होगा कि, वह वस्तु खट्टी है या मीठी और वस्तुतः शब्द हुआ या नहीं? यहाँ अपेक्षावाद कहता है कि, एकके लिये खट्टी होना और शब्दका होना उतना ही सत्य है, जितना दूसरेके लिये मीठी होना और शब्दका न होना सत्य है। वस्तुतः यह सत्य है या वह, इसका निर्णय ज्ञाता और बाह्य जगत्‌की अपेक्षासे ही हो सकता है। इसी प्रकार संसारके किसी भी विषय वा वस्तुका ज्ञान केवल आपेक्षिक है, निरपेक्ष नहीं, वस्तुतः नहीं। हमारे अनेक दार्शनिक ग्रन्थोंमें भी इस अपेक्षावादको समझाया गया है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये। तूफानमें कोई पेड़ उखड़ कर गिर जाय और वहाँ कोई सुननेवाले न हो, तो

वस्तुतः शब्द हुआ या नहीं ?

यहाँ तत्त्ववादी कहेगा कि, शब्द नहीं हुआ और वास्तविकतावादी कहेगा कि, शब्द हुआ। अपेक्षावादी कहेगा कि, यदि पेड़ गिरनेके समय सुननेवाला था, तो शब्द हुआ और यदि नहीं था, तो शब्द नहीं हुआ। यदि सुननेवाला हो और पेड़ न गिरे, तो भी शब्द नहीं होगा और यदि पेड़ गिरे और सुननेवाला नहीं हो, तो भी शब्द नहीं होगा। मतलब यह कि, शब्दका होना सुननेवाले (ज्ञाता) और बाह्य जगत्की अपेक्षापर निर्भर है। सुननेवालेकी अनुपस्थितिमें रस्सी आदिमे बाँध कर इस तरह भी पेड़ गिराया जा सकता है कि, शब्द ही न हो। इस दशामे पेड़के पतनमें शब्दका अनुमान कर लेना दोषदुष्ट हो जायगा। इसीलिये अपेक्षावादी यहाँ अपने मतको ही प्रबलतम मानता है।

हमारे विचारसे इस सिद्धान्तमें कुछ दार्शनिक विचारसे हैं और इनसे ईश्वर-सिद्धि भी हो जाती है। वस्तुतः सारा जड़-जगत् दृश्य है और द्रष्टा वा ज्ञाता चेतन है। द्रष्टाकी अपेक्षासे ही दृश्यका अस्तित्व हो सकता है; इसलिये सभी दशाओंमें द्रष्टा, चेतन वा ईश्वरका मानना आवश्यक है। वैज्ञानिकोंके मतसे दृश्य नित्य है; इसलिये द्रष्टा ईश्वर भी नित्य है। अनेक अपेक्षावादी ईश्वरको नित्य मानते भी हैं। अपेक्षावादका

खण्डन करनेवाले सर आलिवर लाज आदिने तो ईश्वरको नित्य सत्य माना ही है ।

अध्यात्मवाद और वैज्ञानिक

सन् १९३२ ई०में लंडनकी "क्रिश्चियन एविडेंस सोसाइटी"ने वहाँकी विश्व-प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंकी संस्था "रायल सोसाइटी"के सभी फैलो लोगोंके पास एक प्रश्नावली लिख भेजी थी, जिसमें ये छ प्रश्न थे—

(१) क्या आपका ऐसा विचार है कि, आधुनिक युगमें उन्नत वैज्ञानिक विचार धार्मिक विश्वासमें सहायक हो सकते हैं ?

(२) क्या आप अध्यात्मक्षेत्रका अस्तित्व मानना उचित समझते हैं ?

(३) क्या आपको विश्वास है कि, मृत्युके पश्चात् नर-नारियोंके व्यक्तित्वका अस्तित्व रहता है ?

(४) क्या मनुष्य, कुछ अंशोंमें, अपने कर्मोंके लिये उत्तरदायी है ?

(५) क्या आपके विचारमें विकासवाद और सृष्टि-कर्त्तामें साथ-साथ विश्वास रखा जा सकता है ?

(६) क्या प्राकृतिक विज्ञान ईसाके बताये हुए ईश्वरके पौरुषेय स्वरूपका निषेध करता है ?

प्रश्नकर्त्ता ईसाई थे; इसलिये उन्होंने अपनी शैलीसे प्रश्न किये हैं। प्रश्न-कर्त्ताओंको आशा थी कि, संसारकी सबसे प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाके सभी सदस्योंके पाससे इन छहों प्रश्नोंके उत्तर पा लेनेपर अध्यात्मवादके प्रति विज्ञान और वैज्ञानिकोंका रुख साफ हो जायगा। परन्तु उनकी आशा पूरी फलवती नहीं हुई; बहुलांशमें अवश्य ही हुई; क्योंकि विश्व-प्रसिद्ध दो सौ वैज्ञानिकोंने इन प्रश्नोंके कुछ-न-कुछ उत्तर दिये। अध्यात्मक्षेत्रसे एकदम अलग रहनेवाले वैज्ञानिकोंसे इससे अधिक आशा की भी नहीं जा सकती थी। इसमें सन्देह नहीं कि, इनके उत्तरोंसे धर्मके प्रति विज्ञानकी धारणा बहुत कुछ स्पष्ट हो गयी है। इन सभी उत्तरोंका संग्रह करके मि० सी० एल० ड्राब्रिज एम० ए० ने "दी रेलीजन आफ सायंटिस्ट्स" नामकी १६० पृष्ठोंकी एक पुस्तक हा निकाल डाली है। इसका प्रकाशन लंडनके अर्नेस्ट बेन लिमिटेडने किया है और मूल्य २ शिलिंग छः पेंस है। इस पुस्तकके आधारपर ही इन उत्तरोंके सम्बन्धमें कुछ चर्चा यहाँ की जा रही है, जो हमारे पाठकोंको रुचिकर प्रतीत होगी।

पहले प्रश्नके उत्तरमें ६६ वैज्ञानिकोंने ऐसी भाषा और भावका प्रयोग किया, जो अस्पष्ट था, २७ व्यक्तियोंने निषेधात्मक उत्तर दिये और ७४ ने पक्षमें उत्तर दिये।

कुछ वैज्ञानिकोंके उत्तर सुनिये—

प्रोफेसर एलबर्ट हाइम—"धार्मिक विश्वासका अवश्य सत्य मानना चाहिये। विज्ञानकी उन्नतिसे हम सत्यके अधिक निकट पहुंच सकेंगे। अतः विज्ञान भावी धर्मका सहायक होगा। साधारण धार्मिक विश्वासमें विनम्रताका अभाव है और इसका निषेध करनेमें भी विनम्रताका अभाव है। मानव आत्माको इतनेसे सन्तुष्ट हो जाना चाहिये कि, वह निरपेक्ष अन्तिम समस्याओंको समझनेमें सर्वथा असमर्थ है।"

डा० फार—"मैं यह अवश्य मानता हूं कि आधुनिक वैज्ञानिक विचार धर्मके अवश्य परिपोषक हैं, परन्तु उस सङ्कीर्ण और सङ्कुचित धर्मके नहीं, जिसका कि, गिरजाघरोंमें प्रचार किया जाता है। वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें सत्य ही परम पवित्र वस्तु है; और, वे मानते हैं कि, सत्यकी सिद्धिके लिये प्रमाण होना चाहिये। इस प्रमाणको निष्पक्षताएं, निर्भय होकर, तर्ककी कसौटीपर चढ़ाना चाहिये। अतः वे किसी साम्प्रदायिकतामें ससीम रहना कभी नहीं चाहेंगे; परन्तु वे व्यर्थ विरोध भी नहीं करेंगे। यह सृष्टि इतनी विचित्र है कि, बहुत सम्भव है कि, अनेक बातें (जिनका अभी अनुसन्धान नहीं हुआ है) सत्य ही हों। सत्यकी जिज्ञासा ही वैज्ञानिकोंका लक्ष्य है; और, यही प्रत्येक उपयुक्त धर्मका भी लक्ष्य होना चाहिये।"

डा० ओटो स्टाप्फ—"आधुनिक वैज्ञानिक उन्नतिका जहाँ तक जड़वादके विरोधसे सम्बन्ध है, वहाँतक वह धार्मिक विश्वासोंकी सहायिका हैं।"

ग्लेब एनरेप—"हाँ, कमसे कम विरोधी नहीं हैं। विज्ञान सत्यकी खोज करना चाहता है। धर्मके अनुसार ब्रह्म सत्य है। अतः कोई कारण नहीं है कि, दोनोंकी उन्नति साथ-साथ न हो सके।"

सर एलफ्रेड ईविंग—"हाँ, इन विचारोंने विचारवान् जनताको मनवा दिया है कि, पुराने जड़वादके सिद्धान्त कितने निरर्थक थे। पुराने वैज्ञानिकोंमें जो गर्वीली कट्टरता पायी जाती थी, वह तो अब मर गयी।"

सर गिलबर्ट वाकर—"नहीं, बाइबिलमें उल्लिखित सृष्टि-रचना और धार्मिक विश्वासोंके तो विरोधी अवश्य हैं; पर धर्मके नहीं।"

डा० मैकोले—"हाँ; क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिक विचार विश्वकी भौतिकतामें सन्देह उत्पन्न करा रहे हैं।"

प्रो० चेटीक—"हाँ, आजकलके वैज्ञानिक विचारोंने पुराने जड़वादके विचारोंको हिला दिया है।"

डा० रौब—"मैं तो यह समझता हूं कि, विज्ञानने आधुनिक वैज्ञानिकों और धार्मिक उपदेशकों, दोनोंको उनकी अज्ञानताका परिचय करा दिया है।"

डा० फ्रीथ—"हाँ, विज्ञान आज अधिक उदार होता जा रहा है।"

डा० रैंडल—"कुछ तो अवश्य इससे घबरा उठते हैं; परन्तु दोनों साथ-साथ चल सकते हैं। मुझे तो यह मालूम होता है कि, ज्यों-ज्यों हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों यह विश्वास होता जाता है कि, इन धार्मिक विश्वासोंका मूल प्रचारक मस्तिष्क कितना भोंदू था; और, कुछ धार्मिक विश्वासोंमें तो बहुतसे बड़े ही औंधे भाव सम्मिलित हो गये हैं।"

मैलोर—"मैं दोनोंमें कोई सम्बन्ध नहीं देखता। मैं धर्म-विज्ञान-संघर्षको समस्याको ही नहीं मानता।"

ली वेट्लियर—"न सहायक, न विरोधी।"

सबातिये—"धर्म और विज्ञान, दोनोंका क्षेत्र अलग-अलग है। किसीको दूसरेमें बाधा नहीं डालनी चाहिये।"

इन सारी सम्मतियोंका निष्कर्ष इस प्रकार निकलता है—

(१) उदार धर्म और धार्मिक विचार सत्य हैं। उनका विज्ञानसे कोई विरोध नहीं है; बल्कि विज्ञान उनका सहायक है।

(२) बाइबिल वा किसी धर्म-ग्रन्थके किसी रूढ़िवादी धर्मका विज्ञानसे विरोध है और विज्ञान उसे फिजूल समझता है।

(३) वैज्ञानिकोंका लक्ष्य सत्यकी खोज है—सत्यके

अधिक निकट पहुँचना है और जिस धर्मका उद्देश्य सत्य-प्राप्ति है, उसका विज्ञान विरोधी नहीं है।

(४) वैज्ञानिकोंका जड़वाद निरर्थक और भ्रान्त था—उनकी कट्टरता बेमतलब थी।

(५) आधुनिक वैज्ञानिक खोजोंने भौतिकवादकी जड़ हिला दी है, उसका खोखलापन दिखा दिया है।

(६) विज्ञानने रूढ़िवादी धर्मके प्रचारकोंकी भी जड़ हिला दी है।

(७) धर्म और विज्ञानके क्षेत्र अलग-अलग हैं, दोनोंमें विरोधकी सम्भावना ही नहीं है।

ऊपरकी पङ्क्तियोंपर ध्यान देनेसे हमारे पाठकोंको मालूम होगा कि, इस ग्रन्थमें विज्ञानके सम्बन्धमें हम अपने जैसे विचार लिख आये हैं, वैसे ही इन वैज्ञानिकोंके भी हैं। हम भी यही लिख आये हैं कि, वैज्ञानिकोंका लक्ष्य सत्यके समीपतम प्रदेशमें पहुँचना है, अलग-अलग क्षेत्र होनेके कारण धर्म और विज्ञानमें कोई विरोध नहीं है, वैज्ञानिक गवेषणाएं धर्ममें सहायक हैं, वैज्ञानिकोंकी खोजें अधूरी हैं, विज्ञानवादियोंके अनुसन्धानोंसे जड़वाद अस्थिर हो गया है—उसकी जड़ हिल गयी है आदि आदि। वस्तुतः आइनस्टाइन और उनके ही समान विचार रखनेवालोंने भौतिकवादकी नींव गिरा दी है और वैज्ञानिकोंको एक ऐसी दिशा दिखा दी है, जिसके अस्तित्वकी

सम्भावना ही उन्हें नहीं थी। अब वे सूक्ष्म संसारके रहस्यकी ओर बढ़ रहे हैं, धर्मकी निगूढ़ता समझनेकी जिज्ञासा उनमें उत्पन्न हो गयी है और ब्रह्माण्डगत द्रव्योंमें उन्हें ईश्वरीय ज्योतिका आभाससा—सच्चिदानन्द ब्रह्मकी महिमाकी झलकसी मालूम पड़ने लग गयी है। आशा है, विज्ञान-प्रेमी पाठक इन बातोंपर ध्यान देंगे।

अच्छा, अब अध्यात्मक्षेत्रवाले दूसरे प्रश्नके वैज्ञानिक उत्तरोंकी ओर देखिये। १२१ सज्जनोंने इस प्रश्नके हाँमें उत्तर दिये, १३ ने नमें और ६६ ने सन्दिग्ध। यहाँ यह बात विशेष ध्यानमें लानेकी है कि, उत्तरदाताओंमें अध्यात्म-क्षेत्र न माननेवालोंकी अपेक्षा अध्यात्म-क्षेत्र माननेवालोंकी संख्या दसगुनी है। नमूनेके तौरपर कुछ उत्तर पढ़िये—

बहुतोंने ऐसा उत्तर दिया—"ज्ञान अनुभवसे उत्पन्न होता है और अनुभव मानसिक है या चेतना-सम्बन्धी, भौतिक नहीं।"

एक वनस्पतिशास्त्रीने लिखा कि—"केवल जड़वादके आधारपर विश्वकी व्याख्या करना सम्भव नहीं।"

एक भौतिक-वेत्ताका कहना था—"आजकलके भौतिक-शास्त्र-वेत्ता, पूर्ववर्ती जड़वादियोंकी अपेक्षा, अधिक उदार हैं। उन्हें हक्सलेके समान जीव-विज्ञान-वेत्ताओंके इस विचारसे बिलकुल सहानुभूति नहीं है कि, परमाणु, उनकी स्थिति और गति जान लेनेपर ही समस्त इतिहास निश्चित

हो सकता है।"

प्रो० लार्डो—"मेरे विचारसे 'मैं' अध्यात्म-सत्ता है।"

प्रो० वाट्सन—"मानव-क्रियाके बहुतसे ऐसे स्पष्ट क्षेत्र हैं, जिन्हें वैज्ञानिक साधनों द्वारा नहीं समझा जा सकता।"

सर एडिंगटन—"हम परिस्थितिसे उत्पन्न अनुभवोंको भौतिकता-वादियोंके यन्त्रों वा गणितज्ञोंके मापों द्वारा नहीं माप सकते।"

प्रिंसिपल रिचार्डसन—"क्या तुम यह आशा करते हो कि, हमारे समस्त अनुभवोंका स्पष्टीकरण रसायन और भौतिक विज्ञान द्वारा हो सकेगा? ऐसा कभी नहीं हो सकता। हमारे अनुभवोंका क्षेत्र इन विज्ञानोंके क्षेत्रसे कहीं अधिक विस्तृत है।"

प्रो० हालडेन—"मैं तो अध्यात्म-क्षेत्रके अतिरिक्त और किसी क्षेत्रका विचार ही नहीं कर सकता।"

क्या केवल जड़वादी और विज्ञानके अन्ध भक्त भारतीय युवक इन विश्व-प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंकी अमूल्य सम्मतियों-पर निगाह फेरेंगे?

अब तीसरे प्रश्नकी बात लीजिये। ११२ विज्ञानवेत्ता-ओंने इस प्रश्नके अनिश्चित उत्तर दिये, ४१ने विपक्षमें उत्तर दिये और ४७ने मृत्युके अनन्तर आत्माके अस्तित्वमें विश्वास प्रकट किया। कुछ उत्तर देखिये—

प्रो० फार—'मैं यह कह सकता हूं कि, यह समस्त विश्व इतना विस्मयकारक है कि, इसमें अनन्त जीवन असम्भव नहीं है। "साइकिकल रिसर्च सोसाइटी"ने इसके सम्बन्धमें बहुतसे जोरदार प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। × × × मैं इतना ही कहे देता हूं कि, मृत्युके पश्चात् अस्तित्वका रहना असम्भव नहीं है।"

प्रो० हालडेन—"मृत्युके पश्चात् आत्माओंका पृथक्-पृथक् अस्तित्व नहीं रहता है। वे सब ईश्वरके साथ 'एक' होकर रहती हैं।"

सर राबर्ट हैडफिल्ड—"यदि हम सबका इस जीवनमें ही अन्त होना है, तो इसे प्रकृतिकी शक्तिका व्यर्थ अपव्यय मानना चाहिये। पर यह असम्भव है।"

प्रो० इंगोल्ड—"मृत्युके पश्चात् अस्तित्व तो रहता है; परन्तु पृथक् व्यक्तित्व भी रहता है—इसमें सन्देह है। मैंने इसपर कभी विचार नहीं किया है!"

आलमंड—"व्यक्तित्वके स्थानमें आत्मा शब्दका प्रयोग करना उचित है। इसमें आध्यात्मिक भाव है। निस्सन्देह मैं मृत्युके पश्चात् भी इसके अस्तित्वमें विश्वास रखता हूं।"

डा० मार्शल—"दूसरे प्रकारके अस्तित्वमें कालकी अपेक्षा नहीं होती। बाइबिलमें भी, कई स्थानोंपर, कालकी असत्यताका उल्लेख है। प्राचीन तथा आधुनिक अनेक दार्शनिक भी कालको मिथ्या समझते हैं। मेरा भी ऐसा

ही विचार है। काल तो हमारे इस सांसारिक जीवनमें व्यवहार मात्र है। इस दृष्टिसे इस जीवनके "पश्चात्"का प्रश्न ही अनुचित होगा; क्योंकि "पश्चात्" शब्दका व्यवहार ही तब हो सकता है, जब कालको सत्य माना जाय। अनन्त जीवन कालकी अपेक्षा नहीं रखता है।"

"मैं" चेतन है—शरीरके सारे अङ्ग जड़ हैं; इस शरीरकी मृत्युके साथ चेतन आत्माकी मृत्यु नहीं हो सकती। सर आलिवर लाज आदि वैज्ञानिकोंने तो परलोकसे आत्माओंको बुलाकर और उनसे बातें तक करके इस सिद्धान्तको सत्य प्रमाणित कर दिया है। लंडन आदिकी परान्वेषण-समितियाँ (Psychical Research Societies) तो आत्माओंको बुलाकर उनके फोटोतक लेती हैं, जो आये दिन अखबारोंमें छपा करते हैं। कर्मफल-भोगके लिये भी जन्मान्तर आवश्यक है। जनमते ही जच्चेका दूध पीना, बन्दरका डालियोंपर उछलने लगना आदि पूर्व जन्मके संस्कारके सूचक हैं।

अब चौथे प्रश्नकी ओर आइये। सात वैज्ञानिकोंने न में उत्तर दिये, २० ने अव्यक्त उत्तर दिये और १७३ ने हाँमें उत्तर दिये। कुछ नमूने पढ़िये—

सर जेम्स क्रिकृन ब्राउन—"हाँ, मनुष्य तो आत्म-सत्ता है; और, स्वस्थ मस्तिष्ककी अवस्थामें वह अपने निर्वाचित कर्मोंके प्रति अवश्य उत्तरदायी है।"

सर आर्थर एडिंगटन—"हमें अब कर्म-प्रेरिका अन्तरात्मिक शक्तिमें अविश्वास नहीं करना चाहिये। हमारे मस्तिष्कमें केवल बाह्य जगत्‌का चित्र अङ्कित नहीं होता है; प्रत्युत हमारे कर्म, उनके अन्दर निहित उद्देश्य और उसकी प्राप्तिकी चेष्टाएँ—सभी विश्वसनीय हैं। अतः हमारे ऊपर अपने कर्मोंका उत्तरदायित्व है।" ("सायंस और रेलीजन")।

जगत्‌के छोटे-से-छोटे कार्योंमें भी एक नियम देखा जाता है, तब कर्म और उसके फलमें नियम नहीं? क्या मनुष्य अनाचार अत्याचार और हत्या-शोषण यों ही करता रहेगा और उसके कार्यों का फल उसे नहीं मिलेगा? यह हो नहीं सकता। रावण और कंस आदिकी बातें तो पुरानी हो गयी हैं; रूसके ज़ार निकोलस और रास्पुटिनकी ही बातें लीजिये। क्या ये अपने कर्मोंके उत्तरदायी घोषित करके जानसे नहीं मार दिये गये? क्रियाकी प्रतिक्रिया न हो, यह सम्भव है? यदि अपने कर्मोंका मनुष्य उत्तरदायी नहीं है, तो अपराध करनेवालोंको क्यों दण्ड दिया जाता है?

जन्मसे ही संसारमें कोई हीनाङ्ग है, कोई सुन्दर है, कोई गरीब है और कोई धनी है। क्यों? इसीलिये कि, मनुष्य अपने कर्मोंका उत्तरदायी है और पूर्व जन्ममें जिसने जैसा कर्म किया है, उसके फल-स्वरूप उसे कुरूपता वा सुन्दरता, दरिद्रता वा धनाढ्यता मिली है। और तो और, यह सारा संसार ही कर्म-व्यवस्थापर अवस्थित है। यदि

कर्म-व्यवस्था न रहे, तो समाज भ्रष्ट और संसार ध्वस्त हो जाय।

पाँचवाँ प्रश्न विकासवाद और सृष्टि-रचनाके सम्बन्धका है। इसके उत्तरमें ६ वैज्ञानिकोंने नहीं कहा, १४२ ने हाँ कहा और ५२ ने अपने उत्तर अस्पष्ट दिये। उत्तर बड़े मनोरञ्जक हैं। एक-एक कर कुछ नमूने लीजिये—

डा० मास्टरमेन—"हाँ, विकासवादके लिये रचयिता आवश्यक है।"

प्रो० मोर्डेल—"यदि कोई सृष्टि-रचयितामें विश्वास रखता है, तो मैं यह नहीं समझ सकता कि, विकासवाद इस विश्वासमें विरोधी क्यों है!"

प्रो० मैकब्राइड—"इस विश्वके परोक्षमें एक कोई शक्ति अवश्य होनी चाहिये; क्योंकि मनुष्यकी बुद्धि इस विश्वमेंसे आविर्भूत हुई है और इसकी सहायतासे ही हम कुछ जान सकते हैं। यह शक्ति बुद्धिमान् होनी चाहिये अर्थात् इसमें ज्ञान और इच्छा होनी चाहिये।"

टिजार्ड—"हाँ, यदि कोई रचयिता है, तो इसका कोई कारण नहीं कि, उसकी सृष्टि विकासके द्वारा क्यों न उन्नत हो!"

एक रसायन-शास्त्रीने लिखा—"यदि रचयिताका अर्थ ऐसे एक साकार व्यक्तिसे है (जिसका चित्रण बाइबिलके सृष्टि-अध्यायमें किया गया है), तो सचमुच मैं नहीं मानता। पर

हाँ, यदि 'निराकार'का किसी ऐसी शक्तिसे तात्पर्य है, जिससे समस्त विश्व और नियम प्रादुर्भूत हुए हैं, तो इस रचयिता और विकासमें अविरोध माननेमें कोई आपत्ति नहीं है; बल्कि ठीक ही है।"

एक जीवशास्त्र-वेत्ताने उत्तर दिया—"यह स्पष्ट है कि, कोई सतर्क विकासवादी नास्तिक नहीं हो सकता। परन्तु मैंने तो अपना यह परम सिद्धान्त बना लिया है कि, धार्मिक सिद्धान्तोंमें हस्त-क्षेप नहीं करूंगा।"

प्रो० वाइंस--"हाँ, विकासका आरम्भ अवश्य होना चाहिये। इस आरम्भमें आवश्यकीय शक्तिका स्रोत अनिवार्य है।"

प्रो० सी० सी० फार—"मैं अवश्य कहूंगा कि, बाइबिलके सृष्टि-अध्यायमें जिस सृष्टि-रचनाका विवरण किया गया है, उसकी सङ्गति तो विकासवादसे नहीं लगायी जा सकती; परन्तु यदि यह माना जाय कि, इस विश्वके परोक्षमें कोई अदृष्ट, नियामक और वशीकरण सत्ता विद्यमान है (जिसे अन्य उपयुक्त शब्दोंके अभावमें चाहे ब्रह्म वा सृष्टि-रचयिता कह लिया जाय), तो इस विश्वास और विकासवादमें कोई विरोध नहीं है।"

पलासकेट—"हाँ, विकासको गूढ़ दृष्टिसे देखनेसे पता चलेगा कि, इसके अन्दर रचयिताका उच्चतम आदर्श निहित है।"

फ्रिकटन ब्राउन—"विकासका अर्थ है सतत ईश्वरीय प्रादुर्भाव; और, परिवर्त्तनका अर्थ है दिव्य दृश्य।"

विकासवादियोंका विकास असम्बद्ध नहीं होता, वह बिलकुल नियम-बद्ध होता है। यह नियम-बद्धता बुद्धि-पूर्वक जान पड़ती है; इसलिये सृष्टि-क्रियामें एक नियामक और बुद्धिमान् चेतन मानना नितान्त आवश्यक है। सृष्टि-विकासमें कितनी ही ऐसी रहस्यमयी बातें देखनेमें आती हैं, जिन्हें मनुष्य तबतक नहीं समझ सकता, जबतक वह आस्तिक न हो जाय। एक बात और भी है। वह यह कि, बिना इच्छाके संसारमें कोई कार्य नहीं होते देखा जाता और इच्छा चेतनमें ही सम्भव है। इसलिये इस महाकार्य सृष्टिमें एक इच्छावाले चेतन ईश्वरका मानना अनिवार्य है। हाँ, यह अवश्य है कि, अधिकांश विकासवादी इस जगत्के परोक्षमें जिस अन्तर्निहित शक्तिका आभास पा रहे हैं, वह उनकी दृष्टिमें केवल सृष्टिकी आयोजिका है। धार्मिक व्यक्ति इस शक्तिमें, सृष्टि-रचनाके प्रयोजनको दृष्टिमें रखते हुए, उसको ज्ञान, दया, न्याय आदिसे भी परिपूर्ण मानते हैं। विकासवादके सम्बन्धमें हम पहले लिख आये हैं; इसलिये यहाँ और अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

अब अन्तिम प्रश्नके उत्तर भी सुन लीजिये। २६ व्यक्तियों-ने अपने उत्तर न में दिये, १०३ने हाँमें और ७१ ने अस्पष्ट

उत्तर दिये।

एक जीवविज्ञानशास्त्रीने उत्तर दिया—"प्राकृतिक विज्ञान उन वस्तुओंका विवरण देता है, जो नापी, गिनी और विभाजित की जा सकती हैं; इसलिये ऐसे प्रश्नका विधि या निषेध—किसीमें भी उत्तर देना उसके क्षेत्रसे बाहरकी बात है।" डानन, मेलोर, मास्टरमेन, बाथर, हेविट, ब्राउन, स्टीफेंसन, वीन जैसे वैज्ञानिकोंकी भी ऐसी ही राय है। परन्तु हमारे यहाँ तो जिसका विज्ञानसे जरा भी सम्बन्ध नहीं है, वह भी ईश्वरका खण्डन करने बैठ जाता है। अच्छा, कुछ अन्य प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ताओंकी मनोरम सम्मतियाँ भी पढ़िये—

प्रिंसिपल रिचार्डसन—"मैं अपने उत्तरको दो भागोंमें विभाजित करता हूं—(१) विज्ञान ऐसे ईश्वरका निषेध करता है, जो सीधे ही अचेतन जगत्‌पर क्रिया करता है। उदाहरणतः वर्षाके लिये प्रार्थनाएं करना अन्ध-विश्वास है। इस प्रथाको उड़ा देना चाहिये। लेकिन (२) मानव-आत्माका परमात्मासे देव-संसर्ग होनेके विषयमें साधु, योगी वा सन्तके अनुभवकी अपेक्षा विज्ञानका अनुभव नहींके बराबर है।"

रौब—"मैं यह नहीं मानता कि, ईश्वरके सम्बन्धमें मानव-विचार कभी पूर्ण भी हो सकते हैं। एक असीम सत्ताको ससीम करनेका प्रयास व्यर्थ है।"

डा० इंगोल्ड—"साकारताके भावसे तो विज्ञान ईश्वरके पौरुषेय माननेका निषेध करता है; परन्तु यदि पौरुषेयका

अर्थ 'एकत्व' हो, तो निषेध नहीं करता। पर ईश्वरका साकार स्वरूप, ईसाके समयमें भी और कुछ हदतक आजकल भी, सामान्य मनुष्योंको समझानेकी दृष्टिसे, उपयोगी अवश्य है।"

डा० इम्स—"मेरी सम्मतिमें विज्ञान हमें दृश्य जगत्के परोक्षमें एक महान् शक्तिके अस्तित्वका निर्देश करता है।"

प्रो० विनोग्रेड्स्की—'मैं नहीं समझता कि, भौतिक विश्वका ज्ञान आत्म-जगत्के ज्ञानपर प्रभाव डाल सकता है।"

सर गिलबर्ट वाकर—"प्रकृतिकी संकीर्णता, अन्वेषण द्वारा, ज्यों-ज्यों अधिक प्रतीत होती जा रही है, त्यों-त्यों उच्च नियामक शक्तिमें भी अधिक विश्वास होता जा रहा है, और, उसके प्रति विनय-भाव बढ़ता जा रहा है।"

प्रो० टिलयार्ड—"जीवविज्ञान-वेत्ता इस प्रकृतिमें आचारोपयोगिता (Moral value) का उसी प्रकार कोई साक्ष्य नहीं पा रहे हैं, जिस प्रकार भौतिक विज्ञान-वेत्ता इस ब्रह्माण्डमें। आचारका विचार सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं; और, विकासके क्रममें बहुत पीछे मनुष्यने इसकी कल्पना की है। ईश्वरकी कल्पना तो मनुष्यके मस्तिष्ककी और भी विशिष्ट उपज है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि, ईश्वर है ही नहीं। इसका केवल इतना ही तात्पर्य है कि, ज्यों-ज्यों मनुष्यके विचार अधिक स्पष्ट होने लगे, त्यों-त्यों सर्वज्योतिर्मय

पिताके प्रकाशकी कुछ धुंधली आभा हमारे पास पहुँचने लगी। सत्यके निकट पहुंचने और ईसाई मतके केवल काल्पनिक मन्तव्योंसे दूर हटनेके लिये अभी विज्ञानका अन्वेषण करते रहना है।"

इन विज्ञानविदोंकी सम्मतियोंका सार इस प्रकार निकलता है—

(१) ईसाइयोंकी चार हजार वर्षोंकी सृष्टि-रचना और अवैज्ञानिक पौरुषेय ईश्वरकी कल्पनासे विज्ञान-वेत्ता ऊबे हुए मालूम पड़ते हैं। फलतः उन्हें बाईबिलकी कल्पनाएं मान्य नहीं हैं।

(२) वे विज्ञानके प्रयोगके बाहर एक नियामक ईश्वर शक्तिको मानते हैं।

(३) वे ईश्वरको प्रकाश-स्वरूप, असीम और अद्वितीय मानते हैं। वैज्ञानिक खोजकी चरम सीमामें उन्हें ऐसे ही ईश्वरकी झलक दिखाई देती है।

(४) वे वैज्ञानिकोंके अनुभवसे ईश्वरको परे समझते हैं और योगियोंके अनुभवके समीप।

(५) डा० इंगोल्ड जैसे वैज्ञानिकोंके विचारसे ईश्वरका साकार रूप मनुष्यके लिये उपयोगी है।

(६) कुछ वैज्ञानिकोंके मतसे विज्ञानके प्रयोग और निरीक्षण जड़-जगत्‌तक ससीम हैं—चेतन-जगत् विज्ञानकी

पहुंचके बाहर है। इसीलिये वे चेतन—जगत्पर प्रामाणिक सम्मति देनेमें डरते हैं—इसे वे अनधिकार—चेष्टा समझते हैं।



ईश्वर–सिद्धिमें अन्यान्य युक्तियाँ

ईश्वर-सिद्धिमें अनन्त युक्तियाँ और असंख्य तर्क दिये जा सकते हैं। अबतक इस पुस्तकमें ऐसी अगणित युक्तियाँ और तर्क, कुछ विस्तारसे, दिये गये हैं। आगेकी पंक्तियोंमें भी कुछ ऐसी ही युक्तियाँ और तर्क दिये जाते हैं। विस्तार-भय और सुविधाके विचारसे कुछका यहाँ एकत्र ही संग्रह कर दिया गया है—यही विशिष्टता है। फुटकल युक्तियाँ और तर्क तो सारी पुस्तकमें भरे पड़े हैं ही।

चूंकि ये युक्तियाँ और तर्क सूत्र-रूपमें ही हैं; इसलिये इनका मनन जरा विशेष ध्यान देकर करना चाहिये।

१—सूक्ष्म विचार करनेसे मालूम पड़ता है कि, प्राणी स्वभावतः आस्तिक है। प्राथमिक अवस्थाके जंगली मनुष्य भी देवों वा ईश्वरीय शक्तिपर पूर्ण आस्था रखते हैं, उसका अर्चन करते हैं और उसकी विविध प्रकारकी मूर्तियाँ बनाते हैं। जंगलियोंसे लेकर विकासकी उच्च-

तम सीमापर पहुँचे हुए परमहंस रामकृष्ण, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गान्धी, सर आलिवर लाज जैसे सन्तों, अनुभवियों और वैज्ञानिकोंतक ईश्वर-श्रद्धा उतनी ही आवश्यक देखी जाती है, जितना भोजन। जैसे भोजनके विना जीवोंका अस्तित्व असम्भव है, वैसे ही ईश्वर-विश्वासके विना भी। बड़े-बड़े नास्तिक भी भूत, प्रेत आदि दिव्य शक्तियोंसे डरा करते हैं और अन्तको परम आस्तिक बनकर देह-त्याग करते हैं। ईश्वरकी प्राकृतिक सत्यताके ही कारण संसारमें नास्तिकोंकी उतनी भी मात्रा कभी नहीं रही, जितनी दालमें नमककी रहती है। कुछ बौद्ध आदि आत्माको मानते हैं, जो ईश्वरका रूपान्तर भर है।

२—भौतिक वा रासायनिक तत्त्वोंसे अबतक कोई भी जीव नहीं बना। इस दिशामें पृथिवीके धुरन्धर वैज्ञानिकोंने अनेक बार चेष्टाएं कीं, बड़े-बड़े यन्त्र बनाये और अनन्त सम्पत्तिकी आहुति दे डाली; परन्तु वे जड़से चेतनके निर्माणमें समर्थ नहीं हुए। यदि जड़ द्रव्य हैं और चेतन उसका गुण है, तो वे क्यों नहीं जड़से चेतनकी उद्-भावना करनेमें समर्थ हुए? इसलिये यही मानना ठीक है कि, चेतन सर्वथा स्वतन्त्र और नित्य है और वह कहीं सुप्त, कहीं जाग्रत, कहीं गुप्त और कहीं प्रकट रहता है।

३—परमाणुओंसे चेतनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती; क्योंकि उनका विश्लेषण करनेपर उनमें प्रकट चेतन

नहीं देखा जाता। सेलके केन्द्रमें जो अणु देखा जाता है, वह केवल अप्रकट दशासे प्रकट दशामें आया भर है; क्योंकि जिस तत्त्वसे सेल बना है, उसमें प्रकट चेतन नहीं देखा जाता।

४—सत्त्व, रज, तम आदि अज्ञानमय तत्त्वोंसे ज्ञानमयी सृष्टि नहीं हो सकती—ज्ञानमय चेतन सृष्टिकर्त्ता, स्वाधीन और सनातन तत्त्व है।

५—संसारमे जितने पदार्थ देखे जाते हैं, उनका रूपान्तर भर ही क्षणस्थायी है; परन्तु वे सब वस्तुतः नित्य हैं। तब फिर चेतन ही अनित्य वा संदिग्ध क्योंकर हो सकता है? यदि जडका शासक चेतन ही अनित्य और सत्ता-विहीन हो जाय, तो असम्भव भी सम्भव हो जाय और सृष्टि-रचनाका कोई तात्पर्य ही न रहे। क्या यह कभी सम्भव है कि, शासक वा स्वामी हो परतन्त्र, असत्य, गुण और अनित्य आदि रहे और दास (प्रकृति=जड़) स्वतन्त्र, द्रव्य, सत्य और नित्य आदि रहे?

६—जीव-विज्ञान, शरीरविज्ञान आदिकी कितनी ही बातें ऐसी हैं, जो समझमें नहीं आती हैं। कोई जीव आचार्य शङ्करके समान होता है, कोई वज्र-मूर्ख होता है, स्त्रीको दाढ़ी-मूँछ नहीं होती, पुरुषको होती है, सहोदरोंमेंसे एक विद्वान् होता है, दूसरा जड़ताकी मूर्त्ति, कोई जनमते ही करोड़पति होता है, कोई भयंकर दरिद्र, कहीं झूठा, पापी और बेईमान

मौज उड़ाते हैं, कहीं सुकृती भूखों मरते हैं आदि आदि कितनी ही बातें समझसे एकदम बाहर हैं। इसी प्रकार दुर्भिक्ष, प्रलय, पत्थरकी वर्षा, भूकम्प आदिकी बातें भी ठीक-ठीक समझमें नहीं आतीं। इससे विदित होता है कि, एक ऐसी ईश्वर-रूप अदृश्य शक्ति है, जो विश्वमें सामञ्जस्य स्थापित करनेके लिये अथवा प्राणियोंके कर्मानुसार संसार-संचालन करनेके लिये अथवा स्वयं क्रीड़ा करनेके लिये अथवा हमारे लिये किसी अज्ञेय प्रयोजनके निमित्त अद्भुत कार्य करती रहती हैं।

७—अनेक नास्तिक भी किसी शून्य स्थानमें, श्मशान-घाटमें और निस्तब्ध रजनीमें डरते और प्रेतात्माकी सत्ता मानते हैं। तब प्रेतात्माओंके भी अधीश्वर और भयके शत्रु ईश्वरको क्यों नहीं माना जाय?

८—आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीने अपने "अद्भुत आलाप" ग्रन्थमें भूत, प्रेत आदिकी सिद्धि की है। विदेशोंको कितनी ही "साइकिकल रिचर्स सोसाइटियाँ" (परान्वेषण-समितियाँ) तो इन दिव्य योनियोंका फोटोतक ले चुकी हैं। तब इन दिव्य योनियोंके अधिपति और योगियोंके अनुभव-गम्य ईश्वरको क्यों नहीं माना जाय?

९—घोर विपत्ति और असह्य वेदनामें मनुष्य "भगवान्, भगवान्" चिल्लाने लगता है। इससे मालूम पड़ता है कि, वह स्वभावतः एक ऐसा सर्वशक्तिमान् आधार चाहता है,

जो उसकी विपत्तियों और वेदनाओंको दूर हटा सके। यही स्वभाव-सिद्ध आधार ईश्वर है।

१०—आकाश-पुष्पका अत्यन्ताभाव है, इसलिये उसके आधारपर सुगन्धकी कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसे ही यदि ईश्वरका भी अत्यन्ताभाव रहता, तो उसके आधार-पर विविध धर्मोंकी सृष्टि नहीं की जा सकती थी।

११—यह शङ्का प्रायः की जाती है कि, ईश्वरको कभी देखा नहीं जाता; इसलिये उसको माना भी नहीं जा सकता। यह शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि, हर एक आदमीने अमेरिका वा ब्रिटेनको नहीं देखा है, परन्तु वह अमेरिका आदिकी सत्ता मानता है। क्या परमाणुओंको किसीने देखा है? तब फिर क्यों उन्हें विश्वका आधार माना जाता है? क्या मध्याकर्षण-शक्ति समझके बाहर नहीं है? तब उसे फिर क्यों माना जाता है? इसी प्रकार ईश्वरके समझमें न आनेपर भी उसे माना जाता है और उसे माना जाना चाहिये। समझमें न आनेपर भी वह अपना कार्य करता जायगा और प्राणियोंके कर्मानुसार उन्हें फल भी देता जायगा। समझसे परे होनेपर भी ईश्वरको, ज्ञान और आनन्द आदिके केन्द्रको, माननेसे और उसकी भक्ति करनेसे मनुष्यको ज्ञान और आनन्द आदिकी शक्तियाँ अलौकिक क्षमता प्रदान करेंगी ही—ऐसा प्रत्येक ईश्वर-भक्तका अनुभव है।

१२—क्या मैं कान, नाक आदि इन्द्रियाँ हूँ ? क्या मैं मन, मस्तिष्क, अन्तःकरण वा बुद्धि हूँ ? प्रत्येक मनुष्य उत्तर देगा कि, नहीं, इन्द्रियाँ, मन आदि मेरे हैं, मैं स्वयं इन्द्रियाँ आदि नहीं हूँ। तब क्या मैं पृथिवी, वायु वा आकाश आदि हूँ ? इसका भी उत्तर मनुष्य यही देगा कि, मैं इन सबसे भिन्न हूँ। इन वस्तुओंसे भिन्न जो पदार्थ है, जिसे 'मैं' शब्दसे जाना जा सकता है और जो सारे जड़ पदार्थोंका स्वामी और नियामक है, वही चेतन (और चेतनकी समष्टिका नाम ही) ईश्वर है।

१३—'मैं मङ्गल-ग्रहमें जाकर विचरण करूंगा,' हिमालयकी एवरेस्ट चोटीपर विजय-पताका गाड़ दूँगा, असम्भवको सम्भव कर दूँगा, आदि जो भावनाएँ मनुष्यको होती हैं, उनका कारण यह है कि, मनुष्यमें सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी सत्ता जागरूक है; इसलिये वह अपनेको भी सर्वशक्तिमान्-सा समझता है।

१४—संसारके कोटि-कोटि मनुष्य ईश्वरको सदासे मानते आये हैं और उनमें ऐसे असंख्य प्रतिभाशाली व्यक्ति हो गये हैं और हैं, जो विश्वके कई मृत और जीवित नास्तिकोंको जीवनपर पढ़ा सकते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि, संसारमें जितने परोपकारी और अद्भुत प्रतापी व्यक्ति हुए हैं वा हैं, वे प्रायः सब आस्तिक हैं और उन सबने इस बातको स्वीकार किया है कि, उनमें जो कुछ प्रताप, प्रतिभा वा शक्ति है, वह ईश्वरीय कृपाका केवल

फल है । तो क्या इन सबको झूठा वा ढोंगी माना जाय अथवा सबको भ्रान्त वा मूर्ख कहा जाय ? संसारमें नये युग लानेवाले ऐसे महापुरुषोंको भ्रान्त माननेसे तो यही अच्छा होगा कि, नास्तिकोंको ही भ्रान्त माना जाय और उनका ईश्वर-खण्डन अनधिकार-चेष्टा तथा अज्ञानता माना जाय । हमें पूर्ण आशा है कि, हमारे पाठक भी हमारे इस मतसे सहमत होंगे ।

१५—कुम्भकार वा कुंभारने अपने आँवेमें मिट्टीके तरह-तरहके बरतन सजा दिये और बीच-बीचमें कंडों वा लकड़ियोंको रख कर आग लगा दी । धधकती ज्वालाने सारे बरतन पका दिये । परन्तु क्या ही आश्चर्य है कि, एक बिल्लीका बच्चा बाल-बाल बच गया और आग बुझनेपर आँवेमेंसे कूदता हुआ बाहर निकल आया ।

सोनेके गहनोंसे लदे हुए एक बालकको उसका नौकर किसी रिश्तेदारके घर ले जाने लगा । चलते-चलते दोनों एक सुनसान जंगलमें पहुंचे । वहाँ नौकरकी नीयत बदल गयी; उसने लड़केको जानसे मारकर गहनोंको ले लेनेका निश्चय कर लिया । उसने लड़केकी आँखोंमें पट्टी बाँध दी, उसे चित्त कर दिया और एक शिला-खण्ड लाकर लड़केकी खोपड़ीको चूर कर देना चाहा । सब कुछ कर लेनेपर, खोपड़ीपर शिला-खण्ड पटकनेके ठीक समयपर, दहाड़ता हुआ एक बाघ पहुँचा और नौकरका काम तमाम कर लड़केके लिये पहरा देने

लगा। इसी समय अचानक कुछ लोग वहाँ पहुँच गये और लड़केकी आँखोंकी पट्टी खोलकर उसे उसके घर पहुँचा आये!

एक मनुष्य किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया है, विपत्ति-सागरके प्रचण्ड भँवरोंके थपेड़े खा रहा है, उसे सूझता ही नहीं कि, इस विपत्तिसे कैसे पार हुआ जाय। इसी समय एक ऐसी आकाश-वाणी होती है, उसके अन्तःकरणको एक ऐसी महा-ध्वनि सुनाई देती है कि, वह एकाएक आनन्दके मारे नाच उठता है, अपना मार्ग चुन लेता है और सारी विपत्तियोंको आनन-फाननमें पार कर जाता है!

क्या इन आकस्मिक घटनाओंसे यह स्पष्ट सूचित नहीं होता कि, अनाथों और विपन्नोंकी संरक्षिका ईश्वरीय शक्ति ठीक समयपर बिल्लीके बच्चेको सुरक्षित आधार दे देती है, दुष्ट नौकरके लिये काल बन जाती है और विपन्नको सन्मार्ग बता देती है ? स्वा० विवेकानन्द, क्राइस्ट, महम्मद, योगी अरविन्द, म० गान्धी आदिका तो ऐसा ही अनुभव है, जो अटूट सत्यके आधारपर आश्रित हैं।

१६—ईश्वरका भजन करनेवाले ऐसी करामातें दिखाते हैं, जिन्हें "असम्भव" कहा जाता है। ये भक्त कहते हैं कि, भक्तिके बल ईश्वरका दर्शन होता है और ईश्वरकी कृपासे "असम्भव" कही जानेवाली "सिद्धियाँ" भी प्राप्त होती हैं। कुछ ऐसी सिद्धियों और सिद्धोंके उदाहरण लीजिये —

क—एक वर्षकी बात है और हृषीकेश (हरद्वार) की

घटना है—एक साधु समाधि लगाकर पृथिवीके भीतर निरन्न और निर्जल ४२ दिनोंतक पड़े रहे। समाधि-स्थान-में हवा जानेके लिये जरासा छेदतक नहीं था। वहाँके मजिस्ट्रेट और पुलिस आफिसरोंने भी इस घटनाको देखा था। समाधि टूटनेके दिन एक यूरोपियन महिला देहरा-दूनसे वहाँ आयी थीं और वहाँका सचित्र विवरण कलकत्तेके "स्टेट्समैन" पत्रमें छपाया था। प्रायः सभी विलायती और देशी पत्रों में भी इसका विवरण छपा था।

ख—यह घटना भी बहुत दिनोंकी नहीं है—श्रीनरसिंहम् नामके एक मद्रासी साधुने प्रेसिडेंसी कालेज (कलकत्ता) के विज्ञानविद् प्रोफेसरोंके सामने तिजाब, शीशा, आर्स-निक आदि कई प्राण-नाशक और विषैले पदार्थोंको खा डाला और उनका कुछ नहीं बिगड़ा! इस सिद्धिका प्रदर्शन साधुने भारतके अनेक शहरोंमें किया था। इन साधुका देहावसान वर्मामें हुआ था।

ग—आगेकी घटना भी ताजी है—एक यूरोपियनके सामने बम्बईके एक साधुने एक कबूतरको मारकर जिला डाला था और यूरोपियन जिस इत्रको चाहते थे, उसे साधु रूमालमें प्रकट कर देते थे।

घ—Saturday Magagine (Vol 1, P 8) में एक विद्वा-न्ने लिखा है कि, "मद्रासके रहनेवाले एक दक्षिण-देशीय शिशल नामके योगी, कुम्भकके बल, शून्य आकाशमें स्थित

होकर जप करते थे ।"

च—सन् १८८७ ईस्वीमें, दार्जिलिंग पर्वतपर, कई एक अंग्रेजोंके सामने तिब्बतके एक लामा योगबलसे आकाशमें, केवल वायुमण्डलके सहारे, बैठ गये थे ।

छ—हैनिग् बर्जर साहबने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें लिखा है कि, "अमृतसरमें एक बार मिट्टी खोदते समय, समाधि लगाये, एक साधु पाये गये थे, जिनको देखनेसे पता नहीं चलता था कि, वे कबके समाधि लगाये बैठे हुए थे । समाधि टूटनेपर योगीने अमृतसरका जो वर्णन किया था, उससे मालूम हुआ कि, वे सैकड़ों वर्षोंसे समाधि लगाये बैठे हुए थे ।"

ज—१७४४ शकाब्दमें, कलकत्तेके पूर्व, भूकैलास नामक स्थानमें, एक बार एक योगी लाये गये । उस समय, भूकैलासके राजा, सत्यचरण घोषाल, जीवित थे । एक दिन डा० ग्रेहमने उन योगीकी नाकमें एमोनिया लगा दिया; तो भी उनका योग भङ्ग नहीं हुआ । यथासमय योग-भङ्ग होनेपर उन्होंने अपना नाम "दुल्ला नवाब" बताया । वे बहुत ही कम बोलते थे ।

झ—अपने "सिख-इतिहास" में डा० मैक्ग्रीगरने लिखा है—"सन् १८३७ ईस्वीमें चकाचौंध पैदा करनेवाला एक योग-दृश्य देखा गया था । एक बार लाहोरमें एक साधु आकर बोले—'यदि कोई मुझे एक बाक्समें बन्द करके

मिट्टीके अन्दर गाड़ दे, तो मैं जबतक चाहूं, भीतर ही जिन्दा रह सकता हूं।' उस समय पंजाब-केसरी रणजीत सिंह जीवित थे। उन्होंने साधुकी बातपर विश्वास न करके उनको परीक्षा करनी चाही। वही बात हुई। एक बाक्समें साधुको बन्द करके उसमें ताला लगा दिया गया और एक बागीचेमें, जमीनके भीतर, बाकस गाड़ दिया गया। यही नहीं, बागीचेको चारों ओरसे घेरकर पहरा भी बैठा दिया गया। साथ ही रणजीत सिंहने ऐसा भी प्रबन्ध कर दिया कि, बागीचेके पास कोई भी मनुष्य नहीं जा सके। योगी, चालीस दिन और चालीस रात, पृथिवीके अन्दर उसी बाक्समें पड़े रहे! अन्तको महाराजा रणजीत सिंह, कितने ही सरदारों, अपने पौत्र, जेनरल वेंटम, कप्तान वेड और मुझे लेकर वहाँ गये और योगीको, मिट्टी खोदकर, उन्होंने बाहर निकलवाया। योगी महाराज उसीमें, ज्योंके त्यों, बैठे रहे; बल्कि हंसते हुए सबके साथ बातचीत करने लगे! योगीकी यह अलौकिक लीला देखकर सब लोग विस्मित हो रहे! महाराजाने स्वयं योगीके गलेमें रत्न-हार पहनाया। योगीके सम्मानके लिये तोपोंकी गड़गड़ा-हटसे आकाश गूंज उठा।" उनका नाम था साधु हरि-दास।

इस तरहके अगणित उदाहरण हैं, जिन्हें यहाँ लिखनेका

स्थान नहीं है। पतञ्जलिके योगदर्शनमें ऐसी कितनी ही सिद्धियों (अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व, यत्र-कामावसायित्व आदि) का उल्लेख है, जो ईश्वरानुभवी साधुओंको ईश्वर-कृपासे मिलती हैं। ईश्वर-भजनसे प्राप्त इन सिद्धियोंके चमत्कारोंको देखकर भी क्या ईश्वर-सत्तामें सन्देह किया जा सकता है ?

१७—मान लीजिये, पत्थरके टुकड़ोंसे भरी एक बैलगाड़ी जा रही है। धीरे-धीरे एक-एक करके पत्थरके टुकड़े गिरने लगे। परन्तु बहुतसे टुकड़ोंके गिर जानेपर भी यह वाक्य नहीं बन सका कि, "बम्बइया आम बहुत बढ़िया होता है।" यदि कोई चेतन चाहे, तो अवश्य ही इन टुकड़ोंसे उक्त वाक्य बना सकता है। इसी प्रकार संसारमें आक्सिजन, हाईड्रोजन आदि सारे पदार्थोंके रहते हुए भी विना चेतनके पदार्थोंका नियत सृजन या संचालन नहीं हो सकता। फलतः विश्वमें एक नियम वा कानून बनानेवाले और उन नियमोंके अनुसार सबका नियत निर्माण और संचालन करनेवाले चेतनकी जरूरत है। वही चेतन ईश्वर है। इसी ईश्वरके नियमानुसार ग्रहण, नक्षत्र, दिन, रात, मास, ऋतु आदिकी गति और संचरण नियमित होते हैं। (फ्लिंट आदि यूरोपियनोंका यह बड़ा ही प्रिय तर्क है; इसलिये इसका यहाँ भी उल्लेख कर दिया गया।)

१८—भयंकर रोग होनेपर प्रत्येक मनुष्य कहता है कि,

"मेरी जान चली जाय; परन्तु मैं नीरोग हो जाऊँ।" इसका अर्थ यह हुआ कि, जान वा प्राणसे भी अलग एक 'मैं' कहने वाला चेतन पदार्थ ऐसा है, जो जानके चली जानेपर भी अर्थात् देह-त्यागके अनन्तर भी विद्यमान रहता है। इसी चेतनका प्राञ्जल रूप ईश्वर है।

१९—विकासवादके प्रवर्त्तक चार्ल्स डार्विनने अपनी "Descent of Man" नामकी पुस्तकमें अनुमान किया है कि, जीवोंकी वंश-परम्पराको कायम रखने और उसका नियमित संचालन करनेके लिये एक अदृश्य शक्तिकी आवश्यकता है। वही अदृश्य शक्ति ईश्वर है।

२०—मन ही शरीर-यन्त्र और संसारचक्रका संचालक नहीं हो सकता; क्योंकि उसका अभाव तो निद्रामें ही हो जाता है। वस्तुतः मन परिवर्त्तित संकल्पोंका पुञ्ज ‌मात्र है। वह जड़ है। बुद्धि भी चेतनायमान जड़ पदार्थ है। फलतः शरीर और संसारका संचालक इनसे भिन्न ही है, जिसे शुद्ध चेतन वा ईश्वर कहा जाता है। यही चेतन व्यक्तित्वमें आकर सूक्ष्म शरीरके द्वारा शरीरका संचालन और अनन्त योनियोंमें संचरण करता है।

२१—इसमें अब सन्देह नहीं रहा कि, संसारके वर्त्तमान रूपका प्रागभाव था और इस रूपकी रचना हुई है। किसी भी वस्तुकी रचना वा सृष्टिके मूलमें संकल्प वा इच्छाकी आवश्यकता होती है; इसलिये इस ससारकी सृष्टिके मूलमें

भी इच्छा थी। यह इच्छा चेतनमें ही हो सकती है, जड़में नहीं; इसलिये इच्छावाले ईश्वरकी सिद्धि अनिवार्य है। इसीको वैदिक भाषामें कहा गया है—"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति।"

२२—कुछ जड़ाद्वैतवादियोंकी धारणा है कि, चेतन जड़का ही धर्म वा गुण है। यदि ऐसी बात हो, तो हिप्नोटिज़्मकी दशामें वा वृद्धावस्थामें जड़ शरीरकी शिथिलताके साथ चेतनायमान चित्तकी गति भी शिथिल हो जानी चाहिये। परन्तु ऐसी बात देखनेमें नहीं आती; बल्कि उक्त दोनों अवस्थाओंमें चित्तकी गति तीव्र हो जाती है। फलतः चेतन सर्वथा स्वतन्त्र और जड़का प्रभु, नियामक आदि है।

२३—जैसे घट आदि किसी भी पदार्थके अभावसे ही घट आदिकी सिद्धि होती है, वैसे ही घट आदिकी विद्यमानतासे ही घट आदिका अभाव सिद्ध होता है। मतलब यह कि, भावसे अभाव और अभावसे भावकी सिद्धि होती है। इसी प्रकार असीमसे ससीम और ससीमसे असीमकी सिद्धि होती है। ससीम पदार्थोंको हम देखते हैं; इसीसे असीम, अनन्त ईश्वरकी सिद्धि आसानीसे होती है। इस नियमके अनुसार जहाँ जड़ाभाव हैं, वहाँ चेतन और जहाँ चेतनाभाव है, वहाँ जड़की भी सिद्धि की जाती है। वेदान्तके विवर्त्तवाद और "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"की बात बहुत सूक्ष्म विचार है, जिसका विवरण पहले दिया गया है।

यहाँ व्यावहारिक तर्ककी बात की जा रही है और वेदान्तका उक्त मत परमार्थ-दशाका है; इसलिये दोनों बातोंमें कोई विरोध नहीं है।

जिन पदार्थोंका अत्यन्ताभाव है, उनकी तो कोई बात ही नहीं है। वन्ध्यापुत्रका अत्यन्ताभाव है; इसलिये उसके भावकी कोई कथा ही नहीं है। उत्तराखण्डके 'गौरीफल'को कोई नहीं जानता; इसलिये उसका प्रश्न ही नहीं उठता। अभावसे भावकी सिद्धि वाला नियम अत्यन्ताभावमें नहीं लगता।

२४—प्रातःकालका स्वप्न प्रायः सत्य निकलता है। क्यों? इसलिये कि, जीवात्मा और परमात्माका स्वाभाविक साम्य है। प्रातःकाल प्रकृति शान्त रहती है, जीवात्माकी स्वस्थावस्था रहती है; इसलिये मारकोनीग्राम (बेतारके तार)की तरह परमात्माका इशारा जीवात्माके द्वारा प्रकट होता है।

२५—यह बात देखनेमें आती है कि, कोई जन्मना नास्तिक नहीं होता—कोई भी व्यक्ति नास्तिक बनाया जाता है। जन्मके गूंगे-बहरेको नास्तिक बनानेका उपाय नहीं है; इसलिये वह स्वभावतः आस्तिक होता है। प्रत्येक गूंगा-बहरा ऊपर अँगुली उठाकर ईश्वरको बताता है। फलतः ईश्वर-सिद्धि प्राकृतिक है।

२६—चार और पाँच हजार वर्षोंकी महाजदिल लिपिको आज कलका मनुष्य सरलतासे पढ़ लेता है। कैसे?

मस्तिष्क-साम्यसे। उस कालके मनुष्योंके मस्तिष्क जिन तत्त्वोंसे बने थे, वे ही तत्त्व आज कलके मनुष्योंके मस्तिष्कोंमें भी हैं। इसी प्रकार चैतनताकी दृष्टिसे ईश्वर और जीवमें साम्य वा समता है। जैसे घट आदि छोटी-छोटी वस्तुओंकी रचनाको देखकर जीवकी सिद्धि होती है, वैसे ही विश्व-रचनाको देखकर ईश्वरकी सिद्धि होती है।

२७—प्रचण्ड आपदाओं और घोर निराशाओंमें ईश्वर-स्मरणसे महान् लाभ होता है। जिस समय जीवन-नौका डूबनेको तैयार हो, उस समय ईश्वरका नाम लेते ही महान् धैर्य प्राप्त हो जाता है। ईश्वर झूठा बोलनेवालेको सत्यवादी, दुराचारीको सदाचारी, निर्बलको सबल और निस्तेजको सतेज बनानेवाला है। वस्तुतः ईश्वरको माननेसे महान् लाभ है। क्या जिस पदार्थका अत्यन्ताभाव है, जो असत्य और अशिव है, उसको माननेसे कभी अमोघ साहस और प्रबल लाभ हो सकता है? कभी नहीं। इसलिये मङ्गलात्मा और अनाथनाथ ईश्वर शाश्वत और त्रिकाल-सत्य है।

२८—प्रसिद्ध नास्तिक चार्ल्स ब्राडलाकी स्त्रीको इंगलैंडके एक गांवमें एक बार हिप्नोटाइज्ड किया गया था। डा० एनी बेसेंट भी वहाँ मौजूद थीं। स्त्रीसे पूछा गया कि, "अमुक प्रूफ जो यहाँ आनेवाला है, उसमें अशुद्धियाँ हैं कि, नहीं?" उक्त स्त्रीने बताया कि, "अमुक-अमुक

गलतियाँ हैं, अमुक-अमुक अक्षर उलटे हैं।" प्रूफ आने पर उसका बताना सोलहो आने सत्य निकला। इस घटनाको देखकर उसी क्षण डा० एनी बेसेंट अज्ञातवादी (Agnosticist) से आस्तिक बन गयीं और ईश्वर-भक्तोंके भविष्य दर्शनपर दृढ़ विश्वास करने लगीं। इसके अनन्तर डा० एनी बेसेंटने ईश्वर-सिद्धिपर बहुत व्याख्यान दिये और इतस्ततः बहुत कुछ लिखा भी। यह बात प्रसिद्ध है कि, स्वा० विवेकानन्दके ग्रन्थोंकी ही तरह डा० एनी बेसेंटके ग्रन्थ पढ़कर भी अनेक नयी रोशनीके शिक्षित नास्तिकसे आस्तिक बने और उन्होंने आस्तिकताका प्रचार भी किया।

ईश्वरसिद्धमें ये कुछ युक्तियाँ, तर्क और उदाहरण ऊपर दिये गये हैं। अधिक लिखनेके लिये यहाँ स्थानाभाव है। विशेष जिज्ञासुओंको विविध दार्शनिक और वैज्ञानिक ग्रन्थ देखने चाहिये।



ईश्वरपर विश्वास

प्रसिद्ध विद्वान् एडमंड बर्कका मत था कि, "Man is a religious animal" अर्थात् 'मनुष्य धार्मिक प्राणी है।' यह बात एकदम सही है। सदासे नास्तिकवादका प्रचार होनेपर भी संसारके अधिकांश मनुष्य

धार्मिक बने हुए हैं। कितने ही धार्मिक मनुष्य तो ईश्वरकी सिद्धिके सम्बन्धमें तर्कों और युक्तियोंकी अनावश्यकतातक समझते हैं। उनकी धारणा है कि, बुद्धि ससीम है और ससीम पदार्थ असीम पदार्थको समझ नहीं सकता। यदि ससीमकी समझमें असीम आ जाय, तो असीम असीम नहीं रह जायगा, ससीम हो जायगा और ससीम ईश्वर अनित्य और परिणामी बन जायगा, अल्प शक्तिवाला हो जायगा, जीवोंकी तरह दुःखी और द्वेषी हो रहेगा। कितने ही अद्वैतवादी दार्शनिक भी कहते हैं कि, ईश्वरका मानस प्रत्यक्ष नहीं हो सकता; क्योंकि विलक्षण मनःसंयोग होनेसे मानस प्रत्यक्ष होता है और ईश्वरमें, अपनी आत्माकी तरह, विलक्षण मनःसंयोग हो नहीं सकता। अनुमानसे भी ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि ज्ञात सम्बन्धमें ही अनुमान होता है। धूम और वह्निका सम्बन्ध ज्ञात है; इसलिये धूमको देखनेसे वह्नि वा आगका ज्ञान होता है। ईश्वरके कर्तृकत्व और पृथिवीके कार्यत्वका सम्बन्ध ज्ञात नहीं है; इसलिये पृथिवी वा संसारको देखकर ईश्वरके कर्तकत्वका अनुमान नहीं हो सकता। फलतः कर्तकत्वाभाव होनेसे ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता। इसीलिये अनेक अद्वैतवादी प्रत्यक्ष और अनुमानको छोड़कर ईश्वर-सिद्धिमें शास्त्रीय वचनोंको ही प्रमाण मानते हैं। उपनिषदें भी ईश्वरके लिये केवल "नेति नेति"

कहती हैं। मि० एफ० एच० जैकोबी तो साफ कहते हैं कि, "A God whom we can understand would be no God" अर्थात् 'वह परमात्मा नहीं रह जाता, जो हमारी समझमें आ सकता हो।'

जिसे माताके दूधके साथ ही ईश्वर-विश्वासकी शिक्षा मिली है, वह डंकेकी चोट कहता है कि, 'जो मनुष्य थोड़ी ही दूरपर होनेवाली बातको भी नहीं सुन सकता, उसकी अपरिमेयको मापनेकी चेष्टा दुस्साहस-पूर्ण है।' अबतक विज्ञान लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई—इन तीन परिमाणोंका ही पता लगा सका था; किन्तु अब डा० अलबर्ट आइनस्टाइनने गहराईको चौथा परिमाण बताया है। ऐसी कितनी ही मोटी बातें जिस मनुष्यकी समझमें नहीं आतीं; वह अथाहकी थाहको क्या समझ सकेगा? पाश्चात्य दार्शनिकोंमें शङ्कराचार्य कहे जानेवाले कैंटका मत है कि, "मनुष्य देश, काल और कार्य-कारणतक ही दौड़ लगा सकता है; परन्तु जो ईश्वर देश और कालकी सृष्टि करता है और जो समस्त कारणोंका कारण है, उसे वह कैसे जान सकता है?" अङ्ग अङ्गीको कैसे जान सकता है? जलबिन्दुको जलधिका कैसे ज्ञान हो सकता है? तितली बागीचेकी उत्पत्ति कैसे समझ सकती है? बुद्धि जो ऊंचीसे ऊंची कल्पना कर सकती है, ईश्वर उससे अनन्तगुण बड़ा है।

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि, "बुद्धिसे ईश्वर-सिद्धिकी चेष्टा करना सीढ़ियोंसे चढ़कर स्वर्गमें पहुंचनेके समान है।" कुछ वेदान्ती ईश्वर वा ब्रह्मको अनिर्वचनीय कहते हैं। वे इस सम्बन्धमें उपनिषदुका यह वाक्य उद्धृत करते हैं—"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" अर्थात् 'वहाँसे वाणी, मनके साथ, लौटकर चली आती है।' फलतः ईश्वरका निर्वचन नहीं हो सकता। असीमको समझनेकी चेष्टा करनेवालेको लक्ष्य करके राबर्ट ब्राउनिगने कहा है कि, "मनुष्य-जीवनसे तो कुत्तेका जीवन अधिक सुखदायक है; क्योंकि कुत्तेके अन्दर जिज्ञासाकी खुजली और ज्ञानकी भूख नहीं होती। मनुष्यकी बुद्धि ईश्वरका आशीर्वाद भी है और अभिशाप भी है। बुद्धि मनुष्यको ईश्वर-सम्बन्धी शङ्का-समाधानके भँवरमें दिन-रात घुमाती रहती है। बुद्धि उसे भाँति-भाँतिके सन्देहोंसे व्यथित करती रहती है और उसे उस अनन्तकी ओर उड़ाना चाहती है, जो उसके लिये अज्ञेय है।" अनेक धार्मिक तो यहाँतक कहते हैं कि, "जिसे हम जान सकेंगे, जिसका हम विश्लेषण कर सकेंगे, वह हमसे छोटा हो जायगा। फिर ऐसे ज्ञात ईश्वरमें सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता नहीं रहेगी। वह तो उपासकका केवल एक गुण बन जायगा।" दार्शनिक रूसोका कथन है कि, "ईश्वरको मैं जितना ही कम समझता हूं, उतनी ही अधिक भक्तिके साथ उसकी

प्रार्थना करता हूं।"

कहा जाता है कि, यदि बुद्धि-जन्य ज्ञानकी व्यापकतासे ईश्वर जाना जा सकता, तो संसारके कितने ही विद्वान नास्तिक क्यों बने रहते ? बुद्धि-वादका चश्मा तो आध्यात्मिक दृष्टिकी मन्दताका द्योतक है। बेकन साहबका कहना है कि, "दर्शनशास्त्रका अल्प ज्ञान मनुष्यको परमात्मासे विमुख बना देता है ।" ऐसे लोगोंका विश्वास है कि, "हम ईश्वरको जान नहीं सकते, ईश्वर बन सकते हैं, हम ईश्वरको समझ नहीं सकते, अन्तर्ज्ञानके द्वारा ईश्वरका अपरोक्षानुभव कर सकते हैं । परमात्माकी प्राप्ति बुद्धिके विकासका फल नहीं है, वह आत्माके उद्बोधका परिणाम है, इसीलिये कितने ही दार्शनिक नास्तिक होते हैं और कितने ही निरक्षर पुरुष सिद्ध योगी हो जाते हैं।" अतः ईश्वरका साक्षात्कार चर्मचक्षुसे नहीं, आभ्यन्तर चक्षुसे, आन्तरिक प्रक्रियासे, आत्म-निग्रह, आत्मशुद्धि और आत्मज्ञानसे ही हो सकता है। कल्पना, कला, काव्य आदिके द्वारा हम तिमिराच्छन्न मन्दिरके स्वामीकी अस्पष्टसी झलक भर पा सकते हैं । साधारण जन तो क्या, ईश्वरानुभवी भी ईश्वरका रूप उसे नहीं बता सकते, जो कोरा तार्किक हैं। जिसने अंगूरकी मिठास नहीं चखी, उसे अंगूरकी मिठासका ज्ञान कोई क्या करा सकता है ? 'बाँझ क्या जाने प्रसूतिकी पीड़ा ?"

ऐसे ही विचारवालोंमें प्रो० नाइट हैं, जिन्होंने "Aspects of Theism" नामक अपने ग्रन्थमें ईश्वरको तर्कों, प्रमाणों और युक्तियोंसे असाध्य माना है। उन्होंने ईश्वर-सिद्धिके लिये पेश किये जानेवाले Ontology (सत्यविद्या वा वस्तु-तत्त्व-वस्तुस्वभाव-विद्या), Cosmology (सृष्टिविकास-विद्या) और Teleology (प्रयोजन-मूलक विद्या) के प्रमाणोंका खण्डन करनेकी चेष्टा की है। नाइट साहबका मत है कि, यह ठीक है कि, ज्ञान ही शक्ति है, परन्तु वह ज्ञाताकी बुद्धि-शक्तिसे ससीम है; इसलिये वह सदा परिच्छिन्न रहता है और ऐसी ज्ञान-शक्तिके अन्दर अपरिच्छिन्न शक्तिका समावेश नहीं हो सकता। इसलिये मनुष्यकी बुद्धि संदिग्ध है और वह सत्य-दर्शनमें असमर्थ है। इसी विचारके समर्थक हेनरी बर्गसों, बर्ट्रेंड रसेल और काउंट केसरलिन आदि पाश्चात्य विद्वान् हैं, जिनके मतसे आन्तर ज्ञान (Intuition) के बिना सत्य-तत्त्वकी प्राप्ति होना असम्भव है। आन्तर ज्ञानकी प्रक्रिया आत्माकार होती है। इस भीतरी ज्ञानके द्वारा सत्यका प्रकाश तुरत बुद्धिपर पड़ता है। एक तरहसे इस ज्ञानको प्रत्यक्ष अनुभव भी कह सकते हैं। इस ज्ञानमें नैसर्गिक ज्ञानकी प्रत्यक्षता भी रहती है और बुद्धि-जन्य ज्ञानका अनुभव भी रहता है। बुद्धिजन्य ज्ञानकी प्रक्रिया विषयाकार होती है—इसमें बाहरसे ज्ञान पाया जाता है। बुद्धिके द्वारा केवल निश्चल पदार्थोंका बोध होता है और आन्तरिक

ज्ञानके द्वारा निश्चल और सचल—दोनों पदार्थोंका ग्रहण होता है। बुद्धिमें निर्माणकी शक्ति होती है और आन्तर ज्ञानमें सृजनकी शक्ति होती है। बुद्धि वर्ण-विन्यास करती है और आन्तरिक ज्ञान कविके हृदयको दिव्य प्रतिभा प्रदान करता है। क्राइस्ट वा ईसामसीहने कहा है कि, आन्तर ज्ञानवाले पुरुष धन्य हैं; क्योंकि वे ही ईश्वरका साक्षात्कार करते हैं। आन्तर ज्ञान नहीं होनेसे संसारमें ईश्वरीय सत्ताका अनुभव नहीं किया जा सकता। जिन्हें आन्तरिक ज्ञान नहीं है, उनके लिये ईश्वरकी सत्ताको अस्वीकृत करना वैसा ही है, जैसा सूर्यके प्रकाशको चमगीदड़का न मानना।

हम भी आन्तर ज्ञानका महत्त्व उतना ही समझते हैं, जितना पूर्वोक्त विद्वान् समझते हैं; परन्तु हम इस बातको माननेके लिये तैयार नहीं हैं कि, ईश्वर तर्कसे सिद्ध नहीं हो सकता। हमारे मतसे ईश्वर तर्क, युक्ति, प्रमाण, उदाहरण, अनुभव, शास्त्र, सन्तोंके वचन, विश्वास आदि सभी मार्गोंसे सिद्ध होता है; इसीलिये इस ग्रन्थमें हमने इन सारी बातोंका आश्रय लेकर ईश्वर-सिद्धि करनेकी चेष्टा की है। कैंटके शब्दोंमें "ईश्वरकी सत्ता और आत्माकी अमरताको स्वतः सिद्ध" मानते हुए भी हम कैंटके इन शब्दोंके कायल नहीं हैं कि, "ईश्वर और आत्मा तर्कसे सिद्ध नहीं हो सकते।" ईश्वर-प्राप्तिमें ईश्वर-विश्वासको सरलतम मार्ग मानते हुए भी हम इस सम्बन्धमें बुद्धि और विवेकका एकदम बहिष्कार करनेके

पक्षपाती नहीं हैं। विवेक-बुद्धिके बहिष्कारका अर्थ ही है दर्शनशास्त्र (Philosophy) का बहिष्कार कर केवल धर्म-शास्त्रीय वचनोंपर विश्वास करना। हम मानते हैं कि, धर्म-शास्त्रीय वचन तपःपूत ऋषियोंके हजारों वर्षोंके अनुभवोंसे प्रसूत हैं; परन्तु साथ ही हम यह भी मानते हैं कि, तर्क-प्राण दर्शनशास्त्र भी उन्हीं ऋषियोंके विमल मस्तिष्कसे प्रसूत हैं। ईश्वर-विश्वास और धर्म-श्रद्धा परम आवश्यक हैं; किन्तु जैमिनिकी "धर्म-जिज्ञासा" और व्यासकी "ब्रह्मजिज्ञासा" भी कम आवश्यक नहीं हैं। जिज्ञासा ही ज्ञानकी जननी है। जिसमें जिज्ञासा नहीं, वह सदसद्-विवेक कैसे कर सकता है? भले ही बुद्धिमें असीम तत्त्व सर्वांशतः नहीं समा सके; परन्तु उसकी झलक तो बुद्धिसे अवश्य मिलती है। क्या कोई भी ब्रह्माण्डका राई-रत्ती हाल जानता है? नहीं। तो भी जिज्ञासा और तर्क-वैभवके द्वारा उसका असंदिग्ध अस्तित्वका तो निश्चय कर ही डालता है। वायु, ईथर, परमाणु आदिका सर्वाङ्गतः ज्ञान न हो; परन्तु प्रयोग, निरीक्षण आदिके द्वारा बुद्धिको उनकी सत्तामें तो सन्देह नहीं रह जाता? इसके सिवा विवेक-बुद्धिसे प्राप्त ज्ञानके द्वारा उत्पन्न ईश्वर-विश्वास प्रबलतम और स्थायी होता है। फलतः, हमारे मतसे, ईश्वर-सिद्धिमें अन्य साधनोंको मानते हुए ईश्वर-विश्वासको गौरव देना विशेष महत्त्व-पूर्ण है। अन्य साधनोंको उड़ा देना एकदेशी-

यता है और वर्तमान युगके विपरीत भी है। केवल ईश्वर-विश्वासी लोगोंकी बुद्धिवादका खण्डन करनेवाली पूर्वोक्त युक्तियोंका खण्डन करना हम अनावश्यक समझते हैं; क्योंकि इस पुस्तकको पढ़नेपर उनका आप ही आप खण्डन हो जाता है। विस्तार-भयसे यहाँ हम अधिक नहीं लिखना चाहते। मुख्य बात यह समझिये कि, ज्ञानमय ईश्वरको अज्ञेय मानना बिलकुल व्यर्थ है। चेतन, आत्मा और परमात्मा पद-पदपर जाने जाते हैं। यदि ये अज्ञेय हों, तो सारा संसार ही अज्ञेय हो जाय, आत्म-ज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान आदि शब्द निरर्थक हो जायँ और "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" से लोगोंको घृणा हो जाय! तब "जन्माद्यस्य यतः", "सर्वं खल्विदं ब्रह्म", "अयमात्मा ब्रह्म", "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" आदि वचनोंकी क्या दुर्गति हो? तब तो "तस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति" को कोई भी नहीं पूछेगा! हमारे विचारसे नाइट आदि विद्वान् विश्वास-की तीव्र भावनामें ईश्वरको अज्ञेय वा अज्ञात कह बैठे हैं, अद्वैतवादियोंने भी ईश्वर-निर्वचनके साथ द्वैतापत्ति आ पड़नेके डरसे ईश्वर वा ब्रह्मको अनिर्वचनीय आदि कहा है।

हमारे यह सब लिखनेका यह मतलब नहीं है कि, हम विश्वासका कम महत्त्व समझते हैं। नहीं। विश्वासको हम परमात्म-साक्षात्कारका सरल मार्ग मानते हैं और

विश्वासमें अमोघ शक्ति भी मानते हैं। हमारे यहाँ "विश्वासः फलदायकः" बहुत पुरानी कहावत है। एक आदमीको ज्वर आ रहा है, दवा करते-करते और कुनैन देते-देते डाक्टर परेशान हो गये हैं, वह अच्छा नहीं होता। परन्तु उसी रोगीके पास एक साधु आता है और उसकी बाँहमें कोई यन्त्र बाँध देता है। बस, देखते ही देखते साधुके यन्त्रपर दृढ़ विश्वास करनेवाला रोगी चंगा हो जाता है! नारायण सिंहका एकलौता लड़का बीमार होता है। वह उसे लेकर पटना और कलकत्ता दौड़ आते हैं; परन्तु लड़केका रोग घटनेके बदले बढ़ जाता है। इतनेमे कमण्डलु लिये एक सन्त पहुंचता है और रोगीको 'भभूत' दे देता है। रोगी उसे फाँकनेके साथ ही हंसने लगता है, उसके शरीरमें हलकापन और स्फूर्त्ति मालूम पड़ने लगती है और वह वर्षोंका रोगी एक ही दिनमें भला-चंगा हो रहता है। ऐसे एक-दो नहीं, हजारों और लाखों उदाहरण बराबर देखनेमें आते हैं। बल्कि इतनी दूरतक देखा गया है कि, जहर खाकर भी मनुष्य दृढ़ विश्वास कर लेता है कि, 'मैंने जहर नहीं खाया है' और उसका बाल भी बाँका नहीं होता। इस बातका एक उदाहरण "सुखमार्ग" के लेखक स्व० डा० महेन्दुलाल गर्गने दिया है। अमेरिकामें डाक्टर साहब एक बार बहुत लोगोंके सामने जहर खाकर और यह विश्वास करके कि, 'मैंने जहर नहीं खाया

है' टहलने लगे थे। फलतः डाक्टर साहबका कुछ भी नहीं बिगड़ा था ।

वस्तुतः विश्वासमें प्रचण्ड शक्ति है । लघु भ्रमर एक कीड़ेको पकड़कर अपने बिलमें ले जाता है । कीड़ा विश्वासके प्रबल वेगमें भ्रमरका अतीव ध्यान करने लगता है । एक ही दिनमें कीड़ा भ्रमर बन जाता है! इसीको कहा गया है—"कीटोऽयं भ्रमरीभवत्यतिनिदिध्यासात् ।" यह कथानक प्रसिद्ध है कि, गुहामें अवस्थित एक साधुके यहाँ एक भैंसका चरवाहा उपदेश लेने गया । साधुने उसके चित्तकी शान्तावस्थाकी परीक्षा लेनेके लिये उससे कहा कि, "तुम अपनी प्यारी भैंसका दृढ़ विश्वासके साथ छः महीने ध्यान धरकर आओगे, तब मैं तुम्हें उपदेश दूंगा ।" चरवाहेने ऐसा ही किया । छठे महीनेके अनन्तर चरवाहा साधुके यहाँ पहुंचा । साधुने उसे गुफाके ही अन्दर बुलाया । चरवाहेने उत्तर दिया—"महाराज, मेरी सींगें गुफाके दरवाजेपर ही अंटक जायँगी ! मैं भीतर कैसे आऊं?" साधुने समझ लिया कि, 'यह आस्था और ध्यानमें पक्का हो गया है, अब यह उपदेशका अधिकारी है ।" अन्तको साधुने उसे उपदेश दिया और कुछ ही समय बाद चरवाहा नामी योगी बन गया । ऐसे दृष्टान्तोंकी कमी नहीं है। यह बात बिलकुल ठीक है कि, अपने जीवन-में सफलता पानेके लिये आत्मविश्वास बहुत बड़ा साधन

है। वस्तुतः मनुष्य विश्वास और श्रद्धाका रूप है। भागवत गीतामें ठीक कहा गया है कि—

"श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।"

अर्थात् पुरुष वा मनुष्य श्रद्धामय है और जिसपर उसकी अटूट श्रद्धा है, वही वह हो जाता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि, विश्वास और श्रद्धाके बल भक्त भगवान् बन सकता हैं। कोई भी व्यक्ति परीक्षा करके इस बातको देख सकता है। आप कुछ हो देरके लिये ईश्वरपर विश्वास कीजिये, आपका हृदय शान्ति, नम्रता, उदारता, समता, परोपकारिता, ज्ञानाधिकता और आनन्दातिरेकता आदि दैवी गुणोंसे भरने लगेगा। ईश्वर-विश्वासी जीवन-मरणकी समस्याको खिलवाड़में हल कर डालता है, वह मृत्युञ्जय हो जाता है।

तामसिक अन्ध विश्वासकी बात हम नहीं कहते; परन्तु सात्त्विक श्रद्धा और विश्वास ही मनुष्यकी जीवन-नौका है। बाइबिलके शब्दोंमें "We walk by faith, not by sight" अर्थात् हम श्रद्धाके सहारे चलते हैं, नेत्रोंके नहीं। वस्तुतः परमात्म-प्राप्तिमें श्रद्धा वा विश्वास अव्यर्थ उपाय है। टेनीसनने कहा है—

"I Strech lame hands of faith and grope,
And gather dust and chaff and call.
To What I feel is lord of all,

And faintly trust the larger hope."

अर्थात् 'मैं श्रद्धाके लूले हाथोंको फैलाकर इधर-उधर टटोलता और धूलि एवम् भूसा इकट्ठे करके उस परमात्माको पुकारता हूं। मैं समझता हूं कि, वह सबका प्रभु है; और, इस प्रकार, उस महत्तर आशामें विश्वास करता हूं, चाहे वह विश्वास दृढ़ न हो।'

जिन्हें तर्कों और अन्य प्रमाणोंसे "ईश्वर सिद्ध" नहीं जँचता हो और जो संदिग्ध होकर "संशयात्मा विनश्यति" के अनुसार अपने जीवनको नष्ट करनेवाले हों, उनके लिये टेनीसनके शब्दोंमें यही उपाय श्रेष्ठ है—

"By faith and faith alone embrace,
Believing where we can not prove."

अर्थात् 'हमें श्रद्धाका ही आश्रय लेना उचित है; क्योंकि जिस विषयको हम तर्कके द्वारा सिद्ध नहीं कर सकते, उसके लिये विश्वासके सिवा कोई गति नहीं।'

श्रद्धाने मानव-जातिके मार्गमेंसे जटिलताओंके दुर्गम पर्वतोंको दूर कर दिया है और अपने भक्तोंके जीवनमें चमत्कार भर दिये हैं। संदिग्ध जीवनको दूर करनेके लिये इससे बढ़कर कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। हमें मिथ्याभिमान छोड़कर ईश्वर-विश्वास करना चाहिये और रिक्टर (Richter) के इस वाक्यपर आस्था करनी चाहिये कि, "मनुष्यकी विचारशक्तिका सबसे उत्कृष्ट नमूना ईश्वर-विश्वास ही है।" सुदृढ़ ईश्वर-

विश्वासके अनन्तर हमें योगका आश्रय लेना चाहिये और प्लाटीनस (Plotinus)के कथनानुसार हमें अभीष्ट वस्तुमें घुल-मिलकर एक हो जाना चाहिये। फिर हम न तो ईश्वरके सिवा कुछ जान सकते हैं, न अनुभव कर सकते हैं। तब हम सारी सृष्टिमें उस एकको ही देखेंगे और उसीमें विलीन हो जायँगे। हम विश्वके साथ एकता स्थापित कर लेंगे और विश्वको उसकी ही झाँकी समझेंगे। ईश्वरके साथ मिल जानेपर योगीको जो अलौकिक आनन्द मिलता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है? वाणीसे उसका वर्णन करनेसे तो उस आनन्दका बहुतसा अंश विलीन हो जाता है। मैक्स-मूलरकी धारणासे ऐसे ही योगी धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्रमें एकता स्थापित करते हैं और ऐसे ही योगियोंसे समाजमें सुव्यवस्था स्थापित होती है, देशका अभ्युदय होता है, ईश्वरीय कानूनोंकी रक्षा होती है और सरस-सुन्दर शान्ति-सौरभसे धरिणी गमगमाती रहती है। पिछले दिनोंमें ऐसे ही योगी थे परमहंस रामकृष्ण, तुकाराम, क्राइस्ट, महम्मद, नरसी मेहता, कबीर, तुलसी, सूर, चैतन्य, नामदेव, हाफिज, जलालुद्दीन रूमी, स्वामी तैलङ्ग, स्वामी रामतीर्थ आदि आदि। धन्य हैं वे देश, जिन्होंने संसारमें सुख-शान्तिकी सरिता बहानेवाले ऐसे आनन्द-मूर्त्ति पुरुष-पुङ्गव उत्पन्न किये।



ईश्वर और संसारके कुछ प्रसिद्ध धर्म

संसारके सभी धर्म चैतन्य, दैवी शक्ति वा आध्यात्मिक जगत्पर विश्वास करके चले हैं और तीनोंका मूल ईश्वर ही है; इसलिये अब हमें यह देखना है कि, संसारके कुछ अतीव प्रसिद्ध धर्म ईश्वरके सम्बन्धमें क्या विचार प्रकट करते हैं। स्थानाभावके कारण, नमूनेके तौरपर, यहाँ हम कुछ ही धर्मोंका परिचय और उनकी रायें लिखेंगे।

क—पारसीधर्म और ईश्वर

जरथोश्त्री धर्म (ईरानी वा पारसी धर्म) के प्रवर्त्तक स्पितम जरथुश्त्र थे। इनकी जीवनी पढ़नेसे मालूम पड़ता है कि, ये कोई हिन्दू-अवतार थे! ईरानी भी आर्य ही हैं।

पारसी धर्मकी मूल पुस्तक "अवस्ता" जेन्द वा पहलवी भाषामें है। इसे पारसी लोग ईश्वरीय उपदेश मानते हैं। इसमें २१ गाथाएं (ऋग्वेदकी तरह मण्डल=मन्त्र-समूह) थीं। परन्तु प्रबल आक्रामक सिकन्दरने शराबके नशेमें जिस समय ईरानके "परसे पोलिस" महलको जलाया था, उस समय महलमें रखी कितनी ही गाथाएं नष्ट हो गयीं; कुछ गाथाओंको ग्रीक सेनापति भी उठा ले

गये ! शेष लगभग पाँच गाथाओंकी वर्तमान "अवस्ता" है। इसके अनन्त शब्द ऋग्वेदसे मिलते हैं। "अवस्ता"में आर्य-निवासकी प्रशंसा भी है। "अवस्ता"में कई तरहकी भाषाएं भी हैं।

अंग्रेज ऐतिहासिकोंके मतसे ३००० वर्षसे लेकर ४००० के भीतर इसकी रचना हुई है। इसी "अवस्ता"में लिखा है कि, पूर्व समयमें इरान वा पारसमें अधर्म, अत्याचार आदिका अकण्टक राज्य हो गया था। इसी समय गौका रूप धारण कर और भगवान्के यहाँ जाकर पृथिवीने निवेदन किया—"भगवन्, मेरे ऊपर भयंकर संकट आ पड़ा है। मुझे बचानेवाला कोई नहीं है। मेरा उद्धार करनेवाले वीरका मुझे दर्शन कराइये, ताकि मेरे दुःख दूर हो।" प्रसन्न होकर भगवान्ने कहा कि, "धीरज धरो। यह काम मैं जरथुश्त्रको सौंपूँगा। वही तुम्हारा उद्धार करेगा।"

कुछ दिनों बाद इरानके राजवंशज पोउरुशस्पकी पत्नी दोग्दो (दुग्धोवा) को गर्भ रहा। गर्भवृद्धिके साथ दोग्दोका शरीर तेजोमय होता जाता था। गर्भस्थ शिशु इतना प्रकाशमय था कि, वह माताके उदरसे ही दीखता था। उधर अत्याचारी बादशाहको अपशकुन दिखाई देने लगे। बालकका जन्म इरानके रए वा रघ शहरमें हुआ। जनमते ही बालकने चारों दिशाओंको प्रचण्ड तेजसे उद्भासित कर दिया।

उसका हंसमुख चेहरा देखकर देखनेवाले आनन्दसे नाचने लगे। उसका नाम स्पितम रखा गया। बालकके बधके लिये बादशाह और सरदारोंने प्रायः वैसे ही प्रयत्न किये, जैसे प्रह्लादके बधके लिये हिरण्यकशिपुने किये थे। परन्तु बालकका बाल भी बाँका नहीं हुआ; क्योंकि वह अनन्य ईश्वर-भक्त था।

स्पितमकी जन्म-तिथि कितने वर्षोंकी है? इसका कुछ ठीक-ठीक उत्तर नहीं मिलता। यूरोपियन स्पितमको जनमे ३५०० से ४५०० वर्षतक मानते हैं। जो हो, स्पितमकी शिक्षा-दीक्षा उसके पिताके ही द्वारा हुई। १५ वर्षकी उम्रमें स्पितमने जटिल विपिनमें जाकर लगातार १५ वर्षों-तक घोर तपस्या की। तपस्याके समय जो सब लालच बुद्ध-को मारने और ईसाको शैतानने दिखाये थे, वैसे ही लालच अहेरेमनने स्पितमको दिखाये। परन्तु स्पितम टससे मस नहीं हुआ। अन्तको स्पितम सिद्ध हो गया—उम्र भी ३० वर्षोंकी हो गयी। स्पितमका नाम अब अशो जरथुश्त्र पड़ा। अशो ऋषिको कहते हैं और जरथुश्त्र सुनहरी ज्योतिको।

अब जरथुश्त्रने ईश्वर-भक्तिका प्रचार करना प्रारम्भ किया। परन्तु धर्म-प्रचारमें उन्हें वैसी ही कठिनाई झेलनी पड़ी, जैसी ईसा, बुद्ध, महम्मद आदिको झेलनी पड़ी थी। अन्तको वे रघ आदि पश्चिमी इरानसे पूर्वी इरान (बलख वा बैक्ट्रिया) के बादशाह वीश्तास्प वा गुश्तास्पके

यहाँ आये। बादशाहके ऊपर जरथुश्त्रके उपदेशका ऐसा प्रभाव पड़ा कि, वह अपने दो मन्त्रियोंके साथ उनका अनुयायी बन गया! पृथिवीका बोझ हल्का हुआ—इस नये धर्मकी पताका फहराने लगी। संक्षेपमें इस धर्मकी बातें सुनिये—

जैसे इरानी वा पारसी आर्य भारतीय आर्योंके भाई हैं, वैसे ही उनका पारसी वा इरानी धर्म भी हिन्दू धर्मका भाई ही समझ पड़ता है। जैसे हमलोग कितने ही देवी-देवता मानते हुए भी अद्वितीय ब्रह्मको मानते हैं, वैसे ही ये इरानी भी खुरशीद=ह्वर (सूर्य), मास् (चन्द्र), मिथ्र (मित्र), यिम (यम) आदिको मानते हुए भी एक अहुरमज्द वा अहुर (ईश्वर) को मानते हैं। असुरको ही वे अहुर कहते हैं। ऋग्वेदके कितने ही मन्त्रोंमें बली, स्वामी आदिके अर्थोंमें तथा अग्नि, वरुण आदिके विशेषणोंमें असुर शब्द आया है। असुर शब्दका राक्षस अर्थ तो ऋग्वेदके पिछले भागोंमें है। पारसी धर्ममें भी ब्राह्मण (आथ्रव), क्षत्रिय (रथएस्तार), वैश्य (वास्त्र्य) आदि वर्ण हैं। हमारे ही समान पारसियोंमें भी यज्ञोपवीत संस्कार (नवजोत) होता है और जैसे हम जनेऊ, मेखला और शिखा धारण करते हैं, वैसे ही वे भी सुदरेह, कुस्ती और टोपी धारण करते हैं। हाँ, उनका सुदरेह कमरमें ही रहता है और उसमें ७२ धागे रहते हैं। वे भी यात्रा, गृह-प्रवेश आदिमें 'साइत' देखते हैं।

जनेऊके समय, ७ वर्षकी उम्रमें, हिन्दुओंके पवित्र गोमूत्रको पारसी भी मुँह और हाथोंमें मलकर मुँह-हाथोंको विशुद्ध करते हैं। उनके भी विवाहमें ब्राह्मण संस्कृत भाषामें पद्य पढ़कर आशीर्वाद देते हैं। गोरक्षा करना उनका प्रिय धर्म हैं। वे कभी सिगरेट नहीं पीते। वे भी परलोक मानते हैं। दानधर्मका उनमें बड़ा महत्त्व है। इसके लिये वे भारत भरमें प्रसिद्ध हैं। उनमें एक भी भिखमंगा नहीं मिलेगा। उनकी स्वच्छता तो आदर्श है। एक लाखके करीब पारसी बम्बई, अहमदाबाद, सुरत आदिमें हैं और दस हजारके करीब येज्द (इरान) में। परन्तु कुछ दिनोंसे उनकी संख्या जोरोंसे बढ़ रही है; क्योंकि इरानके वर्त्तमान बादशाह पारसी धर्मके प्रचारमें उत्तेजना दे रहे हैं। वैदिक-धर्मावलम्बियोंकी ही तरह वे भी अग्निपूजक हैं और बाकू (कास्पियन) से लेकर बाम्बे प्रेसिडेंसीतक उनके प्रायः ३४ अग्निमन्दिर हैं, जहाँ अग्नि अखण्ड रूपसे प्रज्वलित रहती है। उनके धर्मका उपदेश है पवित्र विचार, पवित्र वचन और पवित्र कर्म। हां, उनका शव-संस्कार विचित्र होता है।

पापियोंको क्षमा-दान और धर्मराज्यकी रक्षाके लिये वे सोना, नहाना, खाना आदिके पहले और पीछे ईश्वरकी प्रार्थना करते हैं। उनका ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, दयालु आदि है। ईश्वरीय नियम "अष" (सत्य) का मार्ग है। प्राणि-

मात्रकी सेवा करना, सच्चरित्र रहना, दरिद्रोंको सहायता करना, सारे कामोंको भगवदर्पण करना आदि उनके महत्त्वपूर्ण धर्माङ्ग हैं। मतलब यह समझिये कि, जनता-जनार्दनकी सेवा करना और ईश्वर-भक्तिके द्वारा अपनेमें दिव्य प्रकाश भरकर अपना सदाके लिये उद्धार करना ही पारसी धर्मका मुख्य उद्देश्य है और यह उद्देश्य हिन्दू-धर्मसे मिलता-जुलता है।

ख—जैनधर्म और ईश्वर

इस धर्मके प्रवर्त्तक ऋषभदेव माने जाते हैं। ऋषभदेवका उल्लेख महाभारतमें है। ये हिन्दुओंके चौबीस अवतारोंमें भी माने गये हैं। बहुत लोगोंका मत है कि, बौद्ध धर्मसे यह धर्म पुराना है और इसीसे बौद्ध धर्म निकला है। जो हो, इस धर्मके प्रधान प्रचारक अन्तिम तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर हुए हैं। कितने ही ऐतिहासिक आजसे २५३६ वर्ष पूर्व, चैत्र-शुक्ला त्रयोदशीमें, इनका जन्म मानते हैं। वैशाली (मुजफ्फरपुर)के पास कुण्डपुर वा कुण्डलपुरमें इनका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम राजा सिद्धार्थ था। इनकी माता त्रिशला वैशालीके सम्राट् चेटककी राजकुमारी थीं। मगध-राजवंशसे वैशाली

राजवंशका सम्बन्ध था । ३० वषकी उम्रमें महावीर जंगल चले गये और वहाँ साढ़े बारह वर्ष घोर तप किया । इसके अनन्तर प्राय: ३० वर्षोंतक मगध आदिमें इन्होंने धर्मके प्रचारका कार्य किया । इन्होंने सब ५ लाख २४ हजार लोगोंको शिष्य बनाया था ! ईसाकी ८वीं और ६ वीं सदियोंमें जैनधर्म भारतमें बड़ा ही प्रबल था ।

इस धर्ममें दो सम्प्रदाय हैं—दिगम्बर और श्वेताम्बर। भोजन-समयको छोड़कर अन्य समयोंमें दिगम्बर रंगीन कपड़े धारण करते हैं और श्वेताम्बर सफेद। दोनोंमें थोड़ासा ही मतभेद है। इनका धर्मशास्त्र "कल्पसूत्र" और "आगम" नामक दो भागोंमें विभक्त है। इस धर्मके अनेक सुन्दर ग्रन्थ संस्कृत, मागधी और प्राकृत भाषाओंमें हैं। जैनोंके मतसे संसारका लय नहीं होता—केवल अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नामके दो युग ही संसारमें होते रहते हैं। पहलेमें अच्छेसे बुरा काल आता है और दूसरेमें बुरेसे भला। इन युगोंके प्रत्येक भागमें २४ जिन (तीर्थङ्कर), १२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव और ६ वासुदेव प्रकट हुआ करते हैं। नित्यसिद्ध, मुक्तात्मा और बद्धात्मा नामके तीन विभागोंमें मनुष्य विभक्त हैं। इनकी पाँच प्रतिज्ञाएं हैं—(१) चोरी नहीं करना, (२) झूठ नहीं बोलना, (३) किसीको क्लेश नहीं पहुंचाना और किसीका बध नहीं करना, (४) मन, वचन और कर्मसे न्याय-परायण होना तथा (५) अनुपयुक्त आशा नहीं करना। जैन निर्वाण (कैवल्य =

मुक्ति)को मानते हैं। मुंहमें कीड़ा न चला जाय, इस डरसे जीव-दया-परायण जैन जलको सदा गर्म करके पीते हैं और वर्षा तथा रातमें नहीं खाते। कितने ही जैन, इसी डरसे, प्रार्थनाके समय मुंहपर कपड़ा डाल लेते हैं, हवाका रुख बचाते हैं और जहाँ बैठते हैं झाड़ू वा कपड़ेसे सफाई करके। ये अपना धर्म वेद-समर्थित बताते हैं। महावीर स्वयं वेदज्ञ थे। ये सनातनी हिन्दुओंकी ही तरह जन्मान्तर, परलोक, मूर्त्तिपूजा, देवता आदि भी मानते हैं। जैनों और बौद्धोंमें हिन्दुओंकी ही तरह पुराण भी हैं। बौद्ध भी इन चारों बातोंको मानते हैं। हाँ, भारतके लिये इन दोनों सम्प्रदायोंमें यह फर्क अवश्य है कि, बौद्ध नाम मात्रके लिये ही भारतमें हैं और जैन एक बड़ी सख्यामें। जैन प्रायः धनी हैं और भारतका बहुतसा समुद्री व्यापार उनके हाथोंमें है।

कहा जाता है कि, जैन ईश्वर जैसी कोई वस्तु नहीं मानते; परन्तु उनकी प्रार्थनाको पढ़नेसे तो स्पष्ट मालूम पड़ता है कि, वे ईश्वरको खूब मानते हैं। उनकी प्रार्थनामें "भगवन्त", "परमेश्वर", "अविनाशी", "अजर-अमर", "सकल-सुरासुर-नरवर-नायक", "कृपारस-सिन्धु," "जगजननाथ," "अशरण-शरण", अपारभवोदधि-तारण", "निरञ्जन," "जगदीश" आदि शब्द आये हैं। कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति कह सकता है कि, ईश्वरके सिवा अन्य किसीके लिये भी इन शब्दोंका प्रयोग नहीं हो सकता। यह दूसरी

बात है कि. ईश्वरके लिये जैन "जिनराज", "तीर्थङ्कर" आदि शब्दोंका प्रयोग करते हैं। हिन्दू भी तो ईश्वरके लिये विष्णु, राम, कृष्ण आदि शब्दोंका प्रयोग करते ही हैं। इसके सिवा जैसे हिन्दू विष्णु, राम आदिको ईश्वर मानकर उनकी मूर्त्तिकी पूजा करते हैं; वैसे ही जैन भी तीर्थङ्करोंको ईश्वर मान कर उनकी मूर्त्तिकी पूजा करते हैं। फलतः हमारे परमेश्वर और जैनोंके "परमेश्वर" एक ही हैं तथा उन्हींकी तरह सब मनुष्य भी परमेश्वरको "निरञ्जन," "जगदीश", "अशरण-शरण" आदि मानते हैं।



ग—बौद्धधर्म और ईश्वर

ईसासे ६२३ वर्ष पहले (किसी-किसी मतसे ५५६ वर्ष पहले) कपिलवस्तु (नेपालकी दक्षिणी सीमा) में राजा शुद्धोदनने एक पुत्र-रत्न प्राप्त किया। गर्भावस्थामें ही शुद्धोदनने अपनी पत्नी माया देवीको उनके नैहर देवदह भेज दिया। रानी रोहिणी नदीके पश्चिमी तटपर लुम्बिनी वन (रुम्मितदेई) स्थानपर पहुंचकर एक शालवृक्षके नीचे विश्राम करने लगीं। वहीं उन्होंने उक्त पुत्र-रत्नको पाया। ७ दिनों बाद ही रानीका देहान्त हो गया और शिशुकी विमाता गौतमीने शिशुका लालन-पालन करना शुरू किया। क्षत्रियोंके शाक्यवंशमें उत्पन्न होनेके कारण

बालकका नाम शाक्य सिंह पड़ा। एक नाम सिद्धार्थ भी रखा गया। बालक सदा ईश्वर-चिन्तन और साधु-सेवामें निरत रहने लगा। इस बातकी चर्चा चारों ओर फैल गयी। सिद्धार्थ ईश्वरीय तेजसे उद्भासित होने लगा।

१६ वर्षोंकी उम्रमें सिद्धार्थका विवाह उनके मामा दण्डपाणिकी कन्या गोपा वा यशोधरासे कर दिया गया। परन्तु उनका चित्त ईश्वर-भजनमें ही लगा रहता था—भोग-विलाससे वे कोसों दूर भागते रहते थे। एक दिन उन्होंने बन्दिनियोंका गीत सुना। उस गीतने उनके अन्तःकरणपर जादूकासा काम किया। सिद्धार्थ दिन-रात इसी चिन्तामें रहने लगे कि, संसारसे अत्यन्त दुःख-निवृत्ति कैसे होगी? परम शान्ति कैसे मिलेगी? प्राणियोंका कष्ट कैसे हटाया जा सकेगा?

इसी बीच एक विचित्र घटना घटी। शामको रथपर सवार होकर राजपुत्र सिद्धार्थ भ्रमणके लिये जा रहे थे। रास्तेमें उन्होंने एक ऐसे दुखिया बूढ़ेको देखा, जिसके केश सफेद हो गये थे, कमर झुक गयी थी और शरीरमें हड्डी भर रह गयी थी। उसे देखते ही उनका हृदय करुणा-विगलित हो गया—ऐसे दुःखीको देखकर वे भावावेशमें आ गये—रथको महलमें लौटनेका आदेश किया। वैराग्यकी आग धधकने लगी। कुछ दिनों बाद उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम राहुल रखा गया। राहुलके जन्मके सातवें ही

दिन अपने पिता और पत्नीसे किसी तरह अनुमति लेकर सिद्धार्थ परम शान्तिकी खोजमें निकल पड़े।

ईश्वर-चिन्तनमें तत्पर सिद्धार्थ पहले वैशालीके पास पहुंचे। वहाँ "आलार" नामक विद्वान्से शिक्षा ग्रहण की। वहाँसे राजगृह गये। वहाँ कुछ दिन ठहरकर ऋषि रुद्रकसे आध्यात्मिक शिक्षण प्राप्त किया। तदनन्तर वे उरुवेल जाकर तपस्या करने लगे। वहाँ पाँच संन्यासी उनके शिष्य हुए। वहाँसे सिद्धार्थ गया गये, जहाँ एक वट-वृक्षके नीचे ६ वर्षोंतक उन्होंने घोर तपस्या की। असुर मारने उनकी तपस्यामें बड़े-बड़े विघ्न डाले; परन्तु सिद्धार्थ अपने व्रतपर अटल बने रहे। अन्तको वे सिद्ध हो गये—उन्हें दिव्य ज्ञान मिल गया। अब उनका नाम बुद्ध (ज्ञानी) पड़ा।

सिद्ध होकर बुद्ध मृगदाव (सारनाथ, बनारस) आये और वहाँ सर्व-प्रथम धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन किया वा धर्मप्रचार प्रारम्भ किया। वहाँ क्रमशः उनके ६० शिष्य हो गये। उनके उपदेशका सार है—समता, सेवा, दया आदि। उनके उपदेशके आठ अङ्ग ये हैं—सद्विचार, सत्संकल्प, सद्वाक्य, सत्कर्म, सदुपायकी जीविका, सच्चेष्टा, सत् स्मृति और सम्यक् समाधि। ये उपदेश सच्चे हृदयसे निकले हुए थे; इसलिये इनकी ओर लोग खूब ही आकृष्ट होने लगे। वहाँसे बुद्ध राजगृह गये और वहाँके राजा बिम्बि-

सारको शिष्य बनाया। इसके अनन्तर कपिलवस्तु गये और अपने एक मात्र पुत्र राहुलको, प्रायः सात वर्षकी उम्रमें, दीक्षा देकर भिक्षु (बौद्ध साधु) बनाया। वहाँसे अनेक स्थानोंमें जाकर धर्म-प्रचार करने लगे। १३ वर्ष बाद पुनः कपिलवस्तु लौटे और इस बार अपनी पत्नीको भी दीक्षा देकर भिक्षुणी बनाया। उनकी पत्नीके नेतृत्वमें कितनी ही स्त्रियाँ भिक्षुणियाँ बनीं। इस प्रकार जेतवन, कौशाम्बी, राजगृह, वैशाली, पावा आदि-आदि स्थानोंमें उन्होंने ४५ वर्षतक धर्म-प्रचार किया। अन्तको ८० वर्षकी उम्रमें कुशीनगर (गोरखपुर) में उन्होंने शरीरत्याग किया।

हिन्दुओंकी ही तरह बौद्धोंके भी पुराण-ग्रन्थ हैं—अनेक दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थ भी हैं। इन ग्रन्थोंको देखनेसे मालूम पड़ता है कि, बुद्ध और उनके अनुयायी परलोक, पुनर्जन्म, आत्मा, देवता, मूर्त्तिपूजा आदि मानते थे। कृश-गौतमीको उपदेश देते समय भी बुद्धने देवताकी चर्चा की है। ईसाकी पूर्वी सदीके बाद जो संघमित्रा, महेन्द्र, कुमारजीव, पिन्दोल भारद्वाज, गुणवर्मन, दीपंकर श्रीज्ञान, शान्तरक्षित, शुभंकर मिश्र आदिने सिलोन (लंका), बर्मा, तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया आदिमें बौद्ध धर्मका प्रचार किया, उसमें इनमेंसे कई एकने परलोक, जन्मान्तर आदिकी बातोंके प्रचारके साथ-साथ तान्त्रिक धर्म (वज्रयान=वाममार्ग) का भी प्रचार किया। इस तरह स्पष्ट ही

विदित होता है कि, बुद्धधर्म केवल हिन्दू धर्मका अङ्ग है। हिन्दू भी ऋषभदेवकी ही तरह बुद्धको भी अवतार मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि, बुद्धमें ईश्वरीय ज्योति थी और वे ईश्वरावतार थे। बुद्धदेव वेदोंके भी विद्वान् थे। हिंसाका विरोध करके उन्होंने जो सेवा-दयाका प्रचार किया, वह एकदम उपयुक्त था। उनका समत्व-वाद तो ऋग्वेदके अन्तिम सूक्तका अनुवाद ही है।

कहा जाता है कि, बौद्धधर्म नास्तिक है। अब हमें इसी बातको देखना चाहिये। हमारे यहाँ भट्टोजी दीक्षितने लिखा है—"नास्ति परलोको यस्मिन् मते असौ नास्तिकः।" (सिद्धान्त कौमुदी) इसका मतलब यह हुआ कि, जो परलोकको नहीं मानता, वह नास्तिक है। यदि नास्तिकका यही मतलब है, तब तो बौद्ध धर्म आस्तिक धर्म है; क्योंकि बौद्ध परलोकको मानते हैं। नास्तिकका दूसरा लक्षण मनुजीका है—"नास्तिको वेद-निन्दकः" अर्थात् वेदकी निन्दा करनेवाला नास्तिक है। परन्तु बुद्ध स्वयं वेदज्ञ थे—चार्वाकोंकी तरह वेदोंकी निन्दा भी उन्होंने नहीं की है। बौद्धधर्म वेदके बलि-प्रधान याज्ञिक अंशका ही विरोधी है। इस अंशके विरोधी तो ब्रह्मसमाजी, सिख आदि भी हैं। परन्तु उन्हें नास्तिक नहीं कहा जाता है। श्रीकृष्णने भी गीतामें "त्रैगुण्यविषया

वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" आदि कहकर वेदके याज्ञिक अंशकी उपेक्षा की है। कोई-कोई कहते हैं कि, निष्काम कर्म और ज्ञानकी महिमा बतानेके लिये श्रीकृष्णने वेदके इस अंशका—सकाम कर्मका खण्डन किया है। इसी प्रकार सम्भव है कि, परलोक-वादी बौद्धों और जैनोंने भी दयाकी महिमा दिखानेके भावावेशमें वेदके याज्ञिक अंशका खण्डन किया हो। वेदके ज्ञानकाण्ड, ऐतिहासिक और आचार-विचार-सम्बन्धी मन्त्रोंका खण्डन तो ब्रह्मसमाजी, सिख, जैन, बौद्ध आदिमेंसे कोई भी नहीं करता।

गीताके "जगदाहुरनीश्वरम्" श्लोकसे उसे ही नास्तिक मानना झलकता है, जो ईश्वरको नहीं मानता। अब हमें यह देखना है कि, बौद्धोंमें यह लक्षण कहाँतक घटता है। बौद्धोंके हीनयान और महायान नामके दो प्रधान सम्प्रदाय हैं। उनका वज्रयान तो वाममार्ग है ही। हीनयानमें वैभाषिक और सौत्रान्तिक तथा महायानमें योगाचार और माध्यमिक नामक वर्ग हैं। इन चारोंकी विचार-सरणि हिन्दू-दर्शनोंकीसी है। ईश्वरके सम्बन्धमें इनके प्रायः वे ही विचार हैं, जो कपिल और जैमिनिके हैं। कपिलने "दुर्विज्ञेय" समझकर अपने दर्शनमें ईश्वरसिद्धिकी आवश्यकता नहीं स्वीकृत की है। बुद्ध और उनके अनुयायी बौद्धोंने भी ईश्वरको "अव्याकरणीय" कहा है। शङ्कराचार्य और उनके अनुयायियोंने भी ईश्वरको "अनिर्वचनीय" माना है। "अव्या-

करणीय" और "अनिर्वचनीय" शब्दोंका प्रायः एक ही अर्थ है और यदि शङ्कर और उनके अनुयायी नास्तिक नहीं हैं, तो बुद्ध और उनके अनुयायी भी नहीं। वस्तुतः महायानाचार्य नागार्जुनका शून्यवाद और शङ्कराचार्यका ब्रह्मवाद एक ही चीज जँचते हैं—ऐसा बहुतोंका मत है। नागार्जुनका सारा महायान उपनिषदोंपर ही आश्रित है। हीनयानके "कथावत्थु"में जो बुद्धका "तुषितस्वर्ग"में रहना लिखा है, उससे भी कुछ लोग ईश्वर-सिद्धिका अनुमान करते हैं। भिक्षु सोयेन शाकु नामके एक प्रसिद्ध जापानी बौद्धने जो ईश्वरके सम्बन्धमें विचार प्रकट किया है, उससे भी बौद्ध धर्म नास्तिक नहीं जँचता। जापानी भिक्षुने कहा है कि, "ईश्वर शब्दका स्पष्ट उल्लेख न रहनेपर भी बौद्धोंके "धर्म-काय" और "समता" शब्दोंका अर्थ ईश्वर समझा जा सकता है।" उक्त भिक्षु कहते हैं कि, 'जो पदार्थ हमारे चारों ओर दिखाई देते हैं, वे सब एक अन्तिम कारणसे उत्पन्न होते हैं, जो सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्व-प्रिय है। यह जगत् उस कारण अथवा आत्माका व्यक्त रूप है। × × × जो जगत् ईश्वरमें नहीं है, वह मिथ्या है। * * * अनेक एकमे है और एक अनेकमे है। ईश्वर और जगत्के विषयमें बौद्धोंकी यही धारणा है। × × यह नहीं समझना चाहिये कि, ईश्वर केवल समस्त व्यष्टिका समूह मात्र है। बल्कि समस्त सृष्टिके नष्ट हो जानेपर भी वह रहता है। वह नित्य है और इस जगत्के नष्ट होनेपर वह पल

भरमें दूसरे जगत्की सृष्टि कर सकता है। × × × × हमारे जीवनकी अन्तर्गुहामें जो अनुभूति होती है, उसे ही लोग गाड, अल्लाह, धर्मकाय, ताव, ब्रह्म ईश्वर आदि कहते हैं।" उक्त भिक्षुने ईश्वरके सम्बन्धमें जो मत व्यक्त किया है, उससे तो स्पष्ट विदित होता है कि, बौद्ध भले ही ईश्वरको धर्म-काय, समता आदि, नाम दें; परन्तु वे ईश्वरको मानते हैं; इसलिये नास्तिक नहीं हैं। भिक्षुके उपदेशोंका अनुवाद "Sermons of a Buddist Abbot" नामसे अंग्रेजीमें डा० डी० टी० सुज्ञुकिने किया है। यह ग्रन्थ पढ़ने लायक है।

बौद्ध दर्शन कर्मसे अदृष्ट, अदृष्टसे सन्तति और सन्ततिसे कर्म फल मानता है। कर्मका साक्षी आत्माको मानता हैं। इधर कुछ सनातनी कर्मका साक्षी ईश्वरको मानते हैं; परन्तु सांख्यवादी और मीमांसक सनातनी तो आत्माको ही कर्म-साक्षी मानते हैं। तो क्या इतनेसे ही ये नास्तिक गिने जायँगे ? कभी नहीं। विशुद्ध आत्मा और ईश्वर-सत्तामें फर्क ही कितना है ? यह बात भी कैसी तो लगती हैं कि, बौद्ध लोग क्लिष्ट-कल्पना-प्रसूत परलोकको मानें और विश्वके ज्ञानियोंके द्वारा समर्थित ईश्वरको नहीं मानें ! इसके सिवा यह बात भी निर्विवाद है कि, अपने साधक-जीवनमें बुद्ध ईश्वर-भक्त थे और कदाचित् ईश्वर-कृपासे ही वे सिद्ध हुए थे।

कोशल-राजके मनसा ग्राममें वशिष्ठ ब्राह्मणको उपदेश देते समय बुद्धने ब्रह्म वा ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार

किया है और भिक्षुओंको ही ब्रह्म-सायुज्यका अधिकारी बताया है।

यह बात भी है कि, बौद्ध लोग अपनी प्रार्थनामें बुद्धको "पूर्ण-प्रज्ञ" और "भगवान्" आदि कहते हैं और गन्ध, धूप, दीप आदिसे बुद्धकी मूर्त्तिकी उसी प्रकार पूजा करते हैं, जिस प्रकार हिन्दू राम, कृष्ण आदिको "भगवान्" आदि कहते और उनकी मूर्त्तियोंकी गन्ध आदिसे पूजा करते हैं। राम, कृष्णकी ही तरह बुद्ध भी पुराणोंमें ईश्वरावतार कहे गये हैं। अतः राम, कृष्ण आदिका भक्त यदि आस्तिक है, तो बुद्धका भक्त भी आस्तिक है। वस्तुतः यह कहना अपनेको ही ठगना है कि, अवलोकितेश्वरका पूजक नास्तिक है।

फलतः जो लोग कहते हैं कि, बौद्ध-धर्मानुयायी समस्त पूर्वी और उत्तरी एशिया नास्तिक है; इसलिये संसारमें नास्तिकोंकी सख्या अधिक है, वह भूले हुए हैं। सारे बौद्ध सनातनियोंका अनुधावन करनेवाले हैं—उन्हींकी तरह मूर्त्ति-पूजक और ईश्वरावतारको ईश्वर माननेवाले हैं।

घ—ईसाई धर्म और ईश्वर

ईसाई धर्मके प्रवर्त्तक क्राइस्ट, ईसा मसीह वा यीशू खृष्टका जन्म आजसे १९३७ वर्ष पहले वेतलहम वा नेजा-

रेथ (जुडिया, फिलस्तीन) में हुआ था। परमेश्वरके एक दूतने कुमारी मेरीको एक स्वप्न दिखाया, जिससे उनको गर्भ रह गया। इसी गर्भसे ईसाका जन्म हुआ—यह बात ईसाई धर्म-ग्रन्थोंमें लिखी है। ईसाई ईसाको 'अशिश्नसम्भव' और 'ईश्वरीय पुत्र' बताते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि, मेरीका पति जोसेफ बढ़ई था। शिशु-हन्ता हेरडके भयसे ईसाको ईजिप्टमें गड़ेरियेके घरपर रखकर उनका पालन-पोषण किया गया था। उनकी पालिका एलिजाबेथ थीं। ईजिप्ट जाते समय जाडेने नदीका जल, पार होनेके लिये, सूख गया था।

बाल्य कालसे ही ईसा धर्म-प्राण थे, ईश्वर-चिन्तनमें निरत रहनेवाले थे। चौदह वर्षकी उम्रमें ईसा घरसे बाहर निकल गये और तत्काल प्रचलित यहूदियोंके धर्म-ग्रन्थोंका अध्ययन किया। इसके अनन्तर 'जान'से दीक्षा लेकर ३० वर्षकी उम्रतक ईश्वर-विषयक कठिन साधना की। अब ईसा धर्म-प्रचारमें प्रवृत्त हुए। इनके उपदेशका सार है—ईश्वरपर विश्वास, परस्पर भ्रातृ-भाव, अक्रोध, क्षमा, पवित्र जीवन आदि। लगातार तीन वर्षोंतक प्रचार करनेपर जेले मालो आदि १२ मनुष्य इनके शिष्य हुए। पुराने धर्मके अनुयायी यहूदी इस नये धर्मका प्रचार होते देख कर जल गये और ईसाके लिये नाना तरहका षड्यन्त्र रचने लगे। यद्यपि ईसाने ईश्वरीय बलपर अनेक प्रकारके

आश्चर्यकारी कर्म कर दिखाये; परन्तु यहूदियोंने इनपर बिलकुल विश्वास नहीं किया। अन्तको इनके प्राण-वधके लिये एक भीषण षड्यन्त्र रचा। राजदरबारमें इनके ऊपर अभियोग चलाया गया। इनके बारहो शिष्योंमेंसे जुडास इस-कारियट नामक शिष्यने इनको पकड़ा दिया। षड्यन्त्र तैयार था ही, पोंटियस पाइलेट नामके जजने प्राण-दण्डका हुक्म सुना दिया। अब क्या था; यहुदियोंने क्रूस (शूली) पर इन्हें लटका दिया और बड़ी निर्दयतासे इनके हाथों-पैरों आदिमें पिरेक वा कील ठोंककर इन्हें मार डाला। उस समय भी इस निर्दोष धर्म-वीरने जल्लादोंके लिये ईश्वरसे क्षमा माँगी थी!! उस दिन शुक्र था—तभीसे वह दिन Good friday कह कर प्रसिद्ध हुआ। इनके जन्म-दिवससे ही ईसाइयोंका वर्षारम्भ गिना जाने लगा और इन दिनों तो इनका ईस्वी सन् विश्व-व्यापी हो रहा है।

अब हमें यह देखना है कि, ईश्वरके सम्बन्धमें ईसाई धर्मका क्या विचार है। ईसाई ईश्वरको सगुण मानते हैं। उनका विश्वास है कि, ईश्वरकी पूर्ण अभिव्यक्ति ईसाके विग्रहमें हुई है। ईसा मनुष्यकी देहमें अवतीर्ण ईश्वर हैं और व्यक्त अथवा अव्यक्त रूपसे सदा इस संसारमें वर्त्त-मान रहते हैं। ईश्वर ईसाके विग्रहको माध्यम बना कर हमारे साथ सम्पर्क करता है और हमारे सम्पर्कका भी विषय होता हैं। ईसा ईश्वरके सर्व-श्रेष्ठ पुत्र हैं। आत्माको

वहीं उनका अन्तकाल हो गया । मृत्युके अनन्तर ही ५७० ईस्वीमें हजरत महम्मदने जन्म लिया । ६ वर्षके बाद अमीना और ८ वर्षके बाद इनके पितामह अबदुल मतालबका भी देहान्त हो गया । ८ वर्षतक पितामह और इसके बाद चाचा अबूतालेबने महम्मदका लालन-पालन किया। फलतः इनकी शिक्षा नहीं हो पायी, कुरानमें इन्हें "उम्मी" लिखा गया है, जिसका मतलब है, कम पढ़ा-लिखा।

१३ वर्षकी उम्रमें महम्मद अपने चाचाके साथ, ऊँटोंके गिरोहको लिये, व्यापार करनेकी इच्छासे, सीरिया गये। व्यापारके ही सिलसिलेमें वह अफ्रीका, मेसोपोटामिया आदि भी गये। इस तरह वह २५ वर्षकी उम्रतक आर्थिक झमेलेमें रहे। इसके बाद खदीजा वा खदेजा नामकी एक धनाढ्या स्त्रीके साथ ५९५ में इनका विवाह हो गया। विवाहके समय खदीजाकी उम्र ४० वर्षोंकी थी। अब महम्मद रुपये-पैसेके चक्करसे निश्चिन्त हो रहे।

कहते हैं, उस समय अरबमे इस्माइल वा इब्राहीम धर्मका प्रचार था—मूर्त्तिपूजा खूब प्रचलित थी, परन्तु इस धर्मके अनुगामियोंमें बराबर आपसी धार्मिक झगड़े हुआ करते थे। महम्मद सबमें मेल और सबकी उन्नति चाहते थे। इसी चिन्तामें डूबते-उतराते महम्मद एक दिन मक्केके पास गारहीरा नामकी गिरि-गुहामें चले गये और प्रायः तीन वर्षतक वहीं एकान्त-निवास करते रहे। इसके अन्तर इनकी

तपस्या पूरी हुई और स्वर्गीय दूत जिब्राइलने ६१० ई०में इन्हें कुरान वा ईश्वरीय वाणी दी। इसके अनुसार ये धर्म-प्रचारमें प्रवृत्त हुए।

पहले इनकी स्त्री, हजरत अली, अबूबकर, उस्मान गनी आदि ही इनके शिष्य हुए। परन्तु कुछ दिनोंके बाद इनके ६१६ अनुयायी बन गये। इसके अनन्तर इनके शिष्योंका बल बढ़ने लगा, जिसके फल-स्वरूप सन् ६१६ में फारसको जीतकर वहाँ इस धर्मका प्रचार किया गया। ६१७ में इस नये धर्मके प्रचारका मक्केमें इतना विरोध हुआ कि, इनके कितने ही साथी अबीसीनिया भाग गये। परन्तु इनके साथियोंने अबीसीनियाके बादशाहको अपना सहायक बना लिया। महम्मदके जबर्दस्त साथी जफर थे। इधर मक्कावालोंका विरोध क्रमशः इतना तीव्र हुआ कि, उन लोगोंने मक्केके चारो ओर घेरा डाल दिया। महम्मद और इनके साथियोंके भूखों मरनेकी नौबत आ पहुँची। अन्तको महम्मद किसी तरह भाग कर तईफ चले गये। वहींसे विद्रोहियोंसे इनकी सन्धि हुई। परन्तु विद्रोही शान्त होनेवाले नहीं थे। वे फिर नाना प्रकारके अत्याचार करने लगे। आखिर ६२२ ई०में ये मक्केसे भागकर मदीना चले गये। इसी समयसे हिजरी संवत् चला।

मदीनेमें इनका धर्म-प्रचार गुप्त रूपसे चलने लगा। परन्तु कुछ ही दिनोंमें बात प्रकट हो गयी, जिससे विद्

कर इनके शत्रुओंने इनका वध कर डालना चाहा। परन्तु भाग्य-वश महम्मद बच गये और अबूबकरके साथ भूखे-प्यासे ये पर्वतकी एक गुफामें जा छिपे। यहूदी और क्रिश्चियन भी इनके विरोधियोंमें थे। अन्तको इन्हें शस्त्र-युद्ध छेड़ना पड़ा। कुछ ही दिनोंमें इनके अनुयायियोंने सारे अरबको अधिकृत करके इस नये धर्मका प्रचार किया। सीरियाके भी बहुत हिस्से जीत कर वहाँ भी मुसलमान धर्मका प्रचार किया गया।

प्रसिद्ध ईश्वर-भक्त और मानव-हितैषी हजरत महम्मदने शिष्योंके सामने, ६२ वर्षकी उम्रमें, सफर चाँदकी २० तारीखको, अपनी पत्नी आयशाकी गोदमें सिर रखकर देहत्याग किया। आयशाके शयन-मन्दिरमें ही इनको समाहित किया गया।

हजरत महम्मदके चलाये इस्लाम धर्ममें सबसे पहला नियम नमाज पढ़ना है। संघबद्ध नमाज (ईश्वर-प्रार्थना) करनेकी बड़ी महिमा है। इससे मुसलमानोंके संगठनमें भी बड़ी सहायता पहुंचती है। स्त्री, पुरुष—सबको नमाज पढ़नेकी विधि है। प्रतिदिन पाँच बार नमाज पढ़ना जरूरी है।

रोजा (उपवास) करनेकी विधि इस धर्ममें जरूरी है। सालमें रमजान नामके महीनेमें एक महीनेतक स्त्री, पुरुष—सबको निरन्न और निर्जल रहनेका नियम है। रोजेको

समाप्तिपर ईदुलफित्र (खुशीका भाग) अदा करनेका कायदा है ।

प्रत्येक मुसलमानको अपनी आमदनीका चालीसवाँ भाग गरीबोंको देनेका विधान है ।

संसार भरके मुसलमानोंको सालमें एक बार मक्के-मदीनेका दर्शन करना चाहिये । सालमें एक दिन ईदुज्जुहा (आदर्श त्याग-काल) भी नियत किया गया है । इस दिन संसारके मुस्लिम प्रतिनिधि इकट्ठे होकर सच्चरित्रता, परोपकार, ईश्वर-भक्तिके प्रचार आदिपर विचार-विनिमय करते हैं ।

कुरान शरीफपर विश्वास कर उसके बताये मार्गपर चलनेका नियम भी जरूरी है ।

संगठनके ही खयालसे मुसलमान धर्ममें एक ही ईश्वर, एक ही प्रकारकी मसजिद, एक रस्म-रिवाज, एक भूषण, एक भाषा, एक पैगम्बर (ईश्वरीय प्रचारक) हजरत महम्मद, एक धर्म-ग्रन्थ (कुरान) आदि नियत हैं । यही कारण है कि, मुसलमानोंमे इतना बड़ा संगठन और धार्मिक तत्परता है ।

ईश्वरके सम्बन्धमें मुसलमानधर्मका मत पढ़िये—

क—ईश्वर एक और सर्वशक्तिमान है तथा निराकार रूपमें सारे भूमण्डलका शासक है ।

ख—ईश्वरको छोड़कर दूसरेकी प्रार्थना और भक्ति कभी

नहीं करनी चाहिये ।

ग—माफी माँगनेसे (तोबा करनेसे) वह सारे कसूरोंको माफ करता है ।

घ—ईश्वर कर्म-फल-दाता है और रोज-कयामत वा प्रलयके दिन सबके पाप-पुण्यका विचार करके विशेष फैसला करेगा ।

संक्षेपमें यह समझिये कि, मुसलमान धर्ममें ईश्वर सर्व-व्यापक, अजन्मा, अदृश्य, अनोखा, अलबेला, अपरम्पार, कौतुकी, दयालु और निर्विकार आदि भी है।

छ—सिखधर्म और ईश्वर

सिखधर्मके प्रवर्त्तक नानकका जन्म लाहोरसे पाँच कोस दक्षिण, नानकाना गाँवमे, सन् १४६९ ई०में, हुआ था। इनके पिताका नाम कालूवेदी था। वे क्षत्रिय थे और गाँवके जमींन्दारके पटवारी भी थे। नानककी माताका नाम त्रिपता था। कुलपुरोहित प० हरदयालने नानक नाम रखा था और इनका भविष्य बड़ा महत्त्व-पूर्ण बताया था । ९ वर्षकी उम्रमें नानकका उपनयन किया गया। नानक बड़े ही शान्त स्वभावके बालक थे । इन्हें पण्डित वैद्यनाथने संस्कृत और कुतुबुद्दीन मुल्लाने फारसी और अंग्रेजीकी शिक्षा दी ।

किशोरावस्थामें ही वर्णमालाके एक-एक अक्षरको लेकर नानक वैराग्यसे भरी कविता बनाया करते थे। किसी साधु वा फकीरको देखकर नानक उपदेश वा बातचीत सुननेको लालायित हो जाया करते थे। उधर कालूवेदी डरने लगे कि, लड़का कहीं साधु न हो जाय!

कुछ दिनोंके बाद नानकको कालूवेदीने एक दूकानका भार सौंपा। एक बार दूकानका सामान खरीदनेके लिये नानक एक साथीके संग कहीं जाने लगे। रास्तेमें उन्होंने कुछ संन्यासियोंको देखा। अब क्या था, वे कामको भूलकर उन लोगोंके पास बैठ गये और संन्यासियोंके द्वारा प्रभावित होकर पासमें जो कुछ था, उससे उनके लिये भोजन-सामग्री खरीद कर दे डाली! अन्तको खाली हाथ घर लौटे! इस कामसे इनके पिता बड़े दुःखी हो गये और इन्हें घर छोड़ देनेको कहा। नानक घर छोड़कर अपनी बहनके पास सुलतानपुर चले गये। वहाँ बहन और बहनोईके बहुत समझानेपर इन्होंने एक चावल-दालकी दूकान खोली। दूकानसे काफी आमदनी होने लगी। अन्तको बहन नानकीके बहुत कहने-सुननेपर चौनी नामकी कुल-ललनासे इन्होंने विवाह किया और अब अपना घर अलग बना कर रहने लगे। यथासमय श्रीचन्द्र और लक्ष्मीदास नामके इनके दो पुत्र हुए। यह सब तो हुआ; परन्तु जन्मसे ही नानकमें जो प्रचण्ड वैराग्य-तेज था, वह कैसे उन्हें घरमें

रहने देता ? फलतः २७ वर्षकी उम्रमें घर-बार छोड़कर नानक संन्यासी हो गये। परिव्राजक बन जानेपर नानक जहाँ जाते, वहीं धर्मका बाह्य आण्डम्बर देखकर बहुत दुःखित हो पड़ते। इनका चित्त कहीं भी नहीं लगा। देश-देशान्तर घूमते-फिरते ये मक्का (अरब) भी पहुँच गये। कहा जाता है कि, एक दिन नानक मसजिदकी ओर पैर करके सोये हुए थे। इतनेमें वहां एक मुल्ला आया और इनके ऊपर बेतरह बिगड़ा। इन्होंने बड़ी नम्रताके साथ उत्तर दिया—"आप नाराज क्यों हो रहे हैं ? जिस तरफ अल्लाह नहीं हों, उसी तरफ मेरे दोनों पैर कर दीजिये।" मुल्ला आश्चय-चकित होकर चुपचाप चला गया। नानक अरबसे लौट आये। इस विकट यात्रामें भी नानकदेवको शान्ति नहीं मिली।

कहा जाता है कि, साधक नानक एक बार एक नदीमें स्नान करने गये और वहीं अदृश्य हो गये। तीन दिनोंके अनन्तर फिर प्रकट हुए। किंवदन्ती है कि, वे तीन दिनोंके लिये एक विष्णु-दूतके द्वारा वैकुण्ठ ले जाये गये थे। वहीं वे दीक्षित करके पृथिवीपर गुरुमहिमाके प्रचारके लिये भेजे गये।

तबसे नानक विशुद्ध गुरुवादी हो गये। उनका विश्वास था कि, सद्गुरुकी कृपासे ही सत्य धर्म और शान्तिकी प्राप्ति हो सकती है।

इसके अनन्तर नानकने देश-भ्रमण छोड़ दिया और गुरुदासपुर जिलेके इरावती-तटस्थ करतालपुर नामक गाँवमें

अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ रहने लगे। नानककी अनन्य ईश्वरोपासना, पवित्र चरित्र, सरल व्यवहार और उत्तम उपदेशसे आकृष्ट होकर लोग इनके शिष्य होने लगे। नानक बाह्याडम्बरके बड़े द्रोही थे और सभीको ईश्वर-भजनका उपदेश देते थे। इन्हें मुसलमान भी पूज्य समझते थे। ७० वर्षकी उम्रमें इन्होंने देह-त्याग किया।

सिख धर्म सरल धर्म है। इसमें ईश्वरके अनन्तर गुरुके अतिरिक्त किसीकी पूजा नहीं की जाती। यह धर्म ईश्वरको निराकार मानता है और उसे राम, रहीम, अल्लाह, खुदा, गोविन्द, हरि आदि सभी नामोंसे पुकारता है। इस धर्मका धर्म-ग्रन्थ "आदि श्रीगुरुग्रन्थ साहब" गुरुमुखी भाषामें है।

ईश्वर कालातीत है; इसलिये वह "अकाल पुरुष" कहा गया है। वह सृष्टि-कर्त्ता, निर्भय, निर्वैर, अमर, अजन्मा, स्वतः-प्रकाश, सर्वशक्तिमान्, न्यायाधीश आदि है। ईश्वर-भक्ति ही सबसे बड़ा धर्म है। ईश्वर-कीर्त्तन, ईश्वर-स्मरण आदि सदा करते रहने चाहिये। आत्मा ईश्वरीय अंश है; इसलिये उसका परम धर्म है ईश्वर-भक्तिके द्वारा अपनेको ईश्वरमें मिला देना। इसके लिये हर एक श्वास और प्रश्वासके साथ ईश्वरकी याद करनी चाहिये। सिखोंका गुरु-मन्त्र है "वाह गुरु।" परन्तु "वाह गुरु" का जप करते समय भी ईश्वरका ही ध्यान रखना पड़ता है। परमात्मा सर्व-व्यापी है; इसलिये जंगलों, कन्दराओं वा

तीर्थोंमें उसे ढूंढ़ना व्यर्थ है। ईश्वर सर्व-द्रष्टा है, इसलिये ऐसा कोई काम किसी सिक्खको नहीं करना चाहिये, जो ईश्वरको बुरा लगे।

ज—थियासफिकल सोसाइटी और ईश्वर

मैडम हेलेना पेट्रोवना ब्लावस्की इस सोसाइटीकी संस्थापिका हैं। इनके पूर्वज जर्मन थे। वे रूस आकर बस गये थे। वहीं सन् १८३१में ब्लावस्कीका जन्म हुआ। ये १७ वर्षकी उम्रमें एक ६० वर्षके बूढ़ेसे ब्याह दी गयीं; परन्तु कुछ हो दिनोंके अनन्तर विवाह-विच्छेद हो गया। इसके अनन्तर ब्लावस्की यूरोप, अमेरिका और एशियामें बहुत दिनोंतक घूमती रहीं। नेपालसे तिब्बत जानेकी चेष्टा विफल होनेपर १८५५ में छद्म-वेश धारण कर ये काश्मीर होकर तिब्बतकी ओर चलीं। परन्तु कुछ दूर जानेपर रास्ता भूल गयीं और घूम-फिर कर सीमा प्रान्त पहुंच गयीं! इसके अनन्तर सारे भारतमें घूमकर ये १८७३ में अमेरिका चली गयीं। वहाँ इन्हें नागरिकताका अधिकार मिल गया। इस हैसियतसे छः वर्ष न्यूयार्कमें रहीं। वहीं इन्होंने प्रेत-तत्त्वका आन्दोलन शूरू किया और कर्नल अलकाटके सहयोगसे १८७५ में थियासफिकल

सोसाइटी (ब्रह्मविद्या-परिषद्)की स्थापना की। प्रत्येक धर्मके अनुयायियोंको उनके धर्मका रहस्य समझना ही इसका उद्देश्य रखा गया। सभी जातियोंमें भ्रातृत्वकी स्थापना भी इसका एक उद्देश्य माना गया। ब्लावस्की बड़ी बुद्धिमती थीं और अनेक तरहके चमत्कार कर दिखाती थीं। इससे वे कुछ ही दिनोंमें जगत्प्रसिद्ध हो उठीं। जिस समय वे कर्नल अलकाटके साथ भारतवर्ष पहुँचीं, उस समय यहाँ एक हलचलसी मच गयी थी।

लोग कहते हैं कि, कुथुमीलाल नामके एक तिब्बत-निवासी साधु इनके गुरु थे। यह भी कहा जाता है कि, गुरुजी सूक्ष्म शरीर धारण करके ब्लावस्कीको उपदेश दिया करते थे। उन्हीं गुरुजीकी इच्छासे थियासफिकल सोसाइटीकी स्थापना हुई थी और उसका प्रधान कार्यालय भारतवर्षको बनाया गया था। कुछ दिनोंके अनन्तर बहुत लोग ब्लावस्कीके विस्मयकारक कार्योंको चालाकी कहने लगे और सोसाइटीसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। परन्तु इससे ब्लावस्की जरा भी विचलित नहीं हुईं।

१८८१ में वे इंगलैंड चली गयीं और वहाँसे "Lucifer the light Bringer" नामका एक पत्र निकालना शुरू किया। १८६१ (८ मई)में वहीं इनका देहान्त हो गया।

ब्लावस्कीकी लिखी "Secret Doctrine", "Isis Unv-

eiled" आदि पुस्तकें विश्व-विख्यात हैं। पहली पुस्तकको पढ़कर ही डा० एनी बेसेंट इनकी शिष्या बनी थीं। ब्लावस्कीकी मृत्युके अनन्तर डा० बेसेंट ही थियासफिकल सोसाइटीकी अध्यक्षा थीं, जिनके समान ग्रन्थ लिखने और व्याख्यान देनेवाली स्त्री कदाचित् ही संसारमें उत्पन्न हुई हो—ऐसा बहुतोंका मत है।

थियासफिकल सोसाइटी ईश्वरके दो रूप मानती है—सत्ता मात्र (Be-ness) अर्थात् इस व्यक्त जगत्से अतीत और व्यक्त रूप (Be-coming) अर्थात् जो जगत्में ओत-प्रोत है। सत्ता मात्रको कूटस्थ, परब्रह्म, तत्, अव्यक्त, निर्गुण, अविकारी आदि कहा जाता है और व्यक्तको ब्रह्मका निःश्वास, जीवन आदि कहा जाता है, जिसका स्वरूप अविच्छिन्न गति, अपरिच्छिन्न देश तथा अनन्त काल है।

जीवनका स्वरूप व्यवस्था है और इसीके कारण जीवन क्रिया, देश और काल नामक तीन रूपोंमें अभिव्यक्त होता है। इसी व्यवस्थाके कारण वह अव्यक्त दशामें भी जाता है। पुनः व्यवस्थाकी प्रेरणासे जाग कर जीवन क्रिया, देश और कालके रूप विश्वको व्यक्त करता है। जीवनका स्व-रूपभूत व्यवस्थाका नाम कर्म है, जिसे कार्य-कारण-भाव कह सकते हैं। कणसे लेकर सूर्यतक विश्वके जितने पदार्थ हैं, वे सब किसी न किसी कारणके कार्य हैं और स्वयं भी जन्य कार्योंके कारण हैं। बस, यह व्यवस्था

प्रत्येक परमाणु, शरीर और व्यवहारमें अखण्ड रूपसे कार्य करती है और यह सर्वशक्तियुक्त व्यवस्था वा जीवन ही ईश्वरका व्यक्त रूप है। यह सर्वव्यापक है। यह मनुष्यमें कुछ विकसित रूपमें है और इस विकासकी पूर्णता प्राप्त करना ही मनुष्यका लक्ष्य होना चाहिये। परोपकार, सेवा, ईश्वरोपासना आदिसे यह पूर्णता प्राप्त होती है और इसके प्राप्त होने ही मनुष्य मुक्त हो जाता है। थियासफी मतका यही सार है, जो भागवत गीतासे बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

ईश्वरवादकी व्यापकता

पहले जो कई प्रकरण लिखे गये हैं, उनसे हमारे पाठकोंको मालूम हुआ होगा कि, ईश्वरवादसे हिन्दूधर्म ओत प्रोत है। वस्तुतः वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषद्, कल्पसूत्र, धर्म-शास्त्र, पुराण, तन्त्र आदि सब ईश्वरवादको दुन्दुभि बजानेवाले हैं। हमारे छहो दर्शनोंमेंसे सांख्यदर्शनने जो ईश्वरकी असिद्धि मानी है, उसके कई कारण हैं। इन कारणोंको हमने इस ग्रन्थके "ईश्वर और सांख्यदर्शन" नामक अंशमें लिखा है। उन्हें पढ़नेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि, सांख्य भी वस्तुतः अनीश्वरवादी दर्शन नहीं है। योगदर्शनमें तो "ईश्वर-प्रणिधान"की बात है ही। यद्यपि

न्याय और वैशेषिक दर्शनोंके प्रतिपाद्य अन्य विषय हैं; परन्तु इन दर्शनोंके अनेक ग्रन्थोंमें, अकाट्य प्रमाणोंसे, ईश्वर-सिद्धि की गयी है। न्याय और वैशेषिक दर्शनोंकी ईश्वर-प्रतिपादक युक्तियोंको जो सज्जन विशद रूपसे देखना चाहें, वे उदयनाचार्यकी "न्यायकुसुमाञ्जलि" और गङ्गेशोपाध्यायकी "ईश्वरानुमानचिन्तामणि" देखें। जैमिनीय मीमांसाका प्रतिपाद्य वैदिक-कर्म-कलाप है; परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि, वह नास्तिक दर्शन है। कुमारिल भट्टने "श्लोकवार्त्तिक"में यह लिखा है कि, 'हमारे मतमें ईश्वरास्तित्व नहीं है।" इसका इतना ही मतलब है कि, "अनुमानके द्वारा ईश्वर-सिद्धि नहीं हो सकती।" कुमारिलका यह अभिप्राय कभी नहीं था कि, उपनिषदादिमें विवृत ईश्वर है ही नहीं। प्रसिद्ध ग्रन्थ "शास्त्र-दीपिका"में भी इसी अभिप्रायका वचन है। न्यायमतालोचनके अनन्तर "भाट्ट-चिन्तामणि" और "मीमांसा—न्यायप्रकाश"के जो वचन हैं, वे भी इसी विचारका अनुमोदन करते हैं। इन ग्रन्थोंके मतानुसार मीमांसा ईश्वर-द्रोही दर्शन नहीं है। वेदान्तदर्शन तो ईश्वरवादका जीता-जागता चित्र है ही। इसीलिये हमने इस ग्रन्थमें सभी दर्शनोंसे अधिक वेदान्तदर्शनका विवरण लिखा है। इसके अतिरिक्त संस्कृत-साहित्यके अनेक ग्रन्थोंके विविध स्थलोंमें भी ईश्वर-सिद्धि की गयी है। जो पाठक हिन्दूधर्ममें ईश्वरवादकी व्यापकता देखना चाहें,

उन्हें उत्पलदेवकी "सिद्धित्रयी," अभिनवगुप्ताचार्यकी "ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी," यामुनाचार्यकी "सिद्धित्रय" और लोकाचार्यकी "तत्त्वत्रय" नामकी पुस्तकें भी देखनी चाहिये। हिन्दूधर्मके अन्तर्गत स्वामिनारायण, ब्रह्म-समाज, राधास्वामी, आर्यसमाज, प्रार्थना-समाज, गोरखपन्थ, कबीर-पन्थ, दादूपन्थ, शैवागम, अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, विशुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, तान्त्रिक आदि-आदि जो अनेकानेक सम्प्रदाय हैं और जिनके अनुयायी करोड़ोंकी संख्यामें हैं, वे सब ईश्वरवादके प्रबल समर्थक हैं। ऊपर जो हम सात धर्मोंका विवरण लिख आये हैं, उनमें पारसी धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म, थियासफिकल सोसाइटी आदि तो ईश्वरवादके प्रचण्ड अनुमोदक हैं ही। जैनधर्म, बौद्धधर्म और सिखधर्म भी हिन्दूधर्मके ही सम्प्रदाय हैं और इनमें सिखधर्म पक्का ईश्वरवादी है। जैनधर्म और बौद्धधर्म भी नास्तिक नहीं हैं—ऐसा हम पहले सिद्ध कर आये हैं। राम, कृष्ण आदिकी तरह ही तीर्थङ्कर और अवलोकितेश्वरको भगवान्, ईश्वरावतार, ईश्वरशक्ति-सम्पन्न वा पूर्णप्रज्ञ, जगदीश, निरञ्जन, अशरण-शरण आदि मानकर पूजा करनेवाले जैन और बौद्ध कभी नास्तिकोंकी कोटिमें नहीं गिने जा सकते। फलतः हिन्दूधर्म, हिन्दूजाति और हिन्दूदेश ईश्वरवादमय है। इसका एक छोटासा प्रमाण गोरखपुरका ईश्वर-भक्ति-प्रचारक "कल्याण" नामका मासिक

पत्र भी है, जिसके प्रायः चालीस हजार ग्राहक हैं--हालाँ कि ईश्वर-वादियोंकी संख्या देखते यह ग्राहक-संख्या यथेष्ट नहीं है । तो भी नास्तिकतावादी किसी भी पत्रके ग्राहक तो "कल्याण" के चौथाई भी नहीं हैं । चार्वाक, देवसमाजी और नास्तिक साम्यवादी तो हिन्दुस्तानमें सिर्फ अँगुलियोंपर गिनने लायक भर हैं ।

हाँ, हमारे यहाँके कुछ नास्तिक जो यह कहते हैं कि, अभी भारतीय अर्द्ध-विकसित वा अर्द्ध-सभ्य अवस्थामें हैं, इसलिये ईश्वर-वादी हैं; पूर्ण विकसित वा पूर्ण सभ्य अवस्थामें आनेपर वे नास्तिक हो जायंगे, वे भ्रान्त हैं । खोदाइयोंमें जो पहलेके मनुष्योंके कुछ कङ्काल मिले हैं, उनसे मालूम पड़ता है कि, पहलेके मनुष्य पूर्ण विकसित थे । क्या व्यास, पाणिनि, कपिल, बुद्ध, शङ्कर, अशोक, शान्तरक्षित, परमहंस रामकृष्ण, स्वा० विवेकानन्द, नानक आदि पूर्ण विकसित और पूर्ण सभ्य मनुष्य नहीं थे ? क्या इनसे बढ़कर युगान्तरकारी पुरुष अब उत्पन्न होंगे ? पहलेके समान सत्यवादी, सदाचारी वा परोपकारी पुरुष इन दिनों कितने हैं ? कृष्ण, कर्ण, शिबि, दधीचि, शिलादित्य, युधिष्ठिर आदिके समान सभ्यतम, सत्यप्रतिज्ञ और पर-हितके लिये हड्डियाँतक दान दे देनेवाले महापुरुष इन दिनों क्या अलभ्य नहीं हैं ? क्या तैलङ्ग स्वामीके समान योग-बलसे २५० वर्ष जीवित रहने

वाले, योगी, श्रीहर्ष, कालीदास और तुलसीदासके समान कवि, प्रह्लादके सदृश सत्याग्रही तथा गुरुगोविन्द सिंह, शिवाजी और प्रतापके समान पराक्रमी देश-भक्त पूर्ण विकसित और सभ्यतम महापुरुष नहीं थे ? फलतः नास्तिकोंकी उक्त दलील एकदम अदूर-दर्शिता-पूर्ण और रही है। संसार भरके धर्म-ग्रन्थ जो यह कहते हैं कि, दिनानुदिन झूठे, विषयोंके कीड़े, दूसरोंका शोषण करनेवाले, स्वार्थान्ध, गम्भीर विषयोंको न समझनेवाले, जातिद्रोही आदि मनुष्य ही होते जायंगे, वह बिलकुल ठीक जँचता है। अब हेनिबाल, क्राइस्ट महम्मद, अब्राहम लिंकन, वाशिंगटन और कार्ल मार्क्सके दर्शन कहाँ हों ? अब तो मालूम पड़ता है कि, फ्रांको, मुसोलिनी और हिटलरकी ही तूती बोलेगी। कदाचित् ऋग्वेद (१०।१०।१०) की यह उक्ति ठीक हो रही है वा होगी कि—

"आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि।"

अर्थात् भविष्यमें ऐसा युग आयगा, जिसमें भगिनियाँ अपने बन्धुत्व-विहीन भ्राताको पति बनावेंगी!

मुख्य बात यह समझिये कि, पहलेके मनुष्य पूरे सभ्य और विकसित मस्तिष्कके थे; इसीलिये सदाचारी तथा ईश्वर-वादी थे और जबतक हम सभ्य रहेंगे, तबतक सदाचार और ईश्वरवादको छोड़नेकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी। वर्त्तमान समयमें वा भविष्यमें सभ्यता, सरलता, विकास और सदाचारकी उन्नतिकी सम्भावना शायद कम है—हाँ, मशीनों, सामाजिक उलझनों, झंझटों, विलास-सामग्रियों, आवश्य-

कताओं और अशान्तिकी वृद्धिकी ही अधिक सम्भावना है। यह भी अनुमान हो रहा है कि, पहलेकी तरह घी, गेहूं और चावल सस्ते नहीं होंगे, मनुष्य-संख्याकी वृद्धिके साथ-साथ सभी सामग्रियोंकी मँहगी होती जायगी और जीवन-संग्राम विकट बनता जायगा। अब यह भी आशा नहींसी है कि, लोग खाने, पहनने और विलासमय जीवनसे निश्चिन्त होकर और जीवन-मरणकी समस्याको सुलझाकर आध्यात्मक शान्तिके दिन बिता सकेंगे तथा कपिल, कालीदास, पाणिनि एवम् चैतन्यके समान दार्शनिक, कवि, वैयाकरण और आनन्दकी धारा बहानेवाले भक्त उत्पन्न कर सकेंगे।

हिन्दूधर्म वा आर्यधर्मकी कुछ शाखाओंके सम्बन्धमें हम पहले लिख आये हैं। आर्यधर्मकी कुछ शाखाएं ये भी हैं—यूनानी धर्म, रोमन धर्म, टयूटनिक धर्म, स्कांडेनेवियन धर्म, केल्टिक धर्म और स्लावोनियन धर्म आदि। ये क्रमशः ग्रीस, इटली, जर्मनी, नारवे, स्वीडेन, फ्रांस, रूस आदिमें प्रचलित थे। ये जातीय धर्म थे। इनमें ग्रीक (यूनानी) और रोमन धर्म पहले एक ही थे। इनके धर्म-ग्रन्थ "साकुलर" और "मोमसेन" हैं। कहा जाता है, "मोमसेन" १६०० बी० सी० में बना। इरानी आर्योंके 'मिथ्र' (वैदिक मित्र) देवताका वहाँ पूजन प्रचलित था। ग्रीकोंके जियस, मिनर्वा और हेलिओस देवता तो इन्द्र, उषा और सूर्यके नामान्तर भर हैं। वैदिक ब्रह्मा ही ग्रीकों और रोमनोंके "वलकन" हैं। ग्रीक और लैटिन भाषाओंमें संस्कृतके अनेकानेक तद्भव शब्द हैं। इससे मालूम पड़ता है

कि, ये भाषाएं वैदिक भाषासे उत्पन्न हैं। यूनान (ग्रीस) में ४८४ बी० सी०में हिरोडोटस और ४७१ बी० सी०में थ्युकिडिडस तथा रोममें ईसाकी पहली शताब्दीमें टसिटस नामके प्रसिद्ध ऐतिहासिक हो गये हैं। इन तीनोंने पारसी आर्यों, उनके देवताओं और वैदिक देवताओंका उल्लेख किया है। इरान और यूनानके इतिहाससे यह भी पता चलता है कि, मारडोनियसके सेनापतित्वमें भारतीय सैनिकोंने प्लेटिया (ग्रीस)के रण क्षेत्रमें ४७६ बी० सी० में यूनानियोंको बेतरह परास्त किया था। इन भारतीय सैनिकोंने वहाँ अनेक वैदिक देवताओंकी बातें सुनी थीं और उनकी मूर्त्तियोंको भी देखा था। ट्यूटनोंके धर्मग्रन्थ "एड्डा" और स्लावोंके धर्म-ग्रन्थ "लुथियाना"से भी विदित होता है कि, ट्यूटनिक और स्लावोनियन धर्म वैदिक धर्मकी नकलपर चले थे। स्कांडेनेवियन और केल्टिक धर्मोंकी भी यही बात थी। हमारे सूर्य, इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, उषा आदि वैदिक देवताओंकी ही उपासना करनेवाली और आर्योंकी शाखाएँ ही ये जातियाँ थीं और हैं। ये जातियाँ स्वस्तिक और वैदिक देवी-देवताओंकी उपासनाके साथ-साथ ईश्वरीय शक्ति (उक्त सभी देवताओंकी एकत्व-शक्ति) की भी उपासिका थीं। फलतः ये जातियाँ आस्तिक थीं। इन दिनों भी ये आस्तिक ही हैं; क्योंकि कट्टर ईश्वर-वादी ईसाई धर्मने प्राय. इन सभी धर्मोंका स्थान

ग्रहण कर लिया है—लगभग ये सब अब ईसाई धर्मको ही मानती हैं।

सेमेटिक धर्मकी ये शाखाएं हैं—ईजिप्सियन, बेबीलोनियन, असीरियन, फिनीशियन, जुडिइज्म, महम्मडनिज्म और क्रिश्चियानिटी। ईजिप्सियनोंके प्रथम राजा मेना वा मेनस (मनु?) ५००४ बी० सी०में हुए थे। ईजिप्सियनोंकी धर्म-पुस्तक "The Book of the Dead" से मालूम होता है कि, ईजिप्ट (मिश्र) पर सत्ययुगमें २४६०० वर्ष देव-राज्य था और त्रेतामें ६०० वर्ष ये मृत-पूजक थे। ब्रह्मा (Plah) को मानते थे। सूर्य वा रविको "रा" कहते थे। दिनमें दो बार नहाते थे और मृगचर्मपर बैठते थे। विलसन साहबका मत है कि, मिश्र संस्कृत शब्द है और ब्राह्मणोंके द्वारा वहाँ पहुंचाया गया है। ऐसी ही बातोंको देखकर डा० अविनाशचन्द्र दासने सिद्ध किया है कि, ईजिप्सियन धर्म और सभ्यता वैदिक धर्मसे प्रसूत हैं। जो हो; परन्तु इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, ईजिप्सियन भी ईश्वरीय शक्ति देवोंके उपासक थे; इसलिये आस्तिक थे। अब तो वहाँ पक्के आस्तिक इस्लाम धर्मका ही अकण्टक राज्य है।

बेबीलोनियन वा कैल्डियन नक्षत्र-पूजक थे। इनके धर्म-ग्रन्थ हैं "डाइरेक्टिग बुल" और "इज्डुबर"। कुछ यूरोपीयोंका मत है कि, ये ग्रन्थ ४००० बी० सी०के बने

हैं। इन लोगोंमें मूर्त्तिपूजा प्रचलित थी। ये सूर्य या "समस"के उपासक थे। सेफरैयन स्थानमें एक सूर्य-मन्दिरका ध्वंसावशेष मिला है, जिसे ३८०० बी० सी० में नष्ट हुआ बताया जाता है—बना न मालूम कबका होगा! उनकी कस्साइट लिपिमें सूर्यका बड़ा विवरण मिलता है। "Aryan witness"में रेवरेंड के० एम० बनर्जीने लिखा है कि, ऋग्वेद (१।११।५) का बल ही बेबीलोनाधिपति "बेल" था। बेबीलोनियन भाषामें अनेक वैदिक शब्द भी हैं। "जहोवा" शब्द वेदका "जह्वे" शब्द है, केल्डियन या चैल्डियन नहीं। इससे तो मालूम पड़ता है कि, इनका धर्म भी वेद-धर्मसे निकला है और ये भी वैदिक आर्योंकी ही तरह आस्तिक थे।

इन्हींकी नकलपर असीरियन और फिनीशियन धर्म बने हैं। पारसियोंकी ही तरह इनका आराध्य भी "अस्सुर" (वेदका असुर) है। दक्षिण मेसोपोटामियावाला अक्कद जातिका सुमेरियन धर्म भी वैदिक सिद्धान्तोंकी नकलपर बना है। महेंजोदारो और हरप्पाकी खोदाइयोंसे, यूरोपीय ऐतिहासिकोंके शब्दोंमें, जो सुमेरियन देवताओंका पता चला है, उससे तो यही बात सिद्ध होती है। जुडिइज्म (मूसाई, इसराइली, यहूदी आदि धर्मों)को भी, इसी प्रकार, वेद-धर्मसे उत्पन्न माना गया है। ईसाके सम्बन्धमें तो यह खास किंवदन्ती है कि, वे भारत

आये, यहाँका धर्म सीखा और लौटकर अपने यहाँ क्रिश्चियानिटीका प्रचार किया।

चाहे हिन्दुओंकी पूर्वोक्त धारणाएँ सही न हों, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, ये सब धर्म किसी न किसी तरह ईश्वरवादी थे और हैं। इन दिनों यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म तथा इनकी शाखाओंने ही प्रायः उक्त समस्त सेमेटिक, हेमेटिक (अधिकांश मतोंमें ईजिप्सियन और असीरियन) और यूरोपीय धर्मोंका स्थान ले लिया है और ये तीनों ही परम ईश्वरवादी धर्म हैं।

मंगोलियन धर्मोंमेंसे चीनमें कनफूसियानिज्म और ताओइज्म तथा जापानमें शिंतोइज्म चलते थे और चलते हैं। पहलेके दोनों धर्मों के कई प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—शुकिंग, शीकिंग, ली-की, चुंग-यांग आदि। कहा जाता है कि, पहला २४०० बी० सी०में और दूसरा १७६६ बी० सी० में बना। पहला इंडिया आफिस, लंडनकी "सेक्रेड बुक्स आफ दि इस्ट" नामकी ग्रन्थ-मालामें, लेग साहबके द्वारा, छपा है और दूसरा १८६१ में जेनिंग्स साहबके द्वारा। इन ग्रन्थोंसे पता चलता है कि, चीनी भी हमारी ही तरह १० दिशाएँ, १२ राशियाँ, श्राद्ध आदि मानते आये हैं। चीनियोंकी ही तरह अधिकांश मंगोल जातियाँ देवोपासक और ईश्वरीय शक्तिपर विश्वास करनेवाली हैं। अब तो इनमें बुद्ध धर्मका बोलबाला है, जिसका विवरण हम पहले दे आये हैं।

जापानका शिंतोइज्म वीर-धर्म है। पृथिवीकी कई प्राचीन जातियोंके धर्मोंके ही समान यह धर्म भी सूर्योपासक है—सूर्यको ही ईश्वर माननेवाला है। इन दिनों यही वहाँका राज-धर्म है। वहाँका सम्राट् हिरोहितो सूर्यकी पुत्रीके वंशका माना जाता है।

आस्ट्रेलिया, पलेनेशिया आदिकी जातियों, अफ्रीकन नीग्रो और संसारके अन्यान्य टापुओंकी जातियों, अमेरिकाके रेड इंडियन तथा भारतकी टोडा, बदागा, कोटा, भील, गोंड़, खोंड़, सन्ताल, काकी, नागा, बादो, धीमल, खसिया, मिश-मिस आदि जातियोंके भी धर्म और 'पन्थ' हैं। हाल साहबका मत है कि, जैसे भारतके द्रविड़ लोगोंने एशिया माइनर जाकर सुमेरियन सभ्यताको जन्म दिया, वैसे ही आस्ट्रेलियाकी सभ्यताको भी जन्म दिया। आस्ट्रेलिया आदिकी भाषाओंमें द्रविड़ शब्द बहुत हैं। अफगानिस्तानकी ब्राहुई भाषामें भी द्रविड़ शब्दोंकी भरमार है। ये द्रविड़, बहुतोंके मतसे, आर्य ही थे। अमेरिकाके पेरू नामक प्रदेशमें दतियाके सूर्य-मन्दिरकी तरह एक सूर्य-प्रतिमा भी मिली है। फलतः या तो इन जातियोंके धर्म वेद-धर्मपर चले हैं वा वेद-धर्मकी नकलपर बने अन्य धर्मोंकी नकलपर चले हैं। डा० अविनाशचन्द्र दासने "ऋग्वेदिक इंडिया" और "ऋग्वेदिक कलचर"में वेद-धर्मको प्रायः ७५ हजार वर्षोंका प्राचीन धर्म माना है। वैदिक धर्ममें भूत, प्रेत और देवताकी

उपासनाकी भी विधि है और इन सबके पूजक ईश्वरभक्त और ईश्वरपूजक माने गये हैं। जो हो; परन्तु यह बात निस्संदिग्ध है कि, उक्त सभी जातियोंके धर्म भूत, प्रेत, देवी, देवताकी शक्ति (प्रकारान्तरसे ईश्वरीय शक्ति) पर विश्वास रखते हैं; इसलिये उक्त सभी जातियाँ आस्तिक हैं। अब तो इनमेंसे कई जातियाँ ईश्वरवादी ईसाई धर्मको ही अपना चुकी हैं।

फलतः सारा संसार ईश्वरवादकी निर्भय छत्रच्छायामें विराजमान है। संसारके किसी भी बादशाहका तिलकोत्सव हो, संसारके किसी भी न्यायालयका साक्ष्य हो और संसारकी किसी भी जातिका कोई भी पर्व और धार्मिक कृत्य हो—सबका आधार, किसी न किसी तरह, ईश्वर-वाद है।

अब रह गयी बात रूसकी। संसारकी १८ करोड़की आबादीवाले इस महान् देशके लिये इन दिनों यह प्रसिद्धि है कि, यह देश ईश्वरवादका द्रोही है। परन्तु रूसकी कथा जाननेवाले इस बातको सोलहो आने मंजूर नहीं कर सकते। आजसे बीस वर्ष पहले तो रूसमें प्रायः सभी आस्तिक थे। इधरके लेनिन-युगमें ईश्वरके द्रोहका कुछ प्रचार हुआ है। परन्तु इस द्रोह-युगमें भी गिरजाघरोंमें उपासनाका विरोध नहीं किया गया। जार निकोलस वा जारीनाके धर्म-गुरु रास्पुटिनके भीषण अत्याचारोंका स्मरण करके, सोवियटकी स्थापनाके दिनोंमे, जनताने अवश्य कुछ गिरजाघरोंको जला-गिरा डाला था; परन्तु कुछ ही दिनोंमें यह

बात रोक दी गयी थी। सोवियट सरकारके ध्यानमें यह बात आ गयी कि, ईश्वर और धर्मके नामपर जो अबतक अत्याचार हुए हैं, उसके कारण ढोंगी धर्माचार्य और धर्मके झूठे भक्त बादशाह आदि थे—धर्म वा ईश्वर नहीं। फलतः किसी भी बालिगको धर्मोपदेश देना और गिरजा-घरोंमें किसी भी धर्म-मतका प्रचार करना कानूनन जायज ठहरा दिया गया। रूसी मुसलमान तो १४ वर्षकी उम्रके बाद ही अपने धर्ममें दीक्षित कर दिये जाते हैं। इन दिनों यही रीति है। गिरजाघरोंका खर्च पादरी लोग अब भी खुल्लम-खुल्ला चन्देसे चलाते हैं। कोई भी व्यक्ति बड़ी स्वाधीनतासे ईश्वर-भजन कर सकता है। अभी-अभी १२ मार्च, १९३७ को रूसकी राजधानी मास्कोसे यह खबर आयी थी—"सन् १९३२ में ईश्वर-विरोधी संघकी सदस्य-संख्या ५० लाख थी, अब सिर्फ २० लाख है। उसका संगठन तोड़ दिया गया। शिक्षा-विभागने पाँच धर्म-विरोधी अजायब घर बन्द कर दिये। सेनाका मत लिया गया, तो ७० प्रतिशत सैनिक ईश्वरको माननेवाले पाये गये। इसलिये अब वहाँ ईश्वर-विरोधी आन्दोलन बन्द कर दिया गया है और पूजा-पाठकी स्वतन्त्रता दे दी गयी है।" इससे मालूम पड़ता है कि, रूस अनीश्वरवादी आन्दोलनसे ऊब गया है और कुछ ही वर्षोंमें सारा रूस ईश्वरवादी बन जायगा। ठीक ही कहा गया है—"सत्यमेव जयते नानृतम्।"

सारांश यह समझिये कि, समस्त मनुष्यजातिकी भाषाओंकी छटा और भावोंकी घटाका एकमात्र लक्ष्य ईश्वरवाद है और यह "ईश्वर"की ही तरह सर्व-व्यापक है।

ईश्वरके सम्बन्धमें महापुरुषोंकी उक्तियाँ और अनुभव

अब हम यहाँ ईश्वरके सम्बन्धमें ऐसे कुछ भारतीय महापुरुषोंके वचनों और अनुभवोंका उल्लेख करेंगे, जिनकी बुद्धि निष्णात, मस्तिष्क परिमार्जित और अनुभव परिपक्व है एवम् जिन्होंने ईश्वरकी प्राप्तिके लिये एक बड़ा समय व्यतीत किया है अथवा महान् त्याग किया है अथवा विकट तपस्या की है। इन महापुरुषोंने मानव-हितके लिये जो प्रयत्न किये हैं, उनसे बढ़कर प्रयत्न करना किसी भी साम्यवादीके लिये सम्भव नहीं है। इनकी मनुष्यजातिका कल्याण करनेवाली और युगान्तर-कारिणी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ ऐसी हैं, जिनपर संसारके करोड़ों बड़े-बड़े मनीषी और वैज्ञानिक लट्टू हैं। हमारे कई मित्रोंकी इच्छा थी कि, हम इन महापुरुषोंका यहाँ संक्षिप्त परिचय भी लिपिबद्ध कर देते; परन्तु ये पुरुष-पुङ्गव इतने प्रसिद्ध हैं कि इनका परिचय देना सूर्यको दीपक दिखानेके समान

है। इसके सिवा यहाँ स्थान-संकोच भी है। फलतः यहाँ इनका परिचय देना ग्रन्थकी अनावश्यक कलेवर-वृद्धि भर करना होगा। यहाँ यह भी ध्यान देनेकी बात है कि, स्थानाभावके कारण इनके ईश्वर-सम्बन्धी वचनों और अनुभवोंका अत्यन्त संक्षिप्त ही उल्लेख किया गया है। यह उल्लेख गद्य और पद्य—दो भागोंमें है। पहले गद्य-भागसे ही देखिये—

(१) "ईश्वरको तुम लोग देख नहीं सकते, क्या इसीसे कह दोगे कि, वह हैं ही नहीं ? दिनको तारागण नहीं दिखाई पड़ता, तो क्या तुम कहोगे कि, तारागण हैं ही नहीं ? जैसे सूर्यके तीक्ष्ण तेजमें दिनको तारागण दिखाई नहीं पड़ता, वैसे ही माया और अहंकारके आच्छादनसे मनुष्य ईश्वरको देख नहीं सकता।

"दूधमें मक्खन रहता है; परन्तु वह मथनेसे ही निकलता है। ठीक इसी प्रकार ईश्वरको जो जानना चाहे, वह उसका साधनभजन करे। भगवान् सगुण, निर्गुण और गुणातीत—सब है। जब वह सगुण रहता है, तब उसे ईश्वर कहते हैं, जब निर्गुण रहता है, तब उसे ब्रह्म कहते हैं और उसकी गुणातीत अवस्थाको तो हम मुँहसे कहकर समझा हो नहीं सकते।

"ईश्वरके दर्शनकी इच्छा रखनेवालोंको नाममें विश्वास और सत्यासत्यका विचार करते रहना चाहिये। यदि

एक डुबकीमें रत्न नहीं मिला, तो रत्नाकरको रत्न-हीन मत समझ बैठो। डुबकी लगाते ही जाओ, रत्न अवश्य मिलेगा। अल्प साधन करनेपर ईश्वर-दर्शन नहीं हो, तो हताश नहीं होना चाहिये। धीरज रखकर साधन करते रहो। यथासमय तुमपर ईश्वरकी अवश्य कृपा होगी।

"जल एक है; परन्तु कोई उसे 'सलिल' कहता है, कोई 'अप्', कोई 'पानी' और कोई 'वाटर'। इसी प्रकार भगवान्‌को कोई 'हरि', कोई 'राम', कोई 'अल्लाह', कोई 'गाड' और कोई 'ईसा' कहता है। वस्तु एक ही है—केवल नाममें भेद है।

"संसारमें केवल ईश्वर ही सत्य है और सब असत्य है। जिसके मनमें ईश्वरका प्रेम उत्पन्न हो गया, उसे संसारका और सुख अच्छा नहीं लगता। जो एक बार भी बढ़िया मिश्रीका स्वाद ले चुका, वह क्या कभी राब खाना चाहेगा?

"लोग भला कहें या बुरा, उनकी बातोंपर जरा भी ध्यान न देकर, संसारकी स्तुति और निन्दाकी कोई भी परवा न कर, ईश्वरीय पथपर चलना चाहिये।

"अपने सब कर्म-फल ईश्वरार्पण कर दो। अपने लिये किसी फलकी कामना मत करो।

"जिस घरमें नित्य हरि-संकीर्त्तन होता है, वहाँ 'कलियुग' प्रवेश नहीं करता।

"ईश्वरको पानेका उपाय विश्वास है। जिसको विश्वास हो गया, उसका काम बन गया। ईश्वरके नाममें ऐसा

विश्वास चाहिये कि, 'मैंने उसका नाम लिया है; इसलिये अब मुझमें पाप कहाँ है ? मेरे बन्धन अब कहाँ हैं ?"

—परमहंस रामकृष्ण

(२) "जिसके ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम हैं, जो सच्चिदानन्द आदि लक्षणोंसे युक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, निराकार, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टिका कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवोंको कर्मानुसार, अपने सत्य न्यायसे, फलदाता आदि लक्षणोंसे युक्त है, उसीको मैं ईश्वर मानता हूं । सब सत्य-विद्या तथा जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है ।"

—आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती

(३) "वेदके गभीर गर्भसे ऋषियोंने हरि-नामकी 'लकुटिया' निकालकर अन्धे मनुष्योंका उद्धार किया है। जो कोई अन्धा हो, वह इस लकड़ीको पकड़े; ऐसी अद्भुत लकड़ी और कहीं नहीं है—निराश्रयका ऐसा अवलम्बन और कहीं नहीं है । क्या विश्वमें तुम्हारा कोई बन्धु नहीं है ? तो, कोई चिन्ता नहीं । तुम्हारा श्रेष्ठ बन्धु यही हरि-नामकी लकड़ी है । इसे अनन्य तत्परतासे ग्रहण करो । यह तुम्हें पुण्य राज्यमें, ज्ञानीके ब्रह्मानन्द धाममें, योगीके योगानन्द-निकेतनमें और भक्तके प्रेम-निकुञ्जमें ले जायगी—तुम दिव्य और भव्य बन जाओगे ।"

—गौराङ्ग महाप्रभु

(४) "भैया, तुम्हारे सामने भयानक प्रलय आ रहा है। हरिनाम लो। दूसरा उपाय नहीं है। अपने भावी कल्याणके लिये भयानक मोह और पापोंको छोड़ कर सब तरहसे हरिनामको अङ्गीकार करो। संकीर्त्तन-रूपी सूर्यके प्रभावसे पाप-रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है।"

—प्रभु जगद्बन्धु

(५) "दर्शनशास्त्र चाहे जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन करे और अध्यात्मशास्त्र चाहे जहाँ जाय; परन्तु जबतक इस संसारमें मृत्यु है, जबतक मनुष्यके हृदयमें कमजोरी है और जबतक, उस कमजोरीकी अवस्थामें, मनुष्यके हृदयसे पुकार उठती है, तबतक संसारमें ईश्वरके प्रति श्रद्धा बनी ही रहेगी।"

—स्वामी विवेकानन्द

(६) "ईश्वर सत्य, ज्ञान और अनन्तके रूप हैं। वे आनन्द, शक्ति और अमृतत्वके मूल हैं। वे एक, अद्वितीय, पवित्र, निरञ्जन, निराकार, स्वतन्त्र, अनुपम, कल्याणमय, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी हैं। वे सृष्टिकर्त्ता और सृष्टिके प्रतिपालक हैं। इस सृष्टिके पहले कुछ नहीं था। न दिन था, न रात। उस समय केवल ईश्वर ही थे। पृथिवी, आकाश, अन्तरीक्ष, जल, वायु, पर्वत, नदी, वृक्ष, लता आदि कुछ भी नहीं था—ईश्वरने अपनी इच्छासे इन सबका

सृजन किया। ईश्वर ही मूल सत्य है। ईश्वरमेंसे ही सब पदार्थोंकी सृष्टि हुई है। प्रत्येक पदार्थमें प्राण-रूपसे परमेश्वर ही ओत-प्रोत हैं। वे सर्वसाक्षी और प्रत्येक घटनाके निरीक्षक हैं। उनसे छिपाकर कुछ नहीं रखा जा सकता। वे अन्तर्यामी, असीम, स्वयंज्योति, स्वयंभू और मन, वाणीसे अगोचर हैं। वे स्वयं यदि मनुष्यके हृदयमें प्रकट न हों, तो मनुष्य उनके दर्शन करनेमें असमर्थ है। वे मङ्गल-निर्झर और शान्ति-दाता हैं।

"इस प्रकार ईश्वरके स्वरूपका विचार करके उनकी पूजा करनेको आराधना कहते हैं। समस्त विश्वमें उनकी महिमाके दर्शन करके भक्ति-पूर्वक उन्हें प्रणाम करना आराधना है।

"ईश्वरके चिन्तनका नाम ही ध्यान है। परमेश्वर हमारे हृदयमें विराजमान हैं—इस प्रकार सतत चिन्तन करनेसे अन्तःकरणमें प्रभुका प्रकाश होता है और प्रभुकी दिव्य ज्योतिके दर्शन होते हैं।"

"प्रभुका प्रकाश मिलते ही उनकी स्तुति करनेकी स्वयमेव इच्छा होती है। उनका गुण-कीर्त्तन और उनकी महिमाका गान ही स्तुति है। स्तुतिकी समाप्ति नहीं है। स्तुति करते-करते जब मन आनन्द-सागरमें डूबने लगता है, तब उनके चरणोंमें आत्म-समर्पण किये बिना रहा ही नहीं जाता।"

—आचार्य विजयकृष्ण गोस्वामी

(७) "ये तारे-सितारे, ये चन्द्र-सूर्य, ये चमकती हुई नदियाँ और यह सांसारिक रूप-सौन्दर्य उस सचाई (ईश्वर) के गिरे-पड़े रूप हैं। अरे, जिसके गिरे-पड़े मोतियोंका यह हाल है, उसका अपना क्या हाल होगा !!!

"लगाकर पेड़ फूलोंके किये तकसीम गुलशनमें !
जमाया चाँद-सूरजको, सजाये क्या सितारे हैं !!"

—स्वामी रामतीर्थ

(८) "जगत्‌में जो कुछ है, सब भगवान्‌का प्रकाश है; क्योंकि भगवान् ही एक मात्र सत् वस्तु हैं। उनकी मूर्ति या अंशके अतिरिक्त और किसीका भी अस्तित्व नहीं है। सभी जीव नामरूपकी सीमाके अन्दर असीमका ही आत्मप्रकाश हैं। अवश्य ही भगवान्‌के प्रकाशका भी क्रम है। भगवान् नित्य, शुद्ध, परब्रह्म हैं। साधारण जीवमें भगवान्‌का अंश मायाके आवरणसे आबद्ध है। जीव ज्ञानके प्रकाश द्वारा अपने देवत्वकी क्रमशः उपलब्धि कर सकता है। स्थान-स्थानपर भगवान्‌को विशेष शक्तियोंका आविर्भाव होता है। उनको विभूतिके नामसे पुकारा जाता है। किन्तु, जब वही अज, अव्ययात्मा ईश्वर स्वयं जगत्‌के कल्याणके लिये अपनी मायाको वशीभूत करके मायिक देह ग्रहण करते हैं—मानव-शरीरमें जन्म ग्रहण करते हुए प्रतीत होते हैं—सर्वशक्तिमान् होकर भी मानवोचित शरीर, मन, बुद्धिके द्वारा कर्म करते हैं—तभी उनको अवतार कहा जाता है।

"मनुष्यके अन्दर भी भगवान् हैं। मनुष्य जिस दिन इस बातकी सम्यक् रूपसे उपलब्धि करता है, उसी दिनसे वह भगवान्‌में निवास करता है। वेदान्त-वादियोंमें वैष्णवोंने नर-नारायणके रूपकका अवलम्बन करके इस तत्त्वको खूब दिखलाया है। नारायणका नर सदैवका साथी है। नर अर्थात् जीवात्मा जिस दिन यह समझ लेता है कि, मैं नारायण अर्थात् परमात्माका सखा हूं, उसी क्षण वह स्वरूपमें स्थित हो जाता है—उसी समयसे वह भगवान्‌के निकट निवास करता है—"निवसिष्यसि मय्येव।" भगवान् सब समय सखाके रूपसे हम लोगोंके समीप रहते हैं—हम लोगोंके हृदय-रथमें वे सर्वदा ही सारथि-रूपमें विराजित रहकर हम लोगोंको चलाते हैं—

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।"

"वे हम लोगोंके कितने अपने हैं, कितने निकटतम बन्धु हैं, हाथ पकड़कर वे किस प्रकार हम लोगोंको चला रहे हैं—इस बातको हम लोग नहीं समझते। जिस दिन मायाका आवरण, अज्ञानका अन्धकार हट जायगा, मनुष्य हृदि-स्थित हृषीकेशके सम्मुख आवेगा, उनकी वाणी सुनकर प्रमादको नष्ट करेगा, उनकी शक्तिसे कर्म करेगा—उसी दिन वह अपने मन और बुद्धिको भगवान्‌में सम्पूर्ण भावसे समर्पण करनेमें, एक बार भगवान्‌के अन्दर निवास करनेमें, समर्थ होगा। इसीको श्रीमद्भगवद्गीतामें "उत्तम

रहस्य" बतलाया गया है ।"

—योगी अरविन्द घोष

(६) "ईश्वर-प्रार्थनाने मेरी रक्षा की । प्रार्थनाके आश्रय विना मैं कबका पागल हो गया होता ! अन्य मनुष्योंकी भाँति मुझे भी अपने सार्वजनिक एवम् व्यक्तिगत जीवनमें अनेक कटु अनुभव करने पड़े । उनके कारण मेरे अन्दर, कुछ समयके लिये, एक प्रकारकी निराशासी छा गयी थी। उस निराशाको दूर करनेमें मुझे सफलता हुई, तो वह प्रार्थनाके ही कारण हुई । सत्यकी भाँति प्रार्थना मेरे जीवनका अङ्ग बनकर नहीं रही है । इसका आश्रय तो मुझे आवश्यकतावश लेना पड़ा । मेरी ऐसी अवस्था हो गयी कि, मुझे प्रार्थनाके विना चैन पड़ना कठिन हो गया । ईश्वरके अन्दर मेरा विश्वास ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, प्रार्थनाके लिये मेरी व्याकुलता भी उतनी ही दुर्दमनीय होती गयी । प्रार्थनाके विना मुझे जीवन नीरस एवं शून्यसा प्रतीत होने लगा ।

"जब मैं दक्षिणी अफ्रीकामें था, उस समय मैं कई बार ईसाइयोंकी सामुदायिक प्रार्थनामें सम्मिलित हुआ; किन्तु उसका मुझपर प्रभाव नहीं पड़ा । मेरे ईसाई मित्र ईश्वरके सामने अनुनय-विनय करते थे; किन्तु मुझसे वैसा नहीं बन पड़ा । मुझे इस कार्यमें बिलकुल असफलता मिली । परिणाम यह हुआ कि, ईश्वर एवम् उसकी प्रार्थनामें

मेरा विश्वास उठ गया और जबतक मेरी अवस्था परिपक्क न हो गयी, मुझे उसका अभाव बिलकुल नहीं खला। परन्तु अवस्था ढल जानेपर एक समय ऐसा आया, जब मेरी आत्माके लिये प्रार्थना उतनी ही अनिवार्य हो गयी, जितना शरीरके लिये भोजन अनिवार्य है। सच पूछिये, तो शरीरके लिये भोजन भी इतना आवश्यक नहीं है, जितनी आत्माके लिये प्रार्थनाकी आवश्यकता है। क्योंकि शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये कभी-कभी उपवास (भोजनका त्याग) आवश्यक हो जाता है; किन्तु प्रार्थना-रूप भोजनका त्याग किसी प्रकार भी हितकर अथवा वाञ्छनीय नहीं कहा जा सकता। *प्रार्थनाका अजीर्ण तो कभी हो ही नहीं सकता।*

"जगत्के तीन महान् गुरु गौतम बुद्ध, ईसा एवम् महम्मदके लेखोंमें इस बातके अकाट्य प्रमाण मिलते हैं कि, उन्हें प्रार्थनासे ही प्रकाश मिला और वे प्रार्थनाके बिना जीवित नहीं रह सकते थे। लाखों ईसाइयों, हिन्दुओं तथा मुसलमानोंको आज भी ईश्वर-प्रार्थनासे जितना आश्वासन मिलता है, उतना जीवनमें और किसी बातसे नहीं मिलता। आप अधिक-से-अधिक उन लोगोंको झूठा अथवा आत्मवञ्चित कह सकते हैं। मैं तो यह कहूंगा कि, यह झूठ मुझ सत्यान्वेषीपर जादूकासा काम करती है। यदि झूठ ही हो, तथापि वस्तुतः मेरे जीवनका एक मात्र यही सहारा रही है; क्योंकि इसके बिना मैं एक पल भर भी जीवित नहीं रह

सकता। राजनीतिक आकाश निराशाके बादलोंसे घिरा हुआ रहनेपर भी मेरी आन्तरिक शान्ति कभी भङ्ग नहीं हुई। अधिक क्या, लोग मेरी इस आन्तरिक शान्तिको देखकर मुझसे ईर्ष्या करने लगते हैं! यह शान्ति मुझे ईश्वर-प्रार्थनासे ही मिली और कहींसे नहीं।

"मैं विद्वान् नहीं हूं, मैंने शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया है; किन्तु मैं विनय-पूर्वक इस बातका दावा करता हूं कि, मेरा जीवन प्रार्थनामय है। प्रार्थनाका प्रकार कैसा होना चाहिये, इस विषयमें मैं उदासीन हूं। इसका निर्णय प्रत्येक मनुष्य अपने लिये स्वयं कर सकता है। किन्तु मुझे प्रार्थनाके कई ऐसे ढंग मालूम हैं, जिनका लोगोंने अनुसरण किया है। प्राचीन महात्माओंके बनाये हुए मार्गपर चलना ही श्रेयस्कर होता है।

"किसीके अन्दर ईश्वरमें विश्वास करा देना मेरी शक्तिके बाहर है। संसारमें कई बातें ऐसी हैं, जो 'स्वतः सिद्ध' हैं और कुछ बातें ऐसी भी हैं, जो बिलकुल सिद्ध ही नहीं हो सकतीं। रेखागणितके मूल सिद्धान्तों (Axioms)की भांति ईश्वरकी सत्ता भी 'स्वयं सिद्ध' है। सम्भव है कि, हमारा हृदय उसे ग्रहण नहीं कर सके। बुद्धिकी पहुँचके विषयमें तो मैं कुछ नहीं कहूंगा। बुद्धिका अवलम्बन बहुत करके भ्रम-जनक होता है; क्योंकि तर्कपूर्ण युक्तियोंसे चैतन्य-रूप ईश्वरके अन्दर विश्वास उत्पन्न नहीं कराया जा

सकता। ईश्वर बुद्धिगम्य वस्तु नहीं है। वह बुद्धिसे परे है। हमारे पास बहुतसे ऐसे प्रमाण हैं, जिनसे हम ईश्वरको सत्ताको युक्तिसे सिद्ध कर सकते हैं; परन्तु इस प्रकारका युक्तिपूर्ण समाधान पाठकोंकी बुद्धिका अपमान करना होगा। मैं आप लोगोंसे अनुरोध करूँगा कि, आप लोग तार्किक युक्तियोंका आश्रय छोड़कर एक नन्हेसे बच्चेकी भांति ईश्वरमें निश्चल विश्वास करना प्रारम्भ कर दें। यदि मेरा अस्तित्व है, तो ईश्वरका अस्तित्व अवश्य है। केवल मेरे ही जीवनका नहीं; किन्तु मेरे जैसे लाखों मनुष्योंके जीवनका यह एक आवश्यक अङ्ग है। चाहे वे इसके विषयमें वाद-विवाद नहीं कर सकें; किन्तु उनके जीवनसे हम यह देख सकते हैं कि, वह उनके जीवनका एक अङ्ग बन गया है।

"मैं आप लोगोंसे केवल इतनीसी प्रार्थना करता हूं कि, आप लोग इस विश्वासरूपी खँडहरका जीर्णोद्धार कीजिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि, आप उस प्रचुर साहित्यको भूल जाइये, जिसने आपकी बुद्धिको चकरा दिया है और आपके पायेको कमजोर बना दिया। श्रद्धाके मार्गमें दीक्षित हो जाइये, जो विनयका चिह्न है और इस बातको स्वीकार कीजिये कि, हम कुछ नहीं जानते, हम इस विशाल ब्रह्माण्डके अन्दर अणुसे भी अणु हैं। हम अणुसे भी अणु इसलिये हैं कि, अणु अपनी

सत्ताके नियमोंका पालन करता है; किन्तु हम ऐसे ढीठ बन गये हैं कि, प्रकृतिके नियमोंकी अवहेलना करते हैं। जिन लोगोंमें श्रद्धाका अभाव है, उनको समझानेके लिये मेरे पास कोई युक्ति अथवा दलील नहीं है।

"यदि एक बार आपने ईश्वरको सत्ताको स्वीकार कर लिया, तो फिर आपसे प्रार्थना किये बिना रहा नहीं जायगा।

"बहुतसे लोग यह धृष्टतापूर्ण दावा करते हैं कि, हमारा समग्र जीवन ही प्रार्थनामय है; अतः हमे किसी निर्दिष्ट समयपर, एकान्तमें बैठकर, प्रार्थना करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें इस प्रकारकी मूर्खता नहीं करनी चाहिये।

"हम लोग तो किस गिनतीमे हैं, उन महापुरुषोंने भी, जिनकी वृत्ति निरन्तर ब्रह्माकार रहती थी, इस प्रकारका दावा नहीं किया। उनके जीवन वास्तवमें प्रार्थनामय थे; किन्तु हमें यह कहना चाहिये कि, हमारे लिये वे निश्चित समयपर प्रार्थना अवश्य करते थे और प्रतिदिन परमात्माके प्रति भक्ति-भाव प्रदर्शित करते थे। यह ठीक है कि, ईश्वर यह नहीं चाहता कि, हम प्रतिदिन अपनी शरणागतिका उसके सामने हवाला दें; किन्तु हमारे लिये ऐसा करना आवश्यक है। मैं आपको विश्वास

दिलता हूं कि, यदि हम ऐसा करेंगे, तो फिर कोई भी दुःख हमें नहीं सतावेगा ।"

—महात्मा गांधी

(१०) "हमारी बुद्धि विवश होकर इस बातको स्वीकार करती है कि, ऐसी ज्ञानात्मिका सृष्टि-रचनाका कोई आदि, सनातन, अज, अविनाशी, सत्-चित्-आनन्द-स्वरुप, जगत्-व्यापक और अनन्त-शक्ति-सम्पन्न रचयिता है। उसी एक अनिर्वचनीय शक्तिको हम ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, वासुदेव, शिव, राम, कृष्ण, विष्णु, जिहोवा, गाड, खुदा अल्लाह आदि सहस्रों नामोंसे पुकारते हैं। × × × × सबका ईश्वर एक ही है और वह अंश रूपसे न केवल सब मनुष्योंमें; किन्तु समस्त जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, वृक्ष और विटप—सबमें समान रूपसे अवस्थित है और उसकी सबसे उत्तम पूजा यही है कि, हम प्राणिमात्रमें ईश्वरका भाव देखें, सबसे मित्रताका भाव रखें और सबका हित चाहें। सार्वजनीन प्रेमसे, इस सत्य ज्ञानके प्रचारसे, ईश्वरीय शक्तिका संगठन और विस्तार करें। जगत्से अज्ञानको दूर करें, अन्याय और अत्याचारको रोकें और सत्य, न्याय तथा दयाका प्रचार कर मनुष्योंमें परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढ़ावें।"

—प० मदनमोहन मालवीय

(११) "हे परमात्मन् ! मानव-जीवनकी समस्त प्रार्थनाओं-के भीतर एक ही अत्यन्त गम्भीरतम प्रार्थना (आकाङ्क्षा) है। उसे हम अपनी बुद्धिसे स्पष्ट जानें वा न जानें, उसे हम मुंहसे बोलें वा न बोलें, हमारे भ्रममें भी, हमारे दुःखमें भी, हमारी अन्तरात्मासे वह प्रार्थना (आकाङ्क्षा) सदा-सर्वदा तुम्हारे अभिमुख मार्ग खोजती रहती है। वह प्रार्थना यही है कि, हम अपने समस्त ज्ञानके द्वारा शान्तको जान सकें, अपने समस्त कर्मोंके द्वारा शिवका दर्शन कर सकें, अपने समस्त प्रेमके द्वारा अद्वैतको प्राप्त कर सकें। फलके लाभ-की आशाको हम तुमसे निवेदन करनेका साहस नहीं कर सकते; किंतु हमारी आकाङ्क्षा यही है कि, समस्त विघ्न-विक्षेप-विकृतिके मध्यमें भी इस प्रार्थनाको हम, समस्त शक्तिके साथ, सत्य रूपसे, तुम्हारे समीप उपस्थित कर सकें। हमारी समस्त अन्य वासनाओंको व्यर्थ करके हे अन्तर्यामिन् ! केवल इसी प्रार्थनाको स्वीकार करो कि, हम कभी-न-कभी ज्ञानमें, कर्ममें और प्रेममें यह उपलब्ध कर सकें कि, तुम्हीं "शान्तम् शिवम् अद्वैतम् हो।"

—कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अब भारतीय सन्तोंकी कुछ ईश्वर-विषयक अनुभवा-त्मक उक्तियोंको पढ़िये। ये उक्तियाँ पद्यात्मक हैं। इन सन्तोंमें काव्य-कलाकी भी यथेष्ट प्रतिभा थी। इनके बनाये हजारों अनूठे पद्य हैं—दर्जनों ग्रन्थ हैं। इनके अनुगामि-

योंकी संख्या भी अपार है। इनकी ये चुनी हुई उक्तियाँ कण्ठस्थ कर लेने लायक हैं।

(१२)

तुलसी बिलम न कीजिये, भजि लीजै रघुवीर।
तन-तरकससे जात है, साँस-सरीखे तीर॥
जो चेतन कहँ जड़ करै, जड़हि करै चैतन्य।
अस समर्थ रघुनाथहिं, भजहि जीव सो धन्य॥
'तुलसी' सब छल छाड़िकें, कीजै राम-सनेह।
अन्तर पतिसों है कहाँ, जिन देखी सब देह॥

—गोस्वामी तुलसीदास

(१३)

जा दिन मन-पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवरके, सबै पात झरि जैहैं॥
घरके कहैं वेग ही काढ़ो, भूत भये कोउ खैहैं।
जा प्रीतमसे प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरहैं॥
बिना 'गुपाल' कोउ नहीं अपना, जस कीरति रहि जैहैं।
सो तो 'सूर' दुर्लभ देवनको सतसंगतिमें पैहैं॥

—सूरदास

(१४)

मैं अपराधी जनमका, नख-सिख भरा विकार।
तुम दाता दुख-भञ्जना, मेरी करो सम्हार॥
अवगुन मेरे बापजी, बकसु गरीब-निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिताको लाज॥

अवगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार।
भावे 'बन्दा' बकसिये, भावै गरदन मार॥

—कबीरदास

(१५)

मात पिता तुमको दई, तुम ही भल जानूँ हो।
तुम तजि और भतारको, मनमें नहिं आनूँ हो॥
तुम हो पूरे साइयाँ, पूरन पद दीजै हो।
'मीरा' व्याकुल बिरहिनी, अपनी कर लीजै हो॥

—मीराबाई

(१६)

साईं किया सो ह्वै रहा, जो कुछ करै सो होइ।
करता करै सो होत है, काहे कलपै कोइ॥

हूँ बलिहारी सुरतकी, सबकी करै संभाल।
कीड़ा कुञ्जर पलकमें, करता है प्रतिपाल॥

--दादूदयाल

(१७)

'पलटू' संसय छूटि गे, मिलिया पूरा यार।
मगन आपने ख्यालमें, भाड़ पड़ै संसार॥

—पलटू साहब

(१८)

जो तुम तोरौ राम, मैं नहिं तोरूँ।
तुमसों तोरि कवनसों जोरूँ॥

सबहीं पहर तुम्हारी आसा।
मन क्रम वचन कहै 'रैदासा' ॥

—रैदास

(१९)

पानीकी इक बून्दसूं, साज बनाया जीव।
अन्दर बहुत अंदेस था, बाहर बिसरा पीव ॥

जठर-अगिनसे राखिया, ना साईं गुन भूल।
वह साहिब दरहाल है, क्यों बोवत है सूल ॥

—गरीबदास

(२०)

इत-उत जायके कमाई करि लाऊं कछु,
नेकु न अज्ञानी नर धीरज धरतु है।

'सुन्दर' कहत इक प्रभुके विश्वास बिनु,
बाद ही कूं वृथा सठ पचिके मरतु है ॥

—सुन्दरदास

(२१)

लाख चौरासी भरमत-भरमत, नेक न परी पिछान।
भव-सागरमें बह्यो जात हौं, रखिये श्याम सुजान ॥
हौं तो कुटिल अधम अपराधी, नहिं सुमिर्‌यौ तेरो नाम।
नरसीके प्रभु अधम-उधारन, गावत वेद-पुरान ॥

—नरसी मेहता

(२२)

गहौ मन सब रसको रस-सार।
लोक वेद कुल करमै तजिये, भजिये नित्य बिहार॥
गृह-कामिनि कंचन धन त्यागौ, सुमिरौ श्याम उदार।
गहि 'हरिदास' रीति सन्तनकी, गादीको अधिकार॥

—स्वामी हरिदास

(२३)

रूप रेख बरनौं कहा, कोटि सूर परकास।
अगम अगोचर रूप है, पावै हरिको दास॥

—यारी साहब

(२४)

यह 'दरिया'की बीनती, तुमसेती महराज।
तुम भृंगी मैं कीट हूं, मेरी तुमको लाज॥

—दरिया साहब (मारवाड़)

(२५)

सत-समरथमें राखि मन, करिय जगतको काम।
'जगजीवन' यह मन्त्र है, सदा सुक्ख बिसराम॥

—जगजीवन साहब

(२६)

प्रेम-मगन जे साधवा, बिचरत रहत निसंक।
हरिरसके माते 'दया' गिने राव ना रंक॥

—दयाबाई

(२७)

आठ पहर चौसठ घरी, जन 'बुल्ला' धरु ध्यान।
नहिं जानौ कौनी घरी, आइ मिलैं भगवान॥

—बुल्ला साहब

(२८)

'सहजो' भज हरिनाम कूं, तजो जगतसूं नेह
अपना तो कोइ है नहीं, अपनी सगी न देह॥

—सहजोबाई

इसी प्रकार ईश्वरके सम्बन्धमें इन महापुरुषोंकी भी बड़ी ही सुन्दर और हृदय-ग्राहिणी उक्तियाँ तथा अनुभूतियाँ हैं—तुकाराम, तिरुवल्लुवर, समर्थ रामदास, रामानन्द, ज्ञानेश्वर महाराज, नामदेव, एकनाम, पयहारी बाबा, सूरकिशोर, प्रेमयोगी मान, सदन कसाई, चरनदास, गुलाल साहब, दूलनदास, सर आनन्दस्वरूप, लो० तिलक, राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी योगानन्द आदि-आदि। संस्कृत-साहित्यमें जो सैकड़ों महापुरुषोंकी ईश्वर-विषयक मृदुल-मञ्जुल अनुभवात्मक उक्तियाँ हैं, उनमें ये महात्मा अन्यतम हैं—व्यास, नारद, शाण्डिल्य, शुकदेव, विदुर, जनक, उग्रसेन, युधिष्ठिर, प्रह्लाद, ध्रुव, नचिकेता, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, स्वामी विशुद्धानन्द, जयदेव, राजा अम्बरीष, हनूमान्, सुदामा आदि-आदि। "भक्त-

माल" में भी अनेक भक्तोंकी इस विषयकी सरस-सुखद उक्तियाँ बहुत हैं। विदेशी विद्वानोंमें भी ईश्वरकी अपरोक्षानुभूति करनेवाले कितने ही महापुरुषोंकी बड़ी ही प्रभाव-कारिणी उक्तियाँ हैं। ऐसे ही महापुरुषोंमें ये हैं—सेंट फ्रांसिस, सेंट लूई, प्लेटो, साक्रेटिस; टालस्टाय, संडरलैंड, जेम्स एलन, आरिसन मार्डन, मोर्टन अलेक्जेंडर, एमर्सन, मैकेरियस आदि आदि। इन महिलाओंकी इस सम्बन्धकी उक्तियाँ भी पढ़ने लायक हैं—गार्गी, मैत्रेयी, भारती, कुब्जा, यशोदा, अहल्या, शेवरी, विजया, कैथरिन, एलिज़ाबेथ, गेयों, टेरेसा आदि आदि। यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि, इस ग्रन्थमें प्रसङ्गतः जिन महात्माओं और भक्तिमती महिलाओंका उल्लेख पहले किया जा चुका है, उनके नाम यहाँ जान-बूझ कर छोड़ दिये गये हैं। यह भी ध्यान देनेकी बात है कि, इनमेंसे हर एक युगान्तर करनेवाले हैं, एक-एकने ईश्वर-भाव-भावित होकर ऐसे चमत्कार दिखाये हैं, ऐसी-ऐसी अद्भुत विभूतियाँ दिखायी हैं कि, लाखोंकी संख्यामें इनके अनुयायी बन गये हैं। समाधि-दशामें किसीकी जाँघपर आगका अंगारा रख दिया गया और वह हिमालयकी तरह अटल रह गया, किसीके ऊपर सर्प चढ़ गया और वह प्रशान्त महासागरकी तरह गम्भीर बना रहा, किसीको बाघ उठा ले गया और वह "सोऽहम्" की ध्वनिमें मस्त था, किसीके शरीरपर दीम-

करने छाता बना डाला और वह ईश्वरानन्दकी शुभ्र सरितामें बहने लग गया ! ऐसी दिव्य मूर्त्तियोंका जो आनन्द है, ज्ञान है, प्रताप है, वर्चस्व है, सो सब वही प्राप्त कर सकता है, जो ईश्वरीय पथका पथिक है अथवा रमता योगी है अथवा भक्ति-लहरीमें दिन-रात गोते लगाता रहता है। कुतर्क, कुवासना, कुसंग और कुकर्मसे जिनकी बुद्धि, मन और शरीर जर्जर हो चुके हैं, जो उद्दण्डता, अज्ञानता, जड़ता और अनेकताका जहर खानेवाले हैं, वे भला ईश्वरत्वकी शोभा और सौन्दर्य क्या देख पावेंगे ?

देशसेवा और ईश्वर

हमारे देशके कुछ "साम्यवादी" सज्जनोंका विचार है कि, ईश्वर-वाद ऊंच-नीच, छोटे-बड़े या विषम विचारोंका जनक है, ईश्वरवादियोंकी दृष्टि संकुचित होती है, वे परोपकारका महत्त्व नहीं समझते, विश्वबन्धुत्व-वाद और साम्यवादका वे महत्त्व नहीं जानते और वे धार्मिक झगड़ोंमें फंसे रहते हैं आदि आदि। परन्तु सूक्ष्म विचार करनेपर उनकी ऐसी सारी बातें बेबुनियाद ठहरती हैं।

वेदों, उपनिषदों और गीता आदिको देखनेसे पता चलता है कि, ईश्वरवाद ही सच्चा साम्यवाद है, समदर्शी ही सच्चा ईश्वर-भक्त है, सारे प्राणियोंको आत्मा समझनेवाला

ही ईश्वर-प्राप्तिका अधिकारी है तथा सर्वत्र एकता और समता देखनेवाला ही भगवान्के निकट पहुंच सकता है। ईश्वरवादी तो डंकेकी चोट कहता है कि, "शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।" अर्थात् विद्वान् लोग कुत्ते और चाण्डाल तकमें समदृष्टि रखते हैं। प्रत्येक ईश्वरवादीकी यह पवित्र अभिलाषा रहती हैं कि—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्॥"

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी नीरोग हों, सभी कल्याण देखें—कोई भी दुःखी न हो। क्या इससे भी बढ़कर कोई साम्यवाद हो सकता है? ईश्वरवादीकी तो यह भीम गर्जना सदासे सुनाई दे रही है कि, "उदार-चरितानां तु वसुधैव-कुटुम्बकम्।" यही सच्चा Universal Brotherhood है। प्रत्येक ईश्वरवादी गौरवके साथ पढ़ता है कि—

"अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचन-द्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय पर-पीड़नम्॥"

अर्थात् अठारहो पुराणोंमें व्यासके दो ही उपदेश हैं—(१) परोपकार करना पुण्य है और (२) दूसरेको दुःख पहुंचाना पाप है। ईश्वरवादी तो इतनी दूरतक मानता है कि—

"परोपकृति-कैवल्ये तोलयित्वा जनार्दनः।
गुर्वीमुपकृतिं मत्वा ह्यवतारान् दशाग्रहीत्॥"

अर्थात् ईश्वरने परोपकार और अपनी शान्त अवस्थाको

तराज़ूके दो पलड़ोंपर तौल कर देखा, तो परोपकारवाला पलड़ा भारी निकला। इसीसे भगवान्‌ने दस अवतार धारण करके जनताका उपकार किया।

भला जिनके ईश्वरके संसारमें आनेका ही अर्थ परोपकार और समदृष्टि है, वे कैसे परोपकारसे दूर भाग सकते हैं अथवा ऊँच-नीच दृष्टि रख सकते हैं? हाँ, जो इन उपदेशोंसे उदासीन रहकर मनमानी करेंगे, वे न तो ईश्वरकी कृपा प्राप्त कर सकेंगे, न सच्चे ईश्वरवादी बन सकेंगे।

यह जो सन्देह किया जाता है कि, ईश्वरवादी धार्मिक झगड़ेमें पड़े रहते हैं वा धर्मवादके कारण जनताका बड़ा सत्यानाश हुआ है, वह भी निर्मूल ही है। धर्मका तो लक्षण ही है—

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय-निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म-लक्षणम्॥"

अर्थात् धैर्य, क्षमा, मनका दमन, चोरी न करना, स्वच्छता, जितेन्द्रियता, विवेक, विद्या, सत्य भाषण और क्रोध न करना—धर्मके ये दस लक्षण हैं। इनसे झगड़े या मानव-विनाशसे क्या मतलब? धर्म विनाशके लिये नहीं, प्रजाके रक्षणके लिये है—

"धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारण-संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥"

अर्थात् धारण वा रक्षण करनेसे 'धर्म' नाम पड़ा।

धर्म प्रजाका रक्षण करता है। जिससे रक्षण होता है, वही धर्म है—यह निश्चय है।

संसारके जितने धर्म हैं, सबका उद्देश्य जनताकी रक्षा और उन्नति है। धर्मका अर्थ रूढ़िवाद नहीं है। तब, जो धर्मके नामपर पर-पीड़न करता है, वह धर्म-शून्य है, अधार्मिक है। वह ईश्वरीय कानून (धर्म) से दूर रहता है; इसलिये धर्म-द्रोही है, पपात्मा है।

यह बात अवश्य है कि, धर्म और ईश्वरके नामपर यूरोपमें, मध्य युगमें, मानव-संहार हुआ है और भारतमें भी नाना तरहके अत्याचार होते आये हैं। परन्तु इससे धर्म और ईश्वरपर दोष नहीं दिया जा सकता—कुछ नकली धार्मिक और कुछ ढोंगी ईश्वरवादी ही दोषी हैं। ऐसे नकलची लोगोंसे अवश्य ही सावधान रहना चाहिये—इनका सुधार करना चाहिये और इन्हें दण्ड भी देना चाहिये। शरीरमें फोड़ा होनेपर उसकी दवा होनी चाहिये—शरीरको ही बोटी-बोटी काट कर फेंक नहीं देना चाहिये। यह भी यहाँ ध्यानमें रखनेकी बात है कि, धर्मके नामपर जितना नर-संहार हुआ है, उससे बीसियों गुना ज्यादा राजनीतिके नामपर हुआ है। तो क्या इससे राजनीतिका कभी परित्याग किया गया ?

कुछ साम्यवादी यह भी कहते हैं कि, ईश्वरवादके झंझटसे बचकर अनीश्वरवादी ही अधिक देश-सेवक हो

सकते हैं। परन्तु उनकी यह धारणा गलत है, क्योंकि स्टालिन आदि कुछको छोड़कर संसारके सभी देश-सेवक ईश्वर-भक्त हैं। हमारी कांग्रेसके कितने सभापति नास्तिक थे वा हैं? राणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, लो० तिलक, महात्मा गांधी जैसे ईश्वरवादी महा-पुरुषोंसे बढ़कर कौन साम्यवादी देश-सेवक है? ईश्वर-वादमें कोई झंझट भी नहीं है। बल्कि ईश्वरवादी तो ईश्वर-प्रार्थना और ईश्वर-भावनाके द्वारा दिव्य तेज, अमोघ साहस, अदम्य धैर्य और अलौकिक शान्ति आदि भव्य गुण बराबर प्राप्त कर उनका देशोत्थानमें उपयोग करता रहता है।

नयी रोशनीके कई साम्यवादी ऐसा भी सन्देह किया करते हैं कि, ईश्वरवादके पचड़ेमें रहनेवाले हमारे पूर्वज देशमाताका महत्त्व नहीं समझते थे, राजा-महाराजा मन-मानी किया करते थे, प्रजातन्त्र-राज्यका नामतक नहीं था और उनमें फूटकी ज्वाला धधका करती थी। आइये, इनके इन सन्देहोंपर भी विचार कर लीजिये। अथर्ववेद (१२ वें काण्ड) के "पृथिवी-सूक्त" में एक मन्त्र है—

"अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः॥"

अर्थात् मैं अपनी मातृभूमिके लिये और उसके दुःख-

मोचनके लिये सब प्रकारके कष्ट सहनेको तैयार हूं। वे कष्ट जिस ओरसे आवें और चाहे जिस समय हों, मुझे चिन्ता नहीं है।

इससे तो मालूम पड़ता है कि, हमारे पूर्वज देश-माताकी रक्षाके लिये प्राणतक देनेको तैयार रहते थे और देशके दुःखको दूर करनेके लिये नाना प्रकारके कष्ट झेला करते थे। इसके आगेका मन्त्र है—

"यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोहतः॥"

मतलब यह कि, अपनी मातृभूमिके सम्बन्धमें जो कहता हूं, वह उसकी भलाईकी बात है, जो देखता हूं, वह उसकी सहायताके लिये है। मैं ज्योतिःपूर्ण, तेजस्वी और बुद्धियुक्त होकर मातृभूमिका दोहन करनेवाले शत्रुओंका विनाश करता हूं।

देश-भक्तिके साथ स्वार्थी शासकों, चोरों, डाकुओं और आक्रामकोंसे देशकी रक्षा करनेका इसमें उल्लेख है। क्या इन मन्त्रोंसे भी बढ़कर देश-सेवाका उपदेश संसारकी किसी अन्य जातिमें है?

दशानन-वध और लङ्का-विजय कर लेनेके बाद एक दिन

लक्ष्मण आदि भगवान् रामचन्द्रसे कहने लगे कि, "यदि लङ्का (वर्त्तमान सिलोन) में ही अपनी राजधानी बना ली जाय और अयोध्या न लौटा जाय, तो क्या हानि है ?" इसपर भगवान् श्रीरामने उत्तर दिया—

"इयं स्वर्णपुरी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥"

तात्पर्य यह है कि, लक्ष्मण, यह लङ्का सोनेकी नगरी है, तो भी मुझे पसन्द नहीं है । जनना और जन्मभूमि तो स्वर्गसे भा बढ़कर हैं ।

अपनी जन्मभूमिको स्वर्गसे भी बढ़कर माननेवाले हमारे पूर्वजोंका देश-प्रेम क्या अतुलनीय नहीं है ?

यह अनूठा श्लोक भी खूब प्रसिद्ध है—

"जननी जन्मभूमिश्च जाह्नवी च जनार्दनः ।
जनकः पञ्चमश्चैव जकाराः पञ्च दुर्लभाः ॥"

अर्थात् जननी (माता), जन्मभूमि (देशमाता), जाह्नवी (पतितपावनी गङ्गा), जनार्दन (ईश्वर) और जनक (पिता)— ये पाँचो जकारादि नाम दुर्लभ हैं ।

नीचे लिखा श्लोक तो दो-तीन पुराणोंमें है—

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि ।
धन्यास्तु ये भारत-भूमि-भागे ॥

स्वर्गापवर्गास्य च हेतु-भूते ।
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥"

सारांश यह है—देवता लोग यह गाया करते हैं कि, वे पुरुष बड़े भाग्यशाली हैं, जो देवत्व-प्राप्तिके अनन्तर भी स्वर्ग और मोक्षके कारण भारत-भूमिमें पुनः उत्पन्न होते हैं।

मनुजीका यह श्लोक तो सभी संस्कृतज्ञ जानते होंगे—

"एतद्देश-प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥"

अर्थात् भारतमें उत्पन्न ब्राह्मणसे संसारके सब मनुष्य अपना-अपना आचरण सीखें।

इन उद्धरणोंसे मालूम होता है कि, हमारे ईश्वर-भक्त पूर्वज आदर्श देश-भक्त थे, वे स्वर्गसे भी बढ़कर अपनी जन्मभूमिको मानते थे और इस दिशामें अपने देशको और अपनेको संसारमें आदर्श और शिक्षक समझते थे।

यही नहीं, हमारे यहाँ अनेकानेक प्रजातन्त्र राज्य भी हो चुके हैं। राजा वा सम्राट्का चुनाव प्रजा किया करती थी और प्रजाके अनुकूल ही राजाको शासनचक्र चलाना पड़ता था। ऋग्वेद (१०।१७३।१) का मन्त्र है—

"आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठा विचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद् राष्ट्रमधिभ्रशत्।"

इसका अर्थ यों है—राजन, तुझे मैंने (प्रजाने) राष्ट्रपति बनाया। तू इस देशका शासक बन। अटल, अविचल और स्थिर होकर रह। ऐसा रह कि, प्रजा तुझे चाहे और तेरा राष्ट्र वा राजत्व नष्ट न होने पावे।

अथर्ववेद (६।८७।१) का एक मन्त्र भी ऐसा ही है। उसका अनुवाद ग्रिफिथ साहबने यों किया है—

"Here art thou, I have chosen thee;
Be steadfast and immovable;
Let all the Classes desire thee.
Let not thy Kingship fall away".

अर्थात् यहाँ तू है। मैंने तुझे चुना है। स्थिरता और दृढ़ताके साथ रह। सारी जनता तेरी इच्छा करे। तेरा राजत्व तुझसे भ्रष्ट न हो।

इन दोनों मन्त्रोंसे यही बात मालूम होती है कि, प्रजामेंसे ही एक राजाका चुनाव होता था और प्रजाके विरुद्ध राजा राज्य नहीं कर सकता था। अथर्व (३।३)के एक मन्त्रका आशय तो यह भी मालूम पड़ता है कि, राष्ट्रिय महासभा वा कांग्रेसके बहुमतके अनुसार राजा वा राष्ट्र-पतिका निर्वाचन होता था और जो राजा अत्याचारी होता

था, वह प्रजाके द्वारा सपरिवार नष्ट कर दिया जाता था। सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० काशीप्रसाद जायसवालने अपने "Hindu Polity" ग्रन्थमें भी अनेकानेक हिन्दू-प्रजातन्त्र-राज्योंका विवरण दिया है।

याज्ञवल्क्य ऋषिने अपनी स्मृतिमें लिखा है कि, प्रजाके पीड़न-रूपी सन्तापसे पैदा हुई आग राज्य, लक्ष्मी, कुल और प्राणोंको जला कर खाक कर डालती है—

"प्रजापीड़नसन्तापात् समुद्भूतो हुताशनः।
राज्यं श्रियं कुलं प्राणान्नादग्ध्वा विनिवर्त्तते॥"

मनुस्मृति (७।१११) में भी लिखा है—

"मोहाद् राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥"

मतलब यह कि, मूढ़ताके कारण जो अपनी प्रजापर अत्याचार करता है, वह राजा शीघ्र ही राज्य, जीवन और परिवारके साथ नष्ट हो जाता है। मनुस्मृतिके ७ वें अध्यायके १६१ श्लोकमें उदाहरण भी दिया गया है—

"वेनो विनष्टोऽविनयात् नहुषश्चैव पार्थिवः।
सुदासो यावनिश्चैव सुमुखो निमिरेव च॥"

अर्थात् उद्दण्डता वा अत्याचारके कारण वेन, नहुष, यवन-जातीय सुदास, सुमुख और निमि राजा नष्ट हो गये।

ऋषियोंके द्वारा वेनका मारा जाना और नहुषका सर्प

बनाया जाना तो प्रसिद्ध ही है। जो लोग प्रजापीड़नके कारण रूसके बादशाह जारका मारा जाना अद्वितीय घटना समझे हुए हैं, वे ऊपरके श्लोक पढ़कर यह अनुमान लगावें कि, हिन्दूजाति इस दिशामें रशियनोंसे कितनी बढ़ी हुई थी। उन दिनों मारण, पद-च्युति आदिका नियम रहनेके कारण ही राजा वा राष्ट्रपति अपने सुखकी जरा भी परवा न कर और नाना प्रकारके कष्ट उठाकर प्रजाहितके कार्योंमें लगा रहता था। यही नहीं, प्रजाहितके लिये वह अपने बाल-बच्चोंतकको न्योछावर कर देनेको तैयार रहता था। भगवान् श्रीरामचन्द्रने भी इस बातको स्पष्ट कहा था—

"राज्यं कुलं च लक्ष्मीं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥"

अर्थात् प्रजाकी मङ्गल-साधना वा उसके अनुरञ्जनके लिये अपनी सम्पदा, परिवार, राज्य और अपनी पत्नी जानकी तकको छोड़नेमें मुझे जरा भी दुःख नहीं।

क्या ऐसा आदर्श सम्राट् वा राष्ट्रपति संसारमें आज भी कहीं मिल सकेगा? नहीं। इसीसे महात्मा गांधी 'राम-राज्य'को ही फिर भारतमें देखनेके पक्षपाती हैं।

फूटकी बात भी निराधार है। ऋग्वेदका अन्तिम सूक्त 'एकताका सूक्त' ही कहलाता है। यजुर्वेद (वाजसनेय-संहिता) के चालीसवें अध्यायमें, उपनिषदोंमें, स्मृतियोंमें और पुरा-

णोंमें ऐसे कितने ही स्थल मिलेंगे, जहाँ हमारे पूर्वजों-को एकत्व-शक्ति और संघटन-सामर्थ्यके उज्ज्वल आदर्श वर्त्तमान हैं। क्या असंघटित जाति अशोक, चन्द्रगुप्त, हर्षवर्द्धन शिलादित्य आदिके विशाल साम्राज्यों और अनेक प्रजातन्त्र-राज्योंकी स्थापना कर सकती है?

फलतः हमारे ईश्वरवादी पूर्वज समदर्शिता, एकता, देशभक्ति आदिकी आदर्श प्रतिमा हैं और उनका ईश्वरवाद तथा धर्म देशकी उन्नति और व्यक्तित्वके अभ्युदयमें अपूर्व सहायक हैं। हमें उनके पवित्र आदर्शों और प्राञ्जल सिद्धान्तोंका अनुधावन करना चाहिये।



ईश्वर-प्राप्तिके उपाय

ईश्वरकी प्राप्तिके अनेकानेक उपाय और साधन हैं; परन्तु वे सब ज्ञान, कर्म, योग और उपासना (भक्ति, स्तुति, प्रार्थना, नाम-कीर्त्तन आदि) के अन्तर्गत आ जाते हैं। क्रमशः हर एकका विवरण पढ़िये।

वैदिक साहित्यके तीन विभाग हैं—ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड। उपनिषद् आदिका प्रतिपाद्य ज्ञानकाण्ड है, ऐतरेय आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों, मीमांसा और आश्वलायन आदि कल्पसूत्रोंका कर्मकाण्ड तथा चारों वैदिक संहिताएं आदिका उपासना-काण्ड। उपनिषदोंको उत्तर वैदिक कालमें रची गयी माना जाता है; इसलिये उनका भी एक नाम वेदान्त है। व्यास मुनिके सूत्रोंको भी वेदान्त कहा जाता है। उपनिषदों और वेदान्त-सूत्रोंको ब्रह्मविद्या भी कहा जाता है। इन सबके मतसे ईश्वर-ज्ञानसे ही ईश्वर-प्राप्ति होती है। ईश्वर-प्राप्तिका अर्थ है कैवल्य वा मोक्ष। ईश्वर-ज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञानके विना मोक्ष असम्भव है।

केनोपनिषद्में लिखा है—"इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।" अर्थात् यदि इस जन्ममें ईश्वरको जान लिया, तब तो ठीक है और यदि नहीं जाना, तो महानाश हो जायगा। इसलिये परमात्माका भली भाँति ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यावश्यक है। वेदान्त-

विदोंका तो दृढ़ सिद्धान्त है कि, "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।" अर्थात् विना ज्ञानके मुक्ति वा ईश्वर-प्राप्ति नहीं हो सकती। परमात्म-ज्ञानके साथ ही आत्म-ज्ञान हो जायगा और परमात्मासे जो भिन्न पदार्थ हैं, उनका भी ज्ञान हो जायगा। इस तरह चराचरका ज्ञान हो जानेपर अन्तःकरण निर्मल बन जायगा और निर्मल अन्तःकरण परमात्माकी ज्योतिसे उद्भासित हो उठेगा। प्रकाशमय अन्तःकरण और जीवात्मामें अज्ञान और अन्धकारका लेश भी नहीं रहेगा। अज्ञान ही बन्धन है। इसके दूर होते ही मुक्ति और ईश्वरकी प्राप्ति स्वयमेव हो जायगी।

ब्रह्मज्ञानके लिये उपनिषदोंने तीन साधन भी बताये हैं—ब्रह्मविद्या-विषयक ग्रन्थोंका श्रवण, सुने हुए तत्त्वका मनन वा विचार और उसका निदिध्यासन वा बार-बार ध्यान। उपनिषदोंके मतमे (और वेदान्त-दर्शनके मतमें भी) कर्म, पातञ्जल योगकी प्रक्रिया और उपासना ब्रह्म-ज्ञानके उपकरण हैं। महाज्ञानी शङ्कर वा शङ्कराचार्यने भी अपने वेदान्त-भाष्यमें ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके चार साधन लिखे हैं—नित्यानित्य-वस्तु-विवेक (कौन वस्तु नित्य है और कौन अनित्य है, इसका विचार), इहामुत्रफल-भोग-विराग (मर्त्य-लोक और स्वर्गलोकके फलोंको भोगनेसे विराग), शम, दम आदि साधनसम्पत् (इन्द्रिय, मनका वशीकरण आदि) और मुमुक्षुत्व (मुक्ति पानेकी इच्छा)। जबतक मनुष्य इन चारो

साधनोंमें सिद्ध नहीं हो लेगा, तबतक ब्रह्मज्ञान अथवा आत्म-ज्ञान प्राप्त करना असम्भव ही है। जो क्षणिक सुखका अभिलाषी है, जो अनित्यको नित्य और नित्यको अनित्य जानता है और जो मन तथा इन्द्रियोंका दास है, उस अज्ञानीको तो ज्ञान छू भी नहीं सकेगा—उसके समल अन्तः-करणमें तो परमात्माकी ज्योति पड़ना असम्भव ही है। प्रसिद्ध ज्ञानी नचिकेताने भी उपनिषद्में यही बात कही है। सांख्यशास्त्र भी ज्ञानसे ही मोक्ष मानता है। न्याय और वैशेषिक दर्शनोंने भी तत्त्व-ज्ञानसे मुक्ति मानी है।

भागवत गीताको भी उपनिषद् और ब्रह्मविद्या माना गया है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्यने तो अपने "History of Sanskrit Literature" ग्रन्थमें, अनेक युक्तियोंसे, गीताको वैदिक साहित्यके अन्तर्गत माना है। उसमें भी, कई स्थलोंपर, ज्ञानका बड़ा महत्त्व बताया गया है। ब्रह्म और आत्माके ऐक्यज्ञानकी जैसी आवश्यकता उपनिषदादिमें कही गयी है और जैसी आवश्यकता अद्वैत-वादी आचार्य मानते आये हैं, प्रायः वैसी ही आवश्यकता गीताने भी मानी है। गीताके चौथे अध्यायमें इस सम्बन्धके कई वचन हैं। ३४ वें श्लोकमें ज्ञानको गुरुके द्वारा प्राप्त होनेकी बात लिखी गयी है। ३५ वेंमें इस ज्ञानके प्राप्त हो जानेपर आत्मा और परमात्मामें सारे प्राणियोंको देखनेकी बात लिखी गयी है। इसके आगे श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है

कि, "अर्जुन, यदि तू घोर पाप करनेवाला है, तो भी कोई चिन्ता नहीं—इस ज्ञान-रूपिणी नौकाके द्वारा तू सारे पापोंको पार कर जायगा। अर्जुन, जैसे प्रज्वलित आग इन्धनको भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञान-रूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों (कर्म-वासनाओं) को जलाकर खाक कर देती है। इसलिये इस संसारमें ज्ञानके समान कुछ भी पवित्र नहीं है। × × × अर्जुन, जितेन्द्रिय, तत्पर और श्रद्धालु पुरुष ज्ञानको पाता है, जिससे शीघ्र ही पूर्ण शान्ति मिल जाती है।" ७ वें अध्याय, १८ श्लोकमें "तो श्रीकृष्णने ज्ञानीको अपनी आत्मातक माना है। १८ वें अध्याय (२० श्लोक) में श्रीकृष्णने कहा है—"अर्जुन, जिस ज्ञानसे पुरुष सारे प्राणियोंमें एक नित्य परमात्म-भावको देखता है, वह सात्त्विक है—श्रेष्ठ है।" ज्ञानीका सर्वोत्तम लक्षण १३ वें अध्यायके २७ वें श्लोकमें है—"जो समस्त विनाशी पदार्थोंमें नित्य और समान भावसे अवस्थित परमेश्वरको देखता है, वही सच्चा देखनेवाला (ज्ञानी) है।"

वस्तुतः ईश्वर-ज्ञानीको किसी तरहका सन्देह नहीं रह जाता; वह सारे प्राणियोंके दुःखमें कातर रहता है, वह सबका सेवक है, वह सबमें, फूलोंमें धागेकी तरह, परमात्माको देखता है और वह अजातशत्रु हो उठता है। यही समत्व-स्थिति है, स्थिति-प्रज्ञता है। इसे प्राप्त कर लेनेवाला पुरुष जीवन्मुक्त है, परमहंस है। वह पूर्ण ज्ञान, पूर्ण प्रकाश और पूर्ण आनन्दका अधिष्ठान है। उसे बन्धन कैसा?

ऐतरेय आदि ब्राह्मणग्रन्थ, आश्वालायन आदि कल्प-सूत्र, जैमिनीय मीमांसा, स्मृति-ग्रन्थ, तन्त्र आदि कर्मके पक्षपाती हैं। इन सब ग्रन्थोंमें प्रायः सकाम कर्मोंका उल्लेख है। वैदिक संहिताओंमें भी जितनी स्तुतियाँ की गयी हैं, उनमें अधिकांश सकाम कर्मको लक्ष्यमें रखकर ही। सकाम-कर्म-वादी ग्रन्थोंका अन्तिम उद्देश्य स्वर्ग है और स्वर्ग-प्राप्ति ही मोक्ष है। वह स्वर्ग नित्य है, दुःख-रहित है और वहाँ अक्षय्य आनन्द आदि दिव्य भोगोंकी प्राप्ति होती है। उस स्वर्गमें पहुँचा हुआ व्यक्ति फिर मर्त्य-लोकमें नहीं आता। ऐसे कर्मकाण्डके पक्ष-पातियोंका मत है कि, कर्मकाण्ड ही हिन्दूधर्म और हिन्दू-संस्कृतिका प्राण है और जो वैदिक कर्मकाण्ड (यज्ञ, हवन आदि) से भागते हैं, वे हिन्दू-सभ्यताका मर्म नहीं समझते। कुछ मीमांसकोंका तो इतनी दूरतक मत है कि, यदि स्वर्ग-प्राप्ति सकाम कर्म है, तो मोक्ष वा निर्वाण प्राप्त करनेका प्रत्येक मार्ग सकाम कर्म है; क्योंकि जैसे स्वर्ग-प्राप्तिमें स्वार्थ निहित है, वैसे ही किसी अन्य मार्गमें भी। मीमांसकोंकी कर्मवादकी कट्टरताके ही कारण वे "कर्मति मीमांसकाः" कह कर प्रसिद्ध हैं।

उपनिषदोंका भी मत है कि, कर्म करते हुए हो सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करनी चाहिये—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि

जिजीविषेत शतं समाः ।" परन्तु यह कर्म सकाम नहीं, निष्काम कर्म है । दूसरोंपर निष्काम कर्मका ही प्रभाव और संस्कार ऐसा पड़ता है, जिससे समाज और देशकी उन्नति होती है—ऐसा निष्काम-कर्मवादियोंका अभिमत है । अद्वैतवादी होते हुए भी शङ्कराचार्य, स्वामी विवेकानन्द आदिने जीवन भर निष्काम कर्म ही किये । वेदान्तके "अविभागेन दृष्टत्वात्" सूत्रके अनुसार लो० तिलक भी ब्रह्मात्मैक्यज्ञानसे मुक्ति मानते थे; परन्तु निष्काम कर्मयोगके वे जबर्दस्त प्रचारक थे । उन्होंने "ज्ञान-मूलक कर्मयोग" के प्रसारके लिये भागवत गीतापर "गीता-रहस्य" नामका एक प्रकाण्ड भाष्य ही लिख डाला है । उनका मत है कि, यदि गीताका प्रतिपाद्य केवल ज्ञानी और कर्म-संन्यासी ही बनना हो, तो अर्जुन तो ज्ञानपूर्वक कर्म-संन्यासके लिये तैयार ही था—गाण्डीवको फेंककर जंगलमें जानेको सन्नद्ध ही था—तब श्रीकृष्णको गीताका उपदेश देनेकी जरूरत ही क्या थी ? श्रीकृष्णका उद्देश्य तो कर्म-संन्यासका असली रहस्य बताकर अर्जुनको "धर्म्य युद्ध" (निष्काम कर्मयोग) के लिये तैयार करना था । अर्जुनने धर्म-युद्ध किया—गीताका उपदेश सफल हुआ । इसलिये गीताका एक मात्र प्रतिपाद्य "ज्ञानमूलक और भक्ति-पूर्वक निष्काम कर्मयोग ही है ।" अब हमें यह देखना चाहिये कि, यह कर्मयोग ईश्वर-प्राप्तिका कहाँतक साधन है।

गीतामें श्रीकृष्णने कहा है—"अर्जुन, इस संसारमें दो प्रकारकी निष्ठा वा सिद्धि है—ज्ञानियोंकी ज्ञान-योगसे और योगियोंकी कर्मयोगसे।" (३।३) कर्म-संन्यासी सांख्योंको ज्ञानी और निष्काम-कर्म-वादियोंको योगी कहा गया है। गीतामें कर्म-कौशलको भी योग कहा गया है—'योगः कर्मसु कौशलम्।' इन दोनों मार्गोंको मान कर भी श्रीकृष्णने कहा है कि, जबतक शरीर है, तबतक सारा कर्म छोड़ना असम्भव है और सारे कर्म छोड़ देनेसे शरीर-यात्रा भी नहीं चल सकती। (३।५ और ८) इसलिये संन्यासका अर्थ सारे कर्मोंको छोड़ना नहीं है; बल्कि सकाम कर्मोंको छोड़ना ही संन्यास है। श्रीकृष्णने सकाम-कर्मवादी वेदोंसे भी अर्जुनको दूर रहनेका उपदेश दिया है। उन्होंने समत्वको अर्थात् कर्मके फलकी सिद्धि और असिद्धिमें समान भावसे रहनेको योग वा कर्मयोग कहा है और इसीमें स्थित होकर अर्थात् कर्मयोगी बनकर कर्म करनेका उपदेश दिया है। (२।४८) कर्मयोगीका अधिकार कर्म करनेमें ही है, फला-शामें नहीं। (२।४७) फलकी आशा करनेवालेको श्रीकृष्णने मूर्खतक कहा है, चाहे वह वेद-भक्त ही क्यों न हो। (२।४२-४३) उन्होंने कर्म-फलकी आशा और वासनाको छोड़कर कर्म करनेवालेको ही वस्तुतः संन्यासी और योगी—सब कुछ कहा है। (६।१) भगवान् कृष्णने इस बातको स्पष्ट ही कहा कि, सारे कर्मोंको परमात्मामें अर्पण कर और

कर्म-फलकी आसक्तिको छोड़कर जो पुरुष कर्म करता है, वह पापोंसे वैसे ही निर्लिप्त रहता है, जैसे जलसे कमलका पत्ता रहता है। उन्होंने उदाहरण भी दिया है कि, इस कर्मयोगसे ही जनक आदिने सिद्धि (ईश्वर-प्राप्ति वा मुक्ति) पायी थी। (३।२०) "लोक-संग्रह" वा मानव-हितके लिये सिद्ध पुरुषको भी, मानापमान, लाभालाभ आदिकी चिन्ताको छोड़कर, निष्काम कर्म करनेका उपदेश दिया गया है। इस सम्बन्धमें श्रीकृष्णने स्वयं अपना ही उदाहरण दिया है। कहा है कि, चूंकि बड़ोंका अनुधावन ही संसार करता है; इसलिये संसारमें कोई वस्तु पाने योग्य वा न पायी हुई मेरे लिये नहीं है, तो भी मैं कर्म करता ही हूँ। (३।२१–२२) ६ वें अध्याय (२७ श्लोक) में उन्होंने सारे कर्मोंका कृष्णार्पण वा ब्रह्मार्पण करके लोकसेवा करनेका प्रबल समर्थन किया है। यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि, लोक-सेवक संन्यासी और कर्मयोगीके मार्गोंको एक ही कहा गया है और दोनोंको ईश्वर-प्राप्तिका उपाय बताया गया है। (५।४-५)

फलतः सकाम कर्म और फलाशाको छोड़कर और जय, विजय, लाभ, हानि, सुख, दुःख, मान, अपमान आदिकी चिन्ता न कर, समता-बुद्धिसे, परोपकारके लिये, कर्म करना ईश्वर-प्राप्तिका सुन्दर उपाय है। इस दृष्टिसे उन सभी देशभक्तों और मानव-सेवकोंको भी अवश्य ही ईश्वर-प्राप्ति

होगी, जो ईश्वरानुभवसे हीन होकर भी निष्काम कर्म करते हैं।

हमारे छहो दर्शनोंमें एक दर्शन पातञ्जल योगशास्त्र है। इसके मतसे सुख-दुःख चित्तके धर्म हैं; आत्माके साथ उनका कोई सम्पर्क नहीं है। इस प्रकारका तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करनेपर चित्तकी शुद्धि हो जाती है, जिससे मोक्ष मिल जाता है। अशुद्ध चित्त मैला दर्पण है, उसमें आत्म-तत्त्व और परमात्म-तत्त्वका दर्शन नहीं हो सकता। विना परमात्म तत्त्वके दर्शनके आत्मा अपने स्वरूपमें अवस्थित नहीं हो सकती और विना स्वरूपावस्थितिके मुक्ति असम्भव है। महर्षि पतञ्जलिका मत है कि, "कर्म-फल, ताप या दुःख, विषय-संस्कार और गुणोंकी वृत्तियोंमें आपसमें विरोध होनेके कारण विवेकी पुरुषोंके ध्यानमें संसारमें सभी जगह दुःख है या संसार दुःखमय है। इससे पार पानेका उपाय योग है और योग चित्तकी वृत्तियोंका रोकना है—"योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः।"

भागवत गीताके छठे अध्यायमें पातञ्जल योगको ईश्वर-प्राप्तिका उपाय बताया गया है। योगके यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि अङ्गोंका विवरण भी वहाँ दिया गया है। योग करनेवालेको जितेन्द्रिय, संकल्पत्यागी, मानापमान, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख आदिमें सम-बुद्धि होनेको लिखा है। उसे अन्तःकरण वा चित्तकी वृत्तियोंको शान्त वा

विकार-शून्य बना देना चाहिये । योगीको मित्र, बैरी, द्वेषी आदिमें सम-दृष्टि रहना चाहिये । उसे एकान्त और पवित्र स्थानमें, आसन लगाकर और मनको एकाग्र करके, चित्त-शुद्धिके लिये—वृत्तियोंको रोकनेके लिये ध्यानस्थ होना चाहिये । जिस समय वृत्तियाँ रुक जाती हैं और चित्त उपरत हो जाता है, उस समय योगीको परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है । यह भी कहा गया है कि, वृत्तियोंको रोकनेके लिये मनको निश्चल करना आवश्यक है और अभ्यास तथा वैराग्यसे मन निश्चल होता है ।

सत्त्व, रज और तम नामके गुणोंवाले अन्तःकरणको योग चित्त कहता है । इन गुणोंकी कमीवेशीके कारण चित्त अनेक रूप बनाता रहता है । इन रूपोंका ही नाम वृत्ति है । किसी एक वस्तुका अवलम्बन करके स्थिर हुए चित्तको एकाग्र कहा जाता है और इससे भी अत्युन्नत चित्तको निरुद्ध माना गया है । एकाग्र चित्तके योगका नाम सविकल्प और निरुद्ध चित्तके योगका नाम निर्विकल्प है । इन बातोंका योगदर्शनमें बड़ा विस्तार है । परन्तु हमें उतने विस्तारमे न जाकर अपने छोटेसे दायरेमे ही रहना चाहिये ।

योगके जो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि आदि आठ अङ्ग हैं, उनमें नियम के अन्तर्गत ईश्वर-चिन्तन है । योगशास्त्र कहता है कि,

ईश्वर प्रकृतिकी सृष्टि, स्थिति और लय करता है और उसीकी कृपासे दुःखी जीव आनन्दमय बनते हैं। ईश्वरका सर्वश्रेष्ठ नाम ओंकार है; अतः प्रत्येक योगाभ्यासीको ओंकारका जप और उसका चिन्तन करना चाहिये। जप और चिन्तन करनेसे मनोमल दूर होता है, मन एकाग्र हो जाता है, चित्तवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं। ईश्वर-ध्यानके दृढ़ हो जानेपर विना किसी सहायताके योगीको समाधि प्राप्त हो जाती है। ईश्वरके प्रणिधान और भक्तिमें परिपक्व योगी यदि किसी योगाङ्गका अनुष्ठान नहीं करे, तो भी उसे निर्विकल्प समाधि, मुक्ति अथवा ईश्वर-प्राप्ति हो जाती है। यह भी कह सकते हैं कि, ईश्वरांश होनेके कारण परमात्मामें मिलना जो आत्माका स्वाभाविक धर्म है, वह उसे ईश्वर-ध्यानसे प्राप्त हो जाता है।

अबतक ईश्वर-प्राप्तिके तीन उपाय कहे गये हैं—ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और योगमार्ग। चौथा उपासना वा भक्तिवाला मार्ग है। वैदिक संहिताए, पुराण, उपपुराण, शाण्डिल्यका भक्ति-दर्शन आदि अनेक ग्रन्थ इस मार्गका प्रतिपादन करनेवाले हैं। भक्तिमार्गानुगामी कहते हैं कि, केवल ज्ञानके द्वारा असीम सत्तामें अपनेको मिला देनेकी चेष्टा करना कठिन है—"क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्।" कर्म और अकर्मका रहस्य जानना भी विकट है—"गहना कर्मणो गतिः।" योगमार्ग भी अतिकष्ट-साध्य है—"सुदुश्चरमिमं मन्ये।" फलतः

भक्तिमार्ग सबसे सरल है—छोटे, बड़े, मूर्ख, पण्डित—सबके लिये साध्य है।

ज्ञान, कर्म और योगके मार्गोंको बतानेवाली भागवत गीता भी भक्ति-मार्गको श्रेष्ठ कहनेवाली जान पड़ती है। गीताके छठे अध्यायके अन्त (४६—४७ श्लोकों) में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

"तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥"

अर्थात् तपस्वियों (पातञ्जल योगवालों), ज्ञानियों (सांख्य वालों) और कर्मियों (सकाम कर्म करनेवाले वैदिकों) से योगी (कर्मयोगी) श्रेष्ठ है; इसलिये, अर्जुन, तू योगी बन।

"योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।"

अर्थात् सारे कर्मयोगियोंमें भी वह श्रेष्ठ है, जो श्रद्धालु मुझमें अपने अन्तःकरणको लगाकर मुझे भजता है।

"तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते" श्लोकमें संन्याससे कर्मयोगका दर्जा कुछ ऊंचा बताया गया था; परन्तु इन दोनों श्लोकोंसे तो स्पष्ट ही मालूम पड़ता है कि, श्रीकृष्णने सबसे श्रेष्ठ भक्तिमार्गको ही माना है।

भागवत गीताके उपसंहारमें भी यही बात कही गयी है—

"इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्यात् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥"

अर्थात् अर्जुन, तेरे लिये गोपनीयसे भी गोपनीय यह गीता-ज्ञान (कर्मयोग) मैंने कहा है। पूर्ण रूपसे इसका विचार करके जैसी इच्छा हो, वैसा कर।

"सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढ़मिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।"

अर्थात् अर्जुन, समस्त गोपनीयोंसे भी गोपनीय मेरा वचन फिर सुन। तू मेरा प्रिय-पात्र है; इसीलिये तेरे हितार्थ कहता हूं।

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥"

तात्पर्य यह कि, मुझमें मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला बन और मुझे नमस्कार कर। इस प्रकार तू मुझे प्राप्त करेगा। मेरी यह सत्य प्रतिज्ञा है। तू मेरा प्रिय है (इसलिये कहा)।

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥"

मतलब यह है कि, सारे धर्मों (कर्त्तव्यों वा कर्माश्रयों) को छोड़कर मेरी शरण आ। मैं तुझे समस्त पापोंसे बचा लूंगा। शोक मत कर।

ये गीताके १८ वें अध्यायके ६३ वें से ६६ वें तकके

श्लोक हैं। इन्हीं श्लोकोंसे गीताका उपसंहार किया गया है। गीताने ज्ञान, कर्म और पातञ्जल योगकी यथेष्ट प्रशंसा की है; परन्तु इन तीनोंमें कर्मयोगको श्रेष्ठ माना है; क्योंकि कर्मयोगका लक्ष्य अपना ही उपकार करना नहीं है—उसका लक्ष्य अधिकांशमें संसारकी सेवा करना है। कर्मयोगसे भी श्रेष्ठ भक्तिको कहा गया है। हमें ऐसा जंचता है कि, विना ईश्वरको जाने उसकी कोई भक्ति नहीं कर सकेगा अथवा गीताके शब्दोंमें श्रेष्ठ भक्त नहीं बन सकेगा; इसलिये ज्ञान आवश्यक है। कर्मयोगके विना न तो शरीर ही टिका रहेगा और न 'लोक-संग्रह' वा मानव-सेवा ही हो सकेगी; इसलिये वह भी परमावश्यक है। तपस्या (यम, नियम, ध्यान आदि पातञ्जल योग) के विना न तो मन, चित्त आदि शान्त होंगे, न ईश्वर-भक्ति हो सकेगी; इसलिये वह भी आवश्यक है। परन्तु इन सबके रहते हुए भी भक्तिके विना ईश्वर-प्राप्ति कठिन है। इसके सिवा सर्वसाधारणके लिये भक्ति सुलभ और परमोपयोगिनी है। इन्हीं कारणोंसे भक्तिको श्रेष्ठ कहा गया है। संसारके किसी भी कामकी सिद्धिमें इन चारोंकी अत्यावश्यकता है। जैसे विनय वा विनम्रता सब कामोंमें भूषण है, वैसे ही ईश्वर-प्राप्तिमें भी भक्ति अलङ्कारस्वरूप है। उक्त तीनों मार्गोंमें कमजोर स्त्री, बूढ़े, बच्चे, अन्त्यज आदिके लिये तो भक्तिको "डूबतेको तिनका सहारा"

समझिये । आज कलके जीवन-संग्रामके भयंकर झंझटोंके दिनोंमें भक्ति अमोघ अस्त्र है । अनन्त (ईश्वर) से अमित तेज प्राप्त करनेके लिये भक्ति अवश्य ही उत्तम साधन-पथ है।

एक भक्तने ठीक ही कहा है—

"व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का ?
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम् ?
कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम् ?
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्ति-प्रियो माधवः ॥"

सारांश यह है कि, "भगवान् भक्ति-प्रिय हैं—केवल भक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं—नाना प्रकारके गुणोंसे नहीं । इसी लिये आचरण-हीन व्याध, बालक ध्रुव, मूर्ख गजेन्द्र, जातिमें निम्न विदुर, पौरुष-शून्य यदुपति उग्रसेन, नाम-रूप-रहित कुब्जा और दरिद्र सुदामाको, केवल भक्तिके ही बल, ईश्वर-प्राप्ति हुई थी।" यह बात सोलहो आने सही है। ज्ञानसे भी ज्यादा बच्चेकी तोतली बोली ही पिताको अच्छी लगती है। इसीलिये वाल्मीकि, अजामिल, गणिका आदिका भी उद्धार हुआ था। असलमें हृदयकी शुद्धि होनेपर ही भक्ति उत्पन्न होती है और निश्छल-हृदय मनुष्यमें पूर्ण अनुराग और पूर्ण आनन्दके अवस्थित होनेमें बड़ी सरलता होती है।

उपासना कहते हैं सेवा, पूजा और आराधना आदिको। भक्तिके भी ये ही सब अर्थ हैं । इसीलिये प्रायः एक ही अर्थमें दोनों शब्दोंका प्रयोग होता है । परन्तु नारद-सूत्र,

शाण्डिल्यसूत्र, भक्ति-रसायन, मुक्ताफल, भागवत आदिमें जो भक्तिका विवरण मिलता है, उससे मालूम पड़ता है कि, उपासना-काण्डके ही अन्तर्गत भक्तिके होनेपर भी ईश्वर वा पूज्य देवता आदिके प्रति अनुरागको ही भक्ति कहते हैं। यह अनुराग यदि अपनेसे छोटेपर किया जाय, तो उसे स्नेह, समानपर किया जाय, तो प्रेम, बड़ोंपर किया जाय, तो श्रद्धा और ईश्वर तथा किसी दैवी शक्तिपर किया जाय, तो भक्ति कहाता है। भक्ति-सूत्रमें लिखा है—'सा परानुरक्तिरीश्वरे।" अर्थात् ईश्वरमें जो परम अनुराग है, उसीको भक्ति कहा जाता है।

भक्तिके तीन भेद मुख्य हैं—गौणी, रागात्मिका और परा। गौणीमें प्राथमिक श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन आदि नौ भेद हैं। गौणी भक्तिवालोंको ही उनके अभिलाषानुसार आर्त्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी कहा गया है। परन्तु अभिलाषा वा कामनासे शून्य केवल अनुराग-रूप जो श्रवण, कीर्त्तन आदि किये जाते हैं, वे रागात्मिका भक्तिके अन्तगत हैं। अनुराग-पूर्ण श्रवणके कर्त्ता परीक्षित, कीर्त्तनके नारद, स्मरणके प्रह्लाद, पादसेवनके बलि आदि प्रसिद्ध हैं। रागात्मिकामें रस-रूप परमात्माकी सेवामें अपनेको अर्पित कर देना पड़ता है। हर प्रकारसे अपनेको ईश्वरकी शरणागतिमें उत्सर्ग करना होता है। वायुपुराणमें लिखा है—

"आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा ॥
निक्षेपणं अकार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः ।"

अर्थात् शरण्य तत्त्वके अनुकूल संकल्प (इच्छा) करना, उसके प्रतिकूल आचरणसे बचना, रक्षाका विश्वास करना, उसे अपना रक्षक समझना, उसे अपनेको धरोहरके रूपमें सौंप देना और सौंपनेमें कृपणता नहीं करना—ये शरणागतिके छः प्रकार हैं। शरणागति आत्मनिवेदनका ऊँचा प्रकार है वा निस्स्वार्थ आत्म-निवेदन ही शरणागति है। पूजन, स्तुति, प्रार्थना, नाम-कीर्त्तन आदि शरणागतिके द्वार हैं।

पूजन षोड़शोपचार हाता है । पूजनकी अनेकानेक विधियाँ हैं। अनेक सम्प्रदायोंके अनेक प्रकारके पूजन और उनके उपकरण हैं । पूजन प्रायः सगुण ईश्वर, देवता आदिका ही किया जाता हैं । यद्यपि ईश्वर निराकार है; परन्तु उसकी साकार कल्पनाके विना वह उसी प्रकार सरलतासे समझमें नहीं आता, जिस प्रकार निराकार शून्य विना आकारके समझमें नहीं आता। इसीलिये ईश्वरकी, मूर्त्ति-रुपमें, आकार-कल्पना की गयी है । जैसे श्रद्धाके कारण लोग महात्मा गाँधी आदिके तरह-तरहके फोटो रखते हैं वा मूर्त्तियाँ बनाते हैं और फोटो तथा मूर्त्तियोंका सम्मान-पूजन करते हैं, उसी प्रकार अत्यन्त अनुरागके कारण ईश्वर तथा अन्यान्य देवोंकी मूर्त्तियाँ

रखी जाती हैं और उनकी सविधि पूजा की जाती है। जैसे महापुरुषोंके फोटो आदि देखनेपर हृदयपर एक उच्च भाव-संवेदन होता है, उनके आदर्श गुणोंका स्मरण हो आता है और स्वयं उनके अलौकिक गुण प्राप्त करनेकी प्रबल लालसा हो उठती है, वैसे ही ईश्वरकी मूर्त्तिको देखनेपर अथवा उसकी पूजा करनेपर ईश्वरकी दिव्य गुणावलीका पवित्र स्मरण हो आता है, हृदयमें आनन्द और शान्तिकी विमल धारासी बहने लगती है और ईश्वरीय अवतारोंके अनुसार परोपकार आदि करनेकी प्रवृत्ति जाग उठती है। जैसे फोटो आदिमें माला पहनानेका मतलब फोटोवाले महापुरुषका सम्मान और पूजन करना है, कागज वा रंगका पूजन करना नहीं है, वैसे ही ईश्वर वा ईश्वरावतारोंकी मूर्त्तियोंका पूजन करनेका तात्पर्य सत्य, आनन्द, सर्वज्ञ आदि ईश्वरका पूजन करना है, पत्थर, काठ, कागज आदिका पूजन करना नहीं। यह सन्देह करना भी व्यर्थ है कि, अवतार लेनेपर ईश्वर घट जायगा अर्थात् ईश्वरका अंश निकलकर अवतार बननेपर ईश्वरकी शक्ति कम हो जायगी। ईश्वर पूर्ण है और "पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते" के अनुसार पूर्णसे पूर्ण निकलनेपर भी पूर्ण पूर्ण ही रहेगा। शून्य स्वयं पूर्ण पदार्थ है; इसलिये शून्यसे लाखों शून्योंके निकाल लेनेपर भी शून्य पूर्ण ही रहेगा। क्या एक दीपकसे हजार दीपक जला लेनेपर दीप-

कको शक्ति कम हो जाती है ? कभी नहीं। इसी प्रकार अगणित अवतार लेनेपर भी ईश्वर पूर्ण ही रहता है और जैसा कि, अभी हम लिख आये हैं, उसके अनुसार उसकी अथवा उसके अवतारोंकी पूजा करनेसे अपने अन्तः-करणपर उसके गुणोंका अमिट प्रभाव पड़ेगा, उसके और उसके अवतारोंके परोपकारक कर्मोंको करनेकी प्रवृत्ति बढ़ेगी और हृदयमें उदारता, समता, दयालुता, परदुःखकातरता आदिका एक भव्य भवन ही तैयार हो जायगा। इन लाभोंके सिवा जैसे गायके सारे शरीरमें रहनेवाले दूधको उसका बछड़ा, प्रेमातिशयताके कारण, स्तनमें प्रकट कर लेता है, वैसे ही रागात्मिका भक्तिके अतिरेक या परा भक्तिके कारण भक्त सर्व-व्यापक ईश्वरको मूर्तिमें प्रकट कर लेता है और उसका साक्षात्कार करके अपने जीवनको सार्थक कर लेता है, अपनेको धन्य कर डालता है और जीवन-मरणके बन्धनको तोड़कर नित्यानन्दमें स्थित हो रहता है—मुक्ति उसकी दासी हो जाती है। इसीसे मूर्ति-पूजा और सगुणोपासनाको हमारे पूर्वजोंने सर्वाधिक सरल और उपयोगिनी माना है एवम् इसीलिये मूर्तिपूजनका सर्वाधिक प्रचार भी है। इसी बातको लक्ष्य करके भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

"क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥"

सारांश यह कि, सगुणोपासना और मूर्तिपूजाका मार्ग छोड़कर जो लोग निराकार और अनिर्वचनीयकी उपासना करते हैं, उन्हें अत्यन्त क्लेश होता है—उन शरीरधारियोंकी मुक्ति बहुत कष्टसे साध्य होती हैं ।

स्तुति ईश्वरीय गुणोंका गान है । ईश्वरकी स्तुति करनेसे उसके गुणोंपर श्रद्धा बढ़ती है और मनपर गुणोंका प्रभाव पड़ता है । मनपर गुणोंका जबर्दस्त प्रभाव पड़नेपर मनुष्य उन गुणोंकी प्राप्ति की चेष्टा करता है—उन गुणोंके अनुसार आचरण करनेका प्रयत्न करता है। यह मानी हुई बात है कि, मनुष्य जैसे प्रसङ्गकी चर्चा करता है, वैसेके ही अनुकूल उसकी चित्त-वृत्ति और कार्य होते हैं । कोकशास्त्रकी चर्चा करनेसे उसकी बातों और कार्योंका और ईश्वरकी चर्चा करनेसे उसकी बातों या गुणों और कार्योंका मनपर प्रभाव पड़ता है और मनुष्य प्रभावानुसार ही कार्य करता है । मनो-विज्ञानके इसी सर्व-मान्य सिद्धान्तके अनुसार ईश्वरकी स्तुति और प्रार्थना करनेसे मनुष्य दिव्य गुणों और शक्तियोंसे युक्त हो जाता है तथा उसका जीवन बिलकुल विशुद्ध बन जाता है । ये ही सब कारण हैं कि, मनुष्य ईश्वरकी स्तुति और प्रार्थना करता है तथा समस्त धर्मोंमें स्तुति और प्रार्थनाका इतना महत्त्व गाया गया है । सचमुच मनोमलको दूर करके मनुष्यको स्थित-प्रज्ञता, समता और

मोक्षतक पहुंचानेके लिये स्तुति और प्रार्थना प्रबल साधन हैं।

प्रार्थनाके द्वारा अपनेको ईश्वरकी शरणागतिमें देकर और ईश्वरसे सहायता प्राप्त कर इस जीवनके अभ्युदयसे लेकर मुक्तितक प्राप्त की जाती है। प्रार्थनाका स्थूल उद्देश्य पुत्र, धन आदिकी प्राप्ति करना, सूक्ष्म उद्देश्य काम, क्रोध आदि षड्रिपुओंपर विजय प्राप्त करना और कारण वा अन्तिम उद्देश्य मोक्षको पाना है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, अन्तिम उद्देश्य ही सर्व-श्रेष्ठ है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, संसारमें तीनों उद्देश्योंके अनुयायी यथेष्ट हैं। अपनेको ईश्वरार्पण करके प्रार्थनाके द्वारा ईश्वरीय शक्तियों और कर्मोंमें आत्मना, मनसा, कर्मणा और वचसा रमण वा विहरण करनेसे इन तीनों उद्देश्योंकी प्राप्ति बड़ी सरलतासे हो जाती है। महात्मा गांधीके शब्दोंमें बुद्ध, ईसा और महम्मद प्रार्थनाके ही बल सिद्ध हुए थे और इतने बड़े-बड़े धर्मोंका प्रवर्त्तन करनेमें भी समर्थ हुए थे। इसमें सन्देह नहीं कि, ईश्वर-प्रार्थनासे प्राप्त आनन्दको प्रार्थना करनेवाले ही जान सकते हैं।

यों तो प्रार्थनासे अनन्त लाभ होते हैं; परन्तु उनमेंसे कुछ ही लाभोंको, स्थान-संकोचके कारण, यहाँ लिखा जायगा। प्रार्थनाके द्वारा कुछ लाभान्वित लोगोंके उदाहरण भी यहाँ दिये जायँगे।

१ ईश्वर-प्रार्थना करनेसे मनुष्यमें जो अन्तर्ज्योतिकी जागृति होती है, वह मनुष्यको सन्मार्गपर चलनेका आदेश देती है।

२ प्रार्थनासे मनुष्यका चित्त एकाग्र होता है।

३ प्रार्थनासे मनुष्यके दुर्भावोंका शमन होता है।

४ प्रार्थनासे मन निर्भय और सबल हो जाता है।

५ प्रार्थनासे हृदयमें शान्ति, दया, क्षमा, सन्तोष, धैर्य, उदारता, साहस, आनन्द आदि प्राप्त होते हैं।

६ प्रार्थनासे बुद्धि विमल, व्युत्पन्न और निश्चयात्मिका होती है।

७ प्रार्थनासे वचनमें सत्यता, कोमलता और मधुरताकी स्थिति सुदृढ़ होती है।

८ प्रार्थनासे शरीर तेजस्वी, सुन्दर और प्रसन्न होता है तथा मुखमण्डल कान्तिमान्, सौम्य और आह्लादका सदन बन जाता है।

अब कुछ प्रार्थना करनेवालोंकी बातें भी पढ़िये—

अमेरिका (कनसास) में चार्ल्स फिलमोर नामके एक सज्जन रहते हैं, जो पहले लूले-लँगड़े थे। प्रार्थनाके बल उनके मन और शरीरपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि, वे भले-चंगे हो गये। उन्होंने एक करोड़ रुपये एकत्र करके "यूनिटी स्कूल आफ क्रिश्चियानिटी" नामकी एक संस्था

स्थापित कर रखी है, जिसके ४० विभाग हैं और जिसमें ४०० मनुष्य कार्य करते हैं ! वहाँ प्रार्थनाके द्वारा सभी रोगोंको हटाया जाता है । प्रार्थनाके द्वारा गरीबी और बेकारीको भी दूर किया जाता है तथा मानसिक शक्तियोंका उन्नयन भी किया जाता है । फिल्मोर महाशय "यूनिटी वर्ल्ड" आदि प्रार्थना-विषयक दस पत्र भी चलाते हैं, जिनके लाखों ग्राहक हैं ।

विलायतके स्व० जार्ज मूलर विश्व-प्रसिद्ध पुरुष थे। उनका प्रार्थनापर अटल विश्वास था । प्रार्थनाके बल उन्होंने सैकड़ों असम्भव कार्य किये थे, जिनका उल्लेख "A venture of faith" नामक पुस्तकमें है । मूलर साहब दीन-बन्धु थे—उनके स्थापित किये हुए ऐसे सैकड़ों अनाथालय चल रहे हैं, जिनमें लगभग सवा दो करोड़ रुपयोंकी सम्पदा लगी हुई है । ये सब रुपये मूलर साहबने स्वयं एकत्र किये थे ।

थोरो और एमर्सनके बाद होर्लीयोक (अमेरिका) की एलिजाबेथ टाउन, अभिनव विचारोंके अनुसार, ईश्वर-वादकी प्रबल प्रचारिका है । उनके "नाटिलस" पत्रके कई लाख ग्राहक हैं । इसमें प्रार्थनाके द्वारा दुःख, दरिद्रता, रोग आदिको दूर करनेके अनुभव-पूर्ण लेख प्रकाशित हुआ करते हैं । इन लेखोंसे लाखों मनुष्योंको अगणित लाभ हुए हैं ।

चिचेस्टर (इंगलैंड)के मि० हेम्बलिन ईश्वर-वादके प्रबल प्रसारक हैं । उनके "सायंस आफ थाट रिव्यू" पत्रके उच्च

कोटिके लेखोंको पढ़कर हजारो नास्तिक आस्तिक बन गये हैं। पत्रमें प्रार्थना-विषयक उच्च कोटिके लेख छपते ही रहते हैं।

कुछ ही दिनोंकी बात है कि, अमेरिकाके एक ग्राममें वर्षा होनेके लिये प्रार्थना की गयी थी। प्रार्थना-स्थलपर एक बालिका इसलिये छाता लेकर गयी थी कि, "प्रार्थनाके बाद घर लौटते समय मैं भींग न जाऊं।" छाता देखकर लोग हंस पड़े और कुछ लोग लड़कीकी बुद्धिका मजाक उड़ाने लगे! परन्तु लड़की अपने विश्वासपर अटल रही। अन्तको लड़कीकी ही बात सच निकली—प्रार्थनाके बाद ही घनघोर वृष्टि हुई। सब लोग भींग गये और लड़की बाल-बाल बच गयी!

प्रार्थनाके द्वारा समता प्राप्त करनेवाले संसारमें अनेकानेक महापुरुष हो गये हैं। भारतमें तो प्रार्थनाके बल अपना जीवन दिव्य बनानेवाले सनक, सनन्दनसे लेकर महात्मा गांधी तक असंख्य पुरुष होते चले आ रहे हैं। स्तुति और प्रार्थनाके द्वारा ईश्वरशरणागति प्राप्त करनेमें बड़ी ही सरलता है।

ईश्वरके नाम-कीर्त्तनका भी बड़ा महत्त्व है। यह भी बहुत ही प्राचीन प्रथा है। केनोपनिषद् (४।६) में नामकी चर्चा है। छान्दोग्योपनिषद्में नामोपासनाकी बात है। विष्णुपुराण (६।२।१७) में भी नाम-महिमा है। नारद और शाण्डि-

ल्यके भक्ति-सूत्रोंमें तो नाम-कीर्त्तनका महत्त्व भरा पड़ा है ही।

कुछ लोग कहते हैं कि, नाम-कीर्त्तनसे क्या मतलब—नामका प्रभाव क्या पड़ेगा? परन्तु ऐसे लोगोंके सामने नीबूका नाम लीजिये वा नीबूके नामका कीर्त्तन कीजिये, तो इनकी जीभपर पानी जरूर आ जायगा। जब नीबू जैसी वस्तुके नाममें यह शक्ति है कि, उसका उच्चारण करते ही नीबूका समस्त प्रभाव जीभपर आ जाता है, तब ईश्वरके नामका कीर्त्तन करनेपर ईश्वरका प्रभाव क्यों नहीं पड़ेगा? क्या लोकमान्य तिलक वा महाराणा प्रतापका नाम लेते ही गर्वसे छाती नहीं फूल उठती वा उनके आचरणका अनुगमन करनेकी इच्छा नहीं होती? अवश्य ही छाती फूल उठती है और आचरणानुकरण करनेकी इच्छा भी होती है। ठीक इसी प्रकार ईश्वरके नामका उच्चारण करते ही आनन्दातिरेकसे छाती दूनी हो जाती है और ईश्वरके परोपकार, समदृष्टि आदि गुणोंका अनुकरण करनेकी प्रबल इच्छा हो उठती है। वस्तुतः ईश्वरका नाम उसका ध्वनि-रूप आकार है। अपनी सारी अभिलाषाओंको मनुष्य नाम-रूपी एक शब्दमें प्रकट कर डालता है। प्रेमसे व्याकुल मनुष्य ईश्वरका नाम धर कर पुकारता है और अपने प्रेम-चुम्बकसे ईश्वरीय शक्तिको अपने पास खींच लाता है। ईश्वर-भक्त "रघुपति राघव राजा राम" में जो शान्ति और आनन्दका अनुभव करता है, वह उसे

ईश्वरसम्बन्धी दार्शनिक तर्कोंमें नहीं मिलता। ईश्वरकी नाम-शक्तिकी साक्षात् मूर्त्ति चैतन्य महाप्रभुकी यह बात प्रसिद्ध ही है कि, उन्होंने एक नव्य न्यायका प्रकाण्ड ग्रन्थ लिख कर भी उसे नाम-रसके सामने नीरस समझा और नदीमें फेंक दिया। चैतन्य महाप्रभु "अभिन्नत्वान्नाम-नामिनोः" के अनुसार नाम और नामवालेमें बिलकुल एकता समझते थे। उनकी कोटिके भक्त स्वभावतः ऐसा समझते ही हैं—उनके लिये शक्ति और शक्तिमान्‌में भिन्नताका अभाव है। विद्वान्‌से लेकर प्रचण्ड मूर्खतकके लिये नाम-कीर्त्तन ईश्वर-प्राप्तिका महान् साधन है। योग, यज्ञ, तपस्या आदि कष्टसाध्य कार्योंका जनतामें इस समय अभावसा है; इसलिये इन दिनोंके लिये नाम-कीर्त्तन ईश्वर-साक्षात्कारका और भी सुगम उपाय और मार्ग कहा गया है। एक स्थानपर तो इतनी दूरतक कहा गया है कि—

"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥"

अबतक गौणी और रागात्मिका भक्तियोंकी ही बातें लिखी गयी हैं। इन दोनोंसे श्रेष्ठ भक्तिका नाम "परा भक्ति" है। पूर्वोक्त स्तुति, प्रार्थना, कीर्त्तन आदिके द्वारा भक्त जब अपनेको ईश्वरमें मिला देनेकी अदम्य चेष्टा करता है, तब परा भक्तिका उदय होता है। गौराङ्ग महाप्रभु कीर्त्तनके द्वारा अपनेको ईश्वरमें मिला देते थे—

समाधिस्थ हो जाते थे; इसलिये उनके कीर्त्तनका नाम परा भक्ति है। स्वामी रामतीर्थ "राम राम" कहते हुए ईश्वर वा राममें रमण करने लग जाते थे; इसलिये उनकी राम-भक्ति परा भक्ति कहाती है। परा भक्तिके अधिकारी सूरदास भी थे; इसीलिये तो उन्होंने श्रीकृष्णको ललकार कर कहा था—

"कर छिटकाये जात हौ, निबल जानिके मोहि।
हिरदयसे जो जाव तौ, बली बखानौं तोहि॥"

पराभक्तिका अधिकारी राममें रम जाता है वा राममय बन जाता है। इसी लिये इसके अधिकारी तुलसीदासने कहा है—

"सियाराममय सब जग जानी, करौं प्रणाम जोरि जुग पानी।"

इस कोटिका भक्त ईश्वरकी भावनामें ही सोता, उठता, बैठता, लिखता, पढ़ता—सब कुछ करता है—"सोवत अँचवत राम।" वह परा भक्तिके भावावेशमें लोक-मर्यादाको भी तिलाञ्जलि दे देता है और—

"हसत्यथो रोदति रौति गायत्युन्मत्तवन्नृत्यति लोकबाह्यः।"

(आनन्दकी अधिकताके कारण कभी हंसता है, कभी रोता है, कभी चिल्लाता है, कभी गाता है और कभी पागलकी तरह नाचने लगता है!) वह सबका मित्र बन जाता है, सबमें समताकी अखण्ड धारा देखता है, सबकी सेवा करनेको आतुर हो उठता है, लक्ष्मी और

सरस्वती उसकी दासियाँ बन जाती हैं। वह सारे संसारको नन्दनवन समझता है, सारे वृक्षोंको कल्पद्रुम जानता है, सारे जलोंको गङ्गा-जल कहता है और सारे कर्मोंको पुण्य कर्म मानने लगता है—

"सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमाः ।
गाङ्गं वारि समस्त-वारि-निवहः पुण्याः समस्ताः क्रियाः ॥"

गौणी और रागात्मिका भक्तियोंमें भक्त ईश्वरसे "दासोऽहम्" कहता है और परा भक्तिमें उसका "दा" नष्ट हो जाता है—वह "सोऽहम्"का अक्षुण्ण और विमल निनाद करने लगता है। परा भक्तिका भक्त जीवन्मुक्त है—मुक्ति उसकी सहचरी है। परा भक्ति ही ब्रह्मात्मैक्यज्ञान और निर्विकल्प समाधि है। इस श्रेणीके भक्तोंका सबके लिये, गीताके अनुसार, यही उपदेश रहता है कि—

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥"

अर्थात् अर्जुन, शरीर-रूपी यन्त्रमें आरूढ़ समस्त प्राणियोंको अपनी मायासे (उनके कर्मानुसार) घुमाता हुआ ईश्वर सबके हृदयमें स्थित है। (भागवतगीता, १८।६१)

ऐसे भक्तोंका जीवनोद्देश्य ही है ईश्वरीय ज्योतिसे चराचरको उद्भासित करना। ऐसे भक्त गीताके शब्दोंमें संसारको डंकेकी चोट बताते हैं कि—

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥"

अर्थात् अर्जुन, सब तरहसे उस ईश्वरकी शरणमें जा। उसकी कृपासे ही तुझे परम शान्ति और नित्य स्थान मिलेगा ।

धन्य हैं सारे संसारको आनन्द-धाम बनानेकी चिन्तामें निरत ऐसे महापुरुष और बन्दनीय हैं उनका अनुधावन करनेवाले मनुष्य !!!

